जंजाल तथा अन्य कहानियां हिन्दी व राजस्थानी के प्रसिद्ध लेखक 'यादवेन्द्र' शर्मा 'चन्द्र' का ताजा कथा संग्रह है जो वर्तमान यथार्थ और जीवन की विभिन्न स्पर्शों से प्रस्तुत करता है। हमारे ग्राम जीवन में कितनी त्रासदियां, विसंगतियां ऊब और घुटन है, उनका चित्रण इनमें अत्यन्त ही रोचक व नये तेवर में है। ये कहानियां कथा-साहित्य का अभिन्न अंग इसलिए भी है कि ये परिवेशगत सत्य के साथ उद्देश्यात्मक भी है। दृष्टिहीनता से ग्रस्त आज की अधिकांश कहानियों में ये कहानियां सार्थक लेखन को सिद्ध करती हैं। ▭

सम्मतियां

- ☐ इस बार तुम्हारी कहानियां एक साथ पढ़ी, अभिभूत हूं। कमलेश्वर नई दिल्ली।

- ☐ यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानियों में समाज और परिवेश की नयी संवेदात्मक छवियां उभरती हैं। अनुभवों को रचने की अन्तर्दृष्टि जीवन की जटिलताओं की नई तहों को खोल देती हैं। इन कहानियों की चेतना उन समूहों के गुणात्मक रूप से भिन्न है जो अब तक लिखते आये हैं। डा. कृष्णदत्त पालीवाल दिल्ली।

- ☐ सही अर्थों में जन-जीवन की झांकी चन्द्र की कहानियों में मिलती है। —डॉ. हेतु भारद्वाज नीम का थाना

र प्रकाशन, जयपुर
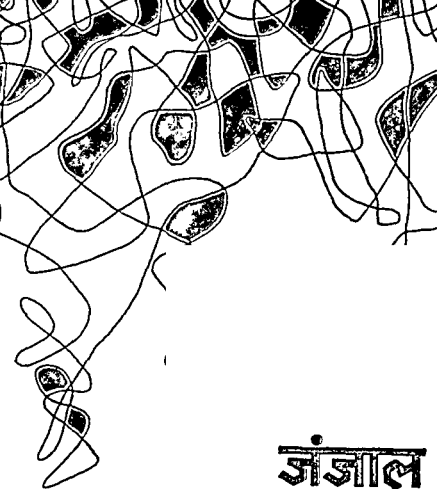
जंजाल तथा अन्य कहानियाँ

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

प्रकाशक : देवनागर प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर

प्रथम संस्करण : 1988 ई०

मूल्य : 75.00

आवरण : स्वामी अमित

मुद्रक एलोरा प्रिण्टर्स, जयपुर

L AUR ANYA KAHANIAN (Short Stories)

BY : YADVENDRA SHARMA 'CHANDRA' *Rs. 75.00*

मैं इतना ही कहूंगा :

'जंजाल' मेरी चंद चुनी हुई नई पुरानी कहानियों का संग्रह है ! इस संग्रह की कहानियां जीवन के विभिन्न आयामों को स्पर्श करती हैं और एक दृष्टिमय चित्रण करती है ! आज हिन्दी कहानियां अपने पाठकों से कट रही हैं जिससे वह जिस उद्देश्य से लिखी जा रही हैं, उस उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो रही है, यह लेखन को सार्थकहीन करता है ! — मेरी इस संग्रह की कहानियों को पाठकों ने सराहा और अपनी प्रतिक्रियाएं भी लिखी । विभिन्न परिवेशों की इन कहानियों का यथार्थ भिन्न-भिन्न है और उस यथार्थ को सही ढंग से समझने के लिए उन परिवेशों का ज्ञान आवश्यक है । वर्ना कहानियों को सही ढंग से आत्मसात नहीं किया जा सकता है । अपने यायावरी जीवन में जो अनुभव किया, ये कहानियां इसका प्रमाण हैं !

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
आशा लक्ष्मी, नया शहर
बीकानेर

ये कहानियां

5 ▫ जंजाल
13 ▫ एक भ्रौर जटायु
21 ▫ समन्दर
28 ▫ सतलड़ा हार
33 ▫ संगोष्ठी
41 ▫ डर
48 ▫ सिलसिला
54 ▫ ये भूखे क्षरा
63 ▫ मुर्दा पल जी उठे
70 ▫ मिस मोनिका भ्रौर पेड़ का तना
77 ▫ राम की हत्या
86 ▫ भ्रंधेरों से घिरी रोशनी
91 ▫ सदा ऐसा ही
96 ▫ पोस्ट कार्ड
102 ▫ मकान
112 ▫ जूते
116 ▫ एक सही स्वीकृति
122 ▫ एक भ्रलग किस्म का भ्रादमी
130 ▫ विश्वामित्र की खोज
137 ▫ दुर्वासा का पहला वरदान
144 ▫ भागता हुभ्रा बयान
150 ▫ ईमानदार
155 ▫ गवाह
163 ▫ यह तेरा देश—
168 ▫ सर्वोच्च शिखर
179 ▫ हालोपा

जंजाल

भोमा रोजगार दफ्तर में हव्वा हो गयी · उपस्थिति का समूचा अस्तित्व शून्य में बदल गया। सब पर विस्मय-जनित जड़ता की परत पसर गयी।

घाघरा फर्श पर बेतरतीब पड़ा था। मैली पिंडलियां, पिंडलियों पर गोदे हुए चांद-सूरज, सवाल भरी जांघें, दायीं जांघ पर एक बिच्छु गोदा हुआ था।

वह काली मैया की तरह दोनों हाथ ऊंचे करके चीखी। बाएं हाथ पर बाबा रामदेव का भौंडा चित्र था। उसकी भाव-भंगिमा देवी प्रकोप पीड़ित मानवी की तरह थी। नेत्र रक्तिम, दांत भींचे हुए और थर-थर कांपता बदन।

वह सन्निपात रोगी की तरह बोली जैसे यकायक बारूद फट पड़ा हो—"कुत्तो की औलादों ! लो देखो अपनी मां को · अपनी बहिन को ·· क्या फर्क है मुझमें और तुम्हारी घर की लुगाइयों में ? खड़े क्यों हो कुत्तों ? अब काटते क्यों नहीं ? गिद्धों की तरह मेरे मांस को नोचते क्यों नहीं ?··· मैं नौकरी के लिए इस दफ्तर के फेरे निकालते-निकालते अधमरी हो गयी पर मेरा नाम तक दर्ज नहीं हुआ। गरीबजात को तुम लोगों ने कितना सताया है ?···मेरे टाबर (बच्चे) आधे भूखे सोते हैं, मैं पेट पर पत्थर रखकर रहती हू ·· पर तुम भाटो (पत्थरों) को दया नहीं आती।"

वह बाज की तरह अफसर पर झपटती हुई बोली, 'सुन पादशिया हाकिम··· ये तुम्हारे मातहत कुत्ते मेरी भूख प्यास की जगह पूछते हैं तेरे घर में कुण-कुण है। तेरा मोट्यार (पति) क्या करता है ? तू तो सामण नहीं लगती ?····तेरे तीन टाबर हैं, भरोसा नहीं होता ? तू चोखे गामे पहनले तो सेठाणी लगे··· गंडकों ! यह क्यों नहीं पूछते कि तेरे घर के भाडे-बर्तनों में अनाज के दाने हैं कि नहीं ?···कब-कब चूल्हा जलता है ? मैंने कितने दिनों से भरपेट रोटी खाई है कि नहीं ?····गरीब की हाय लोहे को भस्म कर देती है · नौकरी के बदले धरम लेना चाहते हो ? ·· लो····भूख में धरम नहीं बिगड़ता····हिजड़ो! आगे क्यों नहीं बढ़ते ? एक बात का ख्याल रखो, जिसे पेट ने नंगा किया है वह पापिन नहीं होती, रामदेव बाबा उसे सती सावितरी ही मानेंगे।"

वह धम से बैठकर फूट-फूटकर रो पड़ी, उसकी सुबकियां रुक नहीं रही थीं।

"भोमा ! भोमा""अरे तू नींद में रोती क्यों है ?" उसकी पड़ोसन गीगली ने उसे झिंझोड़ते हुए जगाया।

वह हड़बड़ाकर उठ बैठी, उसने एक पल सवाल भरी आंखों से गीगली को देखा, अपने भीतर के आवेश भरे कोहरे को लम्बे-लम्बे सांसों से बाहर निकाला, आंखें वास्तव में गीली थीं, उन्हें पोंछा।

उसकी आंखों में विस्मय था, जड़ता थी, निरन्तर निहारने की प्रक्रिया थी, फिर वह बोली, "मैंने एक जंजाल (सपना) देखा।"

"जंजाल तो हर आदमी देखता है।"

"देखता जरूर है पर मैंने बड़ा ही खोटा और गूगला जंजाल देखा है,"

"कैसा था जंजाल ?"

"बताते हुए लाज आती है." वह जरा सहम गयी।

"अरी राड बता न ?" तमककर गीगली बोली।

"मैं सपने में सबके सामने दफ्तर में नंगी हो गयी।"

"क्या ?" वह अवाक् रह गयी और उसकी आंखें औसतन आकार से बड़ी हो गयीं।

"हां गीगली ?" और उसने सारा विवरण याद करके सुनाया।

गीगली आश्चर्य से बोली, "तभी वह कुत्ता अफसर जब मैं वहां जाती हूं तब मुझे भी सूंघने का जतन करता है।" उसके स्वर में खीझ, क्रोध और असन्तोष के भाव थे।

भोमा ने समीप पड़ी अपनी अठन्नी के आकार की बिंदिया को थूक से जबरदस्ती चिपकाते हुए कहा, "गरीबों के जीने में कोई अदरक (सार्थकता) नहीं है, मरना-जीना एक समान है""पर मेरा सपना झूठा नहीं है, उसमें सच्चाई है। सोच, कित्ते फेरे मैंने वहां के निकाले हैं ? राममारों ने नांव तक दरज नहीं किया ? हर बार कोई न कोई खोट-कसर निकाल देते हैं। वह हाकिम बड़ा खुड़पगा है।"

"मैंने तो नोकरी का लारा (पीछा) ही छोड़ दिया। कुण आधे पेट पर लात मारे ? कैवत है न, आधी नैं छोड़ पूरी नै धावै, न आधी खावै न पूरी पावै। मेंनत मजूरी करके पेट की लाय तो बुझा लेते हैं।"

"पण सोचती हूं कि वहां के लोगों की नीयत खोटी ही है। घड़ी-घड़ी मेरे रंग-रूप की बात करते हैं। सुनते-सुनते ऊब गयी""गीगली मैं सांचेली नागी हो जाऊं तो ? एक बात है जो नागी हो सकती है। वह नागी कर भी सकती है, डावड़ी ! मैंने अब तक बहुत सह लिया ? अब सहा नहीं जाता""अन्याय-अत्याचार की हद होती है ? पांव के नीचे दबते-दबते तो पत्थर के भी घाव हो जाते हैं। मैं तो मिनखजाई हूं। मुझमें तो हिया और आतमा दोनूं है""मुझे सुख-दुःख

का अहसास होता है। चुटकी भरो तो चिहुंक पड़ती हूं और लाड करें तो गद्गद् हो जाती हूं… तुम जानती हो? मैं पूरे तीन महीनों से अपना नाम दफ्तरों में दरज कराने के लिए मारी-मारी फिर रही हूं…सांसियों की बस्ती से यह दफ्तर कितनी दूर है? …पूरा ढाई कोस…ऊपर सूरज बाप आग बरसाए और नीचे यह नगी भोम (धरती)…पूरे रास्ते दमभर बिसाई खाने के लिए कोई छायावाली जगह नहीं। आधी भूखी-तिसी मैं अधमरी-सी जब वहां पहुंचती हूं तो मुझमें एक अखंड भरोसा होता है कि मुझे नौकरी मिलेगी…मैं भी चोखा जीवन जीऊंगी, अपने टाबर टींगरों को भर पेट रोटी खिलाऊंगी। फिर वे एक मिनख जैसा जूण जीएंगे…पर वे मोटी तोंदन के लोग नाम दरज करने की बजाय धक्के दिलाते हैं। धक्के खाते-खाते मैं उकता गयी। कभी…झुंझल आने लगी है मुझे। जी में आता है कि साले का मुंह नोच लूं…पर पेट की मजबूरी शरीर को बांध देती है। सहती रहती हूं, समझती रहती हूं…अब सवर्ण मगनि ने भी जवाब दे दिया है… अब यह पाइलिया अजगर मेरे डील (तन) को खा जाना चाहता है…"

उसी समय सांसियों का पंच मलूकदास आ गया, काला रंग, बड़ी-बड़ी वर्ण-स्पर्शी मूंछें, कानों में मुरकियां, हाथ में लोहे का कड़ा, दो नकली अंगूठियां, वह नंगे बदन था। उसने भोमा को देखा तो रुक गया और अपना कर्तव्य समझकर उसने नेताई अंदाज में पूछा, "अरी भोमा, तेरी नौकरी का क्या हुआ?"

धूप की एक लम्बी लकीर किवाड़ की दरार से निकलकर भोमा की आकृति को दो हिस्सों में बांट गयी थी। वह निश्वास छोड़कर बोली, "होना-जाना क्या है? वही ढाक के तीन पात…कई बार दफ्तर जाकर धक्के खा आयी। अभी तो कारड भी नहीं बना।"

'क्यों?' वह गम्भीर हो गया।

"बस टरकाने की बात है।" वह उठकर उसके पास आयी। गीगली मूक दर्शक की तरह खड़ी थी।

धूप उन तीनों के चेहरों पर पड़ रही थी। भोमा के गोदने स्पष्ट दिखने लगे थे, ललाट पर बिंदी…ठोड़ी पर बिंदी और दायें हाथ में रामदेव बाबा की भोंडी मूरत।

"तू फिकर न करे। मैं आज ही एम.एल.ए. साहब के पास जाऊंगा। उन्हें पूछूंगा कि यह क्या गड़बड़ घोटाला है। हम दलित अछूतों की नौकरियां कौन-सा राक्षस डकार जाता है। हमें सामाजिक न्याय मिलेगा कि नहीं?"

"नेताजी! तेरा बड़ा नेता बेचारा क्या करेगा? वह मुझे नौकरी तो दे नहीं सकता। मंदर के देव की तरह सारी बातें सुन लेगा, धावस (धैर्य) दे देगा।"

मलूक के बदन में नयी आशा का दुलार, शरीर में सफेदार का रंग। आँखों में बन्दीपने के भाव उभरे। विद्रोही स्वर में बोला, 'साली की ऐसी की तैसी। मैं आज ही कलक्टर के पास जाता हूं—कामचोरों ने समझ क्या रखा है—गरीबों की क्या कोई इज्जत नहीं होती?' फिर बड़ी नाटकीयता से स्वर को बदलकर बोला, 'पर इसका सबूत क्या है?'

भोमा ढोल की तरह फट पड़ी, 'सबूत तो पोंगड़ी के साथ जबरजना (बलात्कार) करने वाले तीन-तीन गुण्डों के खिलाफ भी नहीं मिले—हरे मलूक! किसी का नाम जबरजना करने पर आपों पर नहीं खुलता। यदि तुम आता तो दे मेरा, जंवरी-नवरी और साब-हाकम सबके सब इतने दरे और नंगे लगते और कहीं मुंह दिखाने लायक भी नहीं रहते।'

'तू तो नाहक बात का बतंगड़ बना रही है...कागजों में कमी-बेसी हो सकती है। ठीक है, मैं आज ही पता लगाऊंगा। उस अफसर की शिकायत करूंगा।'

'हट से, ये नेता-हाकिम एक कान से सुनते हैं और दूसरे कान निकाल देते हैं, समझे नेताजी?'

'मैं परसों तुम से मिलूंगा।'

'परसों भी आ जायेगी'

मलूक लोग उठाकर जंगल की ओर काफी गम्भीर बना चला गया। उसके जाते ही फकीरा आ गया।

उसे देखते ही भोमा हंसकर बोली, 'लो दूसरे नेताजी पधार गये हैं?'

'यह मलूक क्या कह रहा था।' फकीरा ने गम्भीर मुद्रा में पूछा।

'तुम अपनी डफली बजा जाते हो और वह अपनी।'

'भोमा! मैं डफली नहीं बजाता। मैं सच कहता हूं कि मैं गरीबों के हकों के लिए लड़ता हूं। हर शोषण के विरुद्ध मैं कदम उठाता हूं। यह मलूक आप लोगों से मीठी-मीठी बातें करके अपनी जेब भरता रहता है। कांग्रेस में अब कोई दम नहीं है, यह सरकार नख से सिर तक भ्रष्टाचार में डूब गयी है। ये केवल वोट लेने के लिए दलितों से लम्बे-लम्बे वायदे करती है, पर फायदा वे ही चंद लोग लेते हैं जो उनका तलुवा चाटते हैं, जो बहुरूपिये होते हैं, बताओ,

सांसी-सांसियों में कितनों को सरकारी नौकरी मिली ?''' इन अट्ठाईस सालों में हमें क्या मिला ?'''अरे भोमा ! ये कांगरेसी ढपोरशंख हैं ! दो मांगो तो दस देते हैं पर जबान से । छटांग भर की जबान को हिलाते कष्ट थोड़े ही होता है, मेरी बात मान और इस मलूक के बच्चे को गवाड़ से भगा'''यह कांगरेस का पक्का गुर्गा है, केवल अपना घर भरने वाला । इसने कितना अच्छा घर बना लिया है । तुझे पता नहीं ? ये चोरी-चोरी ठेकेदारी भी करने लगा है ।'

'मुझे तो तुम दोनों एक दूसरे के चट्टे-बट्टे ही लगते हो । हम लोगों की तकलीफ को कोई नहीं समझता'''जब वोटों का वक्त आता है तब तो इन नेता-वेता के मुंह में मूतना भी चाहो तो मुता लेते हैं वर्ना तो इनकी सूरत भी देखने को जी तरसता है ।''

'तू ठीक कहती है, ये कांगरेसी सारे'''' फकीरा ने कहा ।

भोमा ने बीच में भड़कर कहा, 'तू बड़ी-बड़ी बातें क्यूं करता है ? तू भी तो सहकारिता के नाम से चंदा हजम कर गया था और डकार भी नहीं ली थी। जियादा राजा हरीसचन्दर न बन, सारी पोल खोल दूंगी । अब मैं अपनी लड़ाई खुद ही लड़ लूंगी । तुम जाओ''''

फकीरा मुंह लटकाए अनमना-सा चला गया । भोमा उसे अपलक निहारती रही । उसे लगा कि फकीरा की पीठ पर किसी दैत्य का मुखड़ा चिपका हो''' फिर उसे अपना सपना याद आया तो आहिस्ता-आहिस्ता उसके मस्तिष्क में चक्रावात-सा घुमड़ने लगा ।

□ □ □

मलूक ने वापस आकर जवाब नहीं दिया । परसों की जगह पांच दिन बीत गये । लाचार भोमा सुबह-सुबह ही उसके घर गयी । शायद मलूक ने उसे जालीदार खिड़की में से देख लिया था, अत उसने अपनी बहू को समझा दिया कि वह उसे दरवाजे पर से ही टरका दे कि वे आज ही जयपुर से आये हैं''' और अभी वापस नापासर चले गये हैं ।

यह सुनते ही भोमा के मस्तिष्क के तार खिंच गये । नसें उभर आयीं । आंखों में रक्तिम डोरे उभर आये । हाथ को हवा में उछालकर उसने विद्रोही स्वर में कहा, 'ऐ मूंडी दूती! मुझे बना रही है । तेरा खसम कल तो टेसण के पास पकौड़े खा रहा था और तू उसे नापासर भेज रही है । जा, भीतर जाकर अपने खसम को भेज ।'

भोमा की मुंहफटी और झगड़ालू प्रवृत्ति-प्रकृति से सभी परिचित थे । वह जब लड़ाई पर उतर आती थी फिर किसी को कुछ नहीं समझती । वह इतनी दबंग थी कि किसी से भी मात नहीं खाती थी ।

'भरोसा नहीं है तो भीतर जाकर देख ले ।'

उसने रास्ता दे दिया । भोमा ने आक थू करके कहा, 'मुंह दुरावाड़िये की नामर्दी पर थूकती हूं ।'

वह घर लौट आयी।

उसके बच्चे जाग गये थे। नंग-धड़ंग और मैले बच्चे। सूखे-सूखे कुपोषण से अविकसित बच्चे...आंखों में गीड और पीले दांत वाले बच्चे। सबसे छोटे बच्चे के दायें पांव में लोहे का कड़ा था। वह धम से बैठ गयी।

उसकी झोंपड़ी टूटी-फूटी थी। जब से उसका पति उसकी ममेरी बहिन के साथ भागा था तब से उसके नीड़ के तिनके बिखरने लगे थे। उसका पति अच्छा कमाता था और दारू भी नहीं पीता था, नेक और भला दिखता था। देखने में सूधी गाय लगता था। भोमा की हुकिमाई को झेलता था। कई लोग तो उसके पति नैनिये को घाघरा का डेरा भी कहते थे""पर भोमा नहीं जानती थी कि इतने सीधे-सादे इन्सान के भीतर एक सांप भी कुंडली मारे बैठा है। वासना का सांप। वह बेचारी जान ही नहीं पायी कि सैंणा दिखने वाला उसका मर्द इतना घैणा है""एक दिन चुपचाप उसी की मामा की लड़की को साथ लेकर वह भाग गया जिसका आज तक पता नहीं चला। तब से धीरे-धीरे उसका अक्खड़पन, लड़ाकू प्रवृत्ति और आक्रोश नंगा होता गया, इस पर अभाव, भूख और महगाई ने उसके एक-एक क्षण को जैसे छेद डाला, जब उसे यह पता चला कि उनकी जाति के लिए सरकारी नौकरियां सुरक्षित है तो वह बेरोजगार दफ्तर के चक्कर निकालने लगी।

सात महीनों में वह बीस बार मेनत मजूरी छोड़कर दफ्तर गयी पर हर बार कोई न कोई बहाना बनाकर टाल दिया जाता। वह टूट गयी। उसके भीतर पहले गालियों से लिपटा विद्रोह जन्मा जो उसके मन आकाश पर विध्वंसकारी विद्रोह के रूप में फैल गया। शायद उसके इतने नंगे सपने की यही सार्थकता थी। यह प्रतिबिंब था।

अपने अंधेरे से लिपटे भविष्य को लेकर वह अब इतनी टूट चुकी थी कि वह कुछ भी अनहोना करने के लिए तैयार थी। उसमें भीषण अविश्वास की भावना भरती जा रही थी। मौजूदा व्यवस्था, नौकरशाही और नेताशाही सबके प्रति उसमें एक पाखंड नजर आता था। विभिन्न वितृष्णा, खीज और मटियामेट करने जैसी भावना भीतर जन्मती थी जिसे वह शब्द नहीं दे पाती थी। उसे लग रहा था कि एक दिन ये अजगरी विषमताएं और कमियां उसे और उसके बच्चों को निगल जायेंगी""ये स्थितियां कभी-कभी इतनी प्रखर और गहरी हो जाती थी कि वह अपना सन्तुलन खोकर छुरू की माफिक तेज हो जाती थी। अनिश्चय के अदृश्य कांटों में घिर जाती थी।

इसी बीच उसे अपने कपटी पति की याद आती थी तो उसके भीतर धूल भरे ववंडर उग जाते थे और वह स्वयं को उसमें फंसी हुई पाती थी।

'मां!' उसके छोटे बच्चे ने उसके कंधे पर हाथ रखा। हालांकि बच्चा

बहुत मैला-कुचैला था—गालो पर मसाल दे पर भोमा की आँखों मे ममता की पवित्र जगमगाहट थी।

वह चीकी, उसने उसे प्यार से चूमा।

'भूख लगी है।' उसने कहा !

'रोटी खा लो।'

'रोटी बहुत सूखी व कड़ी है।'

वह मुसकराकर बोली, 'तो बेटे ऐसा कर कि उसे पानी में भिगोकर जरा नमक डालकर खा ले।'

उसने अपनी बारह साल की लड़की छिन्नकी से कहा, 'जा इसे रोटी भिगो कर खिला दे और फिर भाइयों को साथ लेकर भीख मागने चली जाना।'

'हा मां, जब दोनो साथ रहते हैं''' भीख ज्यादा मिलती है।'

उसने इस बात का कोई जवाब नही दिया। सहसा वह गहरे अवसाद से घिर गयी।

भोमा ने अपना मुंह धोया। बालो को ठीक किया। उसे अपना सपना फिर याद आया। सपने के साथ वह अपने वास्तविक रूप को अपने भीतर देखने लगी। एक लड़ाकू और दुर्दांत रूप।

जब वह घर से चली तब उसे सपना फिर याद हो आया। एक नया सपना।

वह दफ्तर पहुंची। उसके इरादे आज जरा भी नेक नही थे

जवान चपरासी ने उसे देखा और एक व्यग्य भरी मुसकान के साथ कहा, 'आ गयी,''' क्यो आती हो ?''''यहा कुछ भी होना-जाना नही। सब चोर-उचक्के बैठे है''' सब गुड़ घटाल है''' साहब बिना राजी हुए कार्ड नही निकालेगे।'

उसने मन ही मन कहा कि साला मोटी गर्दनवाला गैंडा।

फिर वह तिक्त स्वर में बोली, 'गैंडे की औलाद ! अभी तक तुम्हारा चुपचाप धमीडा सहने वाली उन लुगाइयों से पाला पड़ा है जो बेबसी मे लडती झगड़ती नही है। पर मैं सांसण भोमा हूं''' मैं भूत से नही डरती। मैं जब अपने पर आती हूं तो अच्छों-अच्छों को उनकी मां याद आ जाती है। आज मैं अपने पर आयी हूं, समझे ?'

भोमा तीर की तरह निकलकर साहब के कमरे मे प्रविष्ट कर गयी। चपरासी अरे''''अरे''''अरे करता पीछे भागा। सहसा भोमा के दिमाग मे सपना घूम गया।

उसने फटाक से दरवाजा बद किया। अधिकारी चौंका। भोमा का रौद्र रूप देखकर वह घिघियाने लगा, 'तू''' तू''''भीतर कैसे आ गयी ?'

'मैं कई बार इस दफ्तर के चक्कर निकाल चुकी हूं''' पर अभी तक मेरा नाम भी दरज नही हुआ। तेरा एक-एक आदमी मुझे खा जाने की निगाह से देखता है, मेरी गरीबी की नही, इस शरीर की बातें करता है, जैसे मैं अपने

बच्चों की मां नहीं—कोई रंडी-वेश्या होऊं। पर साब जो नागी हो सकती है वह नागी कर भी सकती है। सभी कहते हैं–तू लुगाई जात का भूखा है""होऊं नागी""अपनी मां के साथ सोयेगा""चोट्टों! दुखियारों को सताने में तुम्हें क्या मिलता है!'

बाहर चपरासी दरवाजा खटखटा रहा था, 'दरवाजा खोलो""बचाओ"" बचाओ"" साहब की जिन्दगी खतरे में है""'

अफसर गिड़गिड़ाया, 'नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है, आज कार्ड बनवा देता हूं""शांत""देवी" शांत भगवान की कसम"" सच-सच""'

'सुनो मैं तो मरूंगी पर तुझे भी साथ लेकर मरूंगी।'

'शांत मेरी मा शांत, बैठो ""बैठो अभी।' उसका चेहरा पसीने से भर आया।

फिर अफसर ने उससे बैठने को कहा। वह भयभीत-सा दरवाजे के पास गया। उसने दरवाजा खोला। बाहर किसी अज्ञात आशंका से घिरी भीड़ थी। वह तरह-तरह के वाक्य उछाल रही थी।

अफसर ने चंद पल उस स्थिति का जायजा लिया और फिर दहाड़कर बोला, 'यह क्या तमाशा है, क्यों चिल्ला रहे हो""जाओ! अपना काम करो!'

सब हतप्रभ! वे वस्तु-स्थिति को समझ नहीं पाये। मुंह लटकाए चपरासी को शिकायत भरी नजर से देखते हुए खिसक गये।

अफसर ने भोमा के पास आकर कहा, 'बैठो, सब कुछ ठीक करा देता हूं। दस-पंद्रह दिनों में तुम्हें नौकरी मिल जायेगी"" शांत" देवी शात, हंगामा न करो। सब ठीक हो जायेगा।'

भोमा उठ गयी। उसने मन ही मन कहा–लातों के देवता बातों से नहीं मानते। सपना सच्चा हो गया। जंजाल झूंठा नहीं था!

अफसर बाहर गया। सारे कर्मचारियों ने उन्हें सलाह दी कि पुलिस केस कर दिया जाय, हम सब चश्मदीद गवाह हैं कि इसने आप पर कातिलाना हमला किया।

अफसर ने उन्हें हिकारत की नजर से देखा। फिर चीखकर कहा, 'बकवास बंद करो। हर बात को प्रेस्टीज इश्यू बनाने का नतीजा अच्छा नहीं निकलता' गंदगी को कुचरने से बदबू ही मिलेगी"" एक के पीछे हजार बातें खुलेंगी। समझदारी इसी में है इसका कार्ड बना दो"" जल्दी करो"" यह काम अभी होना चाहिए।'

फिर वह अपने कमरे में नहीं घुसा वहां से कहीं बाहर चला गया।

भोमा जब कार्ड लेकर बाहर निकली तब समीप वाले मंदिर की घंटी टन् टन् टन् करके बज उठी।

एक और जटायु

यह कहानी मैं कभी लिखता ही नहीं, यदि भवभूति मुझे पर दबाव नहीं डालता। सार्वजनिक जीवन में यदि आपको लोकप्रिय होना है तो उसकी पहली शर्त यह है कि आप दूसरों की हां में हां मिलाते रहें। यह वोट की राजनीति का धर्म है। चाहे आप काम करें या न करें, पर हर काम में शामिल होने का ढोंग अवश्य करें। जैसे कोई आपके पास आए तो आप उसके साथ हो लीजिए। चाहे वह काम भीड़ का हो, या व्यक्ति का।

उस दिन मैं सुबह-सुबह उठ कर सूर्य के सामने प्राणायाम कर रहा था कि मेरे खास मित्र भवभूति ने गली में घुसते ही चिल्ला कर कहा —'नेताजी……नेताजी…… जरा नीचे आइए……।'

उसकी पुकार-गुहार निरंतर चलती रही। मुझे प्राणायाम बीच में छोड़ कर आना पड़ा। हालांकि मुझे बड़ी कोफ्त हो रही थी, पर मैंने एक जबरदस्ती की मुस्कान होंठों पर ला कर पूछा—'क्या है यार ? सुबह-सुबह दो क्षण भगवान का नाम भी नहीं लेने देते ?'

'विमल भाई, आपके लिए तो भगवान जनता-जनार्दन है। आपको बताऊं, एक नितांत दुर्दांत घटना के बारे में। ……जटायु की हत्या हो गई है।'

मैं काफी देर तक सोचता रहा कि यह जटायु कौन है ? मुझे वह बिलकुल भी याद नहीं आ रहा था। वैसे भवभूति मेरा लंगोटिया यार था। उसकी कई इलाकों में बहुत गहरी पैठ थी। वह जिसे चाहे पांच-सात हजार वोट दिला सकता था। मेरे मुंह भी लगा हुआ था। ऐसे लोगों को मुंह लगाना भी पड़ता है।

मैंने गंभीर स्वर में कहा—'मजाक तो नहीं कर रहे हो। जटायु को तो रावण ने कभी का मार दिया था, मां सीता को बचाने हुए।'

भवभूति ने तनिक तिरस्कार भाव से हवा में बायां हाथ उछालते हुए कहा—'तुम नेताओं में बस यही खराबी है कि मतदान के समय तो हर आदमी के नाम, पते और नाते-रिश्ते तक याद रख लेते हो, और बाद में उन्हें ऐसे भूल जाते हो जैसे हवा में उड़ने वाली सुगंध। जटायु को तुम कब से ही पहचान जाओगे—छह फुट लंबा, बलिष्ठ, परोपकारी दुनियादार, कुरूप आदमी। जब हम पिछले चुनाव में गहरी इलाके में वोट मांगने गए थे। तब धनरतन के—।'

'अरे वह ? भई ! उसे तो खूब जानता हूं। यह दैत्य किस्म का आदमी ?.........पर स्वभाव से तो वह देवता था।..........उस बेचारे की हत्या किसने और क्यों की ?'

'उस चोर ठेकेदार भवानी सिंह ने ?' 'किसलिए !'

'यह भ्रष्टाचार क्या न क्या करवा दे। बहुत रद्दी समय आ गया है।'

मैं जटायु को जान गया। वह एक दैत्य-शक्ति वाला बदसूरत इन्सान था। वैसे उसका सारा जीवन ही विचित्रताओं से भरा था। वह कौन था, किस जाति का था, कोई नहीं जानता। डाकोतन सुग्गी उसे नए कुंए के चौराहे पर से नवजात शिशु के रूप में उठा कर लाई थी।..........बिना सोचे-समझे ? लोगों ने उससे पूछा था—अरे सुग्गी यह पाप किसका उठा लाई ? कहीं नीच जात...... किसी का पाप......

सुग्गी जवानी में भी बड़ी मर्दानी मुंहफट औरत थी। उसने बिजली की तरह कड़क कर कहा—'है तो किसी मिनख का ही जाया।..........कोई भेड़-बकरी का तो पैदा किया हुआ नहीं है।'

सुग्गी के सामने कौन बोले ! हां जटायु का बचपन का नाम जट्टू था। वह नाम क्यों पड़ा ? दरअसल जटायु को हजामत के नाम से डर लगता था। इसलिए इसकी जटा प्रायः बढ़ जाती थी। इससे सुग्गी उसे जट्टू कहने लगी। जब कभी-भी उसके बाल कटवाए जाते, वह खूब रोता।

जब वह थोड़ा बड़ा हुआ तो उस परिवार ने उसके हाथ में बाल्टी और शनीश्चरजी की लोहे की परत की बनी भौंड़ी मूर्ति थमा दी और कह दिया कि चौराहे पर खड़े होकर पैसा मांगा करे। वह हर शनिवार को चौराहे पर बुत बना खड़ा रहता था। तब उसकी गैंड़े जैसी आकृति पर एक पथरीलापन छाया रहता था। वह इस मांगने के काम से इतना असन्तुष्ट व बेचैन रहता था कि उसकी आंखों में विद्रोह दहकता रहता था। उसका रंग बेहद काला था। आकृति इतनी भौंड़ी थी कि उसकी हमउम्र लड़कियां उसे देखकर निगाहें चुरा लेती थीं। एक भय से घिर जाती थीं।

अजीब सी शक्ति थी उसमें ! धूप, बरसात और ठण्ड को वह ऐसे झेलता था मानो लोहे का आदमी हो।

वह बहुत कम बोलता था। कोई उसे तीन बार पुकारता तो वह एक बार हूं...करता।

शेष दिनों में वह बीकानेर के फड़ बाजार में मजूरी करता था। उसकी खुराक जबरदस्त थी। इसीलिए डाकोत-परिवार की साठ साल की बुढ़िया सुग्गी के अलावा सभी उसे घर से भगाना चाहते थे। उसे कम से कम बीस रोटियां एक जून को चाहिए थीं। बीस रोटियों के बिना उसकी उदर-ज्वाला शान्त ही नहीं होती थी। इसलिए वह दिनभर बाजार में बोरियां व सामान ढोता था।

जब कभी भी उस परिवार की सबसे बड़ी बहू जेतकी कम रोटियां देती, तो वह रोनी सूरत बनाये सुग्गी के सामने खड़ा हो जाता था। सुग्गी उसे ममताभरी दृष्टि से देखती और पूछती—'क्यों रे जट्टू....पूरी रोटियां नहीं मिली क्या? बड़ी बीनणी (बहू) है न, यह बड़ी ही खोटे हिये वाली है। उसे दूसरे खोये ही नहीं लगते हैं। फूटी आंख भी नहीं सुहाते। सुवारथी है। जो दूसरे को भूखा तिसा रखता है न, भगवान उसे भी भूखा तिसा रखता है।'

तब सुग्गी अपनी हरे रंग की लकड़ी लेकर घर के भीतर जाती।

डाकोतों के घर प्रायः कच्चे ही थे। बीकानेर का यह क्षेत्र भी विरोधाभास से भरा था—एक ओर रईसों की नक्काशीदार हवेलियां और दूसरी ओर कच्चे कमजोर मकान।

तब सुग्गी लकड़ी बजाती हुई बड़ी बहू के पास पहुंचती और गुस्से में कहती तूने जट्टू को भरपेट रोटियां क्यों नहीं दी?

'मुझसे इतनी रोटियां नहीं बनाई जाती।....मेरे तो हाथ दुखने लगते हैं, यह आदमी है या राक्षस? हजार बार कह दिया कि अब इस पेटू को लम्बे हाथ जोड़ दो। पर तू ऐसी है कि इसे बन्दरिया की तरह सीने से चिपकाये रहती है।'

सुग्गी बहुत ही निडर व दबंग महिला थी। उसने पांवों व गले में मिलाकर दो सेर चांदी पहन रखी थी। वह बड़ी अकड़बाज थी। भड़क कर बोली—'ए निपूती, इसे हम हराम की रोटियां नहीं खिलाते, यह बेचारा मेनत मजदूरी करता है।....अपनी रोटियों से ज्यादा कमाकर हमें देता है। कान खोलकर सुन ले। मैं इसे नहीं, तुझे घर से निकालूंगी। तू बड़ी खडपगी (मनहूस) है। जिस दिन से घर में आई है, उस दिन से ही मेरा बेटा मांदा (बीमार) रहने लगा है। फिर तूने अपनी कोख भी नहीं खोली। ` ` `इसे रोटियां बनाकर पेटभर कर खिला, नहीं तो कल तुझे इस घर से धक्के मार कर निकलवा दूंगी। समझी!.... अभी तो मेरे तीनों बेटे मेरे कहने में हैं।'

धमकी जोरदार होती थी। जेतकी के होंट चिपक जाते। उसका तुनकना बन्द हो जाता।

धीरे-धीरे जट्टू को लगने लगा कि अब उसका इस घर में रहना ठीक नहीं है। वह इस घर से विदा होने का उपाय सोचने लगा।

वह और अधिक खामोश रहने लगा। अब उसने यह घोषणा कर दी थी कि वह सबसे बाद में खाना खाया करेगा। यानी जो खाना बच जाता था, वह उसे खत्म करके एक घाटा (छोटी मटकी) पानी पीकर सो जाता।

सुग्गी उसके इस परिवर्तन से परिचित थी। वह समझ गई कि जट्टू के भीतर एक आग सुलग रही है। यह आग कभी भी भयंकर हो सकती है।

उस दिन वह रात को आया तो उसके साथ खीवजी सोनार, सेठ बंसी, पण्डित रामदत्त आदि कई लोग थे।

सुग्गी उन्हें देखते ही आशंकाओं से घिर गई। बोली—'अरे जट्टू! क्या बात है? आज तेरे साथ ये ओपते चेहरे क्यूं? क्या कोई झगड़ा-टंटा हो गया?'

पण्डित ने आगे बढ़ते हुए आदर भाव से कहा—'सुग्गी बहिन, आज तेरा यह जट्टू बेटा असली जटायु हो गया?'

'क्यों?'

'इसने दो रावणों से सीता की इज्जत बचाई है।'

बात यह थी कि कोटगेट से थोड़ी दूर पर पहले सूनवाड़ पड़ती थी। सीता सेठ बंसी की बेटी थी। वह अपने ननिहाल से अकेली आ रही थी कि दो बदमाश शराबियों ने उसे घेर लिया। वह जोर से चिल्लाई। जट्टू उधर से निकल रहा था, चीख पुकार सुनी तो उधर लपका। बस फिर क्या था। उसने एक-एक मुक्के में उन्हें धराशाही कर दिया। शराबी धूल चाटने लगे। कराहने लगे। एक का तो दांत ही टूट गया था।

और जट्टू का नाम जटायू पड़ गया।

तब सेठ बंसी ने उसे बुलाकर पूछा—'जटायु तुम्हें क्या चाहिए? बोल! तूने मेरी इज्जत बचाई, अब मैं तेरी इज्जत करना चाहता हूं?'

जटायु ने हाथ जोड़कर कहा—सेठजी मुझे केवल रहने के लिए एक अलग झोंपड़ी चाहिये। मैं कलह पैदा करके किसी का घर तुड़वाना नहीं चाहता। बड़ी बीनणी (बहू) को मैं फूटी आंख नही सुहाता।....मेरे कारण सास बहू में हर-दम राड़ रहती है।'

सेठ ने उसे अपनी कोटड़ी में रहने के लिए कह दिया। जटायु बहुत ही खुश था।

वह सुग्गी के पास गया। अपराधी की तरह उसका सिर झुका हुआ था।

'क्या है रे? ऐसे क्यूं खड़ा है जैसे माईत (मां-बाप) मर गए हैं। अभी तो तेरी यह मांवड़ी जिंदा है!'

'मां। मैं यह घर छोड़कर जा रहा हूं।' उसने रुक-रुक कर डरते हुए कहा।

'क्या?' सुग्गी को लगा कि जैसे किसी ने उस पर प्राणघाती चोट मार दी हो! उसकी आंखें विस्फारित हो गईं। आकृति का बुढ़ापा सघन हो गया।

'हां मां, मैं निरभागा हूं। मां का सुख मेरे भाग में नहीं है। उसके साथ मैं खुड़पगा (मनहूस) भी नहीं होना चाहता। मैं बड़ी भोजाई को फूटी आंख भी नहीं सुहाता।'

'तो क्या हुआ? यह घर क्या उसके बाप ने दायजे (दहेज) में दिया है? मेरे खसम ने अपनी बूढ़ियों की कमाई से इसे चिणवाया है।....मेरे लाडेसर मेरे हेत की डोर को इतनी निरममता से न काट। यह हेत की डोरी बहुत मज

बत होती है। यदि तूने इस घर से बाहर पांव रखा तो मैं दीवार से सिर फोड़-फोड़ कर अपनी जान दे दूंगी।'

'नहीं मां, ऐसा न करना,' जटायु ने सुग्गी का हाथ जोर से दाब कर कहा 'तेरी जान के लिए तो मैं अपनी जान दे सकता हूं।'

'फिर मेरी सीढ़ी इस घर से निकलने के बाद ही जाना।'

'अच्छा मां।'

जटायु ने अपना इरादा बदल दिया। उसकी भद्दी आकृति पर करुणा की एक अपूर्व दीप्ति थी। वह भीतर चला गया। उसने अपेक्षा, तिरस्कार और घृणा को सह कर भी बाहर कदम नहीं रखा।

जब जटायु बीस साल का हुआ तब सुग्गी का देहान्त हो गया। अन्तिम दिनों में जटायु ने मां की खूब सेवा की। वह पहली बार फूट-फूट कर रोया। फिर उसका उस घर मे रहना कठिन हो गया। मन नहीं लगा। तिरस्कार भी बढ़ गया।

जटायु फिर सेठ बंशी के पास गया। उसकी बात सुनकर सेठ ने उसे अपने गांव भेज दिया। खेत में काम करने तथा प्याऊ मे पानी पिलाने के लिए। तब खेती भी भगवान-भरोसे होती थी। वर्षा हो तो खेती हो वर्ना सन्नाटे, सूनापन और रेगिस्तान की भायं-भायं।

जटायु को उससे कोई अन्तर नहीं पड़ा। वह दिन मे प्याऊ में बैठा रहता था और आने जाने वालो को पानी पिलाता रहता था।

घास-फूस की बनी प्याऊ थी। उसमे मिट्टी के बड़े-बड़े माटे तथा मटकियां रखी हुई थी। एक तांबे का लोटा व करवा (मागर) था जिससे जटायु दिन भर यात्रियों को पानी पिलाता।

सुबह-सुबह उठ कर सबसे पहले वह बाजरे की रोटियां व साग बना कर रख लेता। फिर रस्सी व कुल्हाड़ा ले कर जंगल मे जाता और फोग की लकड़ियां काट लाता। धीरे-धीरे जब लकड़ियां जमा हो जाती तो किसी ऊंटवाले के साथ शहर सेठ के घर भिजवा देता। रात को खाने मे कभी यदि साग नहीं होता तो वह नमक-मिर्च की चटनी या प्याज के साथ जीमता था। फिर एक छोटी मटकी पानी पीकर सो जाता था। उसे गहरी नींद आती थी। यानी वह करवट भी नहीं बदलता था।

ऊंटवाला रतना राईका उसका दोस्त था। राईके ऊंट के मामले में बड़े जानकार होते हैं। कहते हैं कि राईका चाहे तो ऊंट को छत पर भी चढ़वा सकता है। फिर रतना राई का तो विचित्र आदमी था। वह एक अच्छा पागी (खोजी) था। पदचिन्हों से वह चोर को पकड़ने मे बहुत माहिर था।

रतना एक दिन एक जवान लड़की को अपने साथ लेकर आया। लड़की गेहुएं रंग की थी, पर मांसल बदनी। उसके नैन नक्श आकर्षक व आमन्त्रण भरे थे। यानी पहली नजर मे ही वह युवती प्रभाव डालने वाली थी।

ठेकेदार नही माना । जटायु ने उस आदमी को झिंझोड़ डाला । ठेकेदार ने एक गोली चला दी । वह गोली उसके आदमी के लग गई ।""दूसरी और तीसरी गोली जटायु के लगी और वह आदमी तथा जटायु वहीं ढेर हो गए ।""साबजी ! उस कमीने हत्यारे ठेकेदार ने मेरे जटायु को मार डाला । मैं घायल जटायु के पास गई तो वह जिंदा था । मैंने उसे रो-रो कर पुकारा—उसने बस इतना ही कहा—तेरा नाम नहीं जानता पर जबसे तुझे देखा है तब से तुझे खूब परेम करने लग गया हूं"' तेरी इंकार के बाद""तेरी खूब ओलू (याद) आई । जो कभी रात में सोने के बाद पसवाड़ा (करवट) नहीं फेरता था, वह जटायु कई दिनों से चोखी तरह सो नहीं पाता था ।

'मैंने तड़प कर बताया कि मेरा नाम मरवण है ""। जटायु मुझे छिमा कर दे । तेरे नांव की चूड़ियां न पहन कर मैंने भूल की । मुझे निरभागी को क्या पता कि तू जितना शक्ल का मूंडा है, हिये का उतना ही चोखा है । मैं रो पड़ी।'

'मरवण""तेरी ओलू में मैं खूब जला""' वह तड़प-तड़प कर बोला । भीतर से पिंजर हो गया""मुझसे लिपटना मत, मैं सूगला (गन्दा) हूं""मूण्डा हूं कोजा हूं । मेरे डील से बास आती है न""। दूर रह मुझसे मरवण""। सूगला तो मुझे ईसर ने बनाया है ।""अरे । मुझसे लिपट न""? और साबजी वह मर गया । मैं उसकी लाश से लिपट लिपट कर रो पड़ी साबजी । मुझे उसकी लाश दिला दीजिए""मैं उसके साथ सती हो जाऊंगी ।'

'पागल न बनो ।' भवभूति ने उसे डांटा—'पहले मुझे इस अन्याय और अत्याचार की लड़ाई लड़नी है । उसमें तुम्हारी गवाही चाहिए । सती होना कानूनन अपराध है । समझी ।'

कहानी खत्म करते हुए सच कहता हूं कि जटायु की हत्या की खबर जंगल की आग की तरह शहर में फैल गई । देखते-देखते अस्पताल के आगे भीड़ जमा हो गई । उसकी शव-यात्रा में मैंने इतनी भीड़ देखी जितनी हमारे शेर-शहर नेताजी अनामचन्दजी की मौत पर भी नहीं हुई थी । पहली बार मुझे पता चला कि जब जटायु फड़-बाजार में मजूरी करता था, तब प्रायः वह हर एक आदमी के संकट में काम आता था । दुःख में शामिल होना उसकी आदत थी । हर औरत को वह आदर देता था और कोई किसी महिला को छेड़ देता तो जटायु लड़ पड़ता था । जनता में उसकी हत्या का रोष और तनाव था । मैं भी अगुवा बन गया । अवसर का फायदा, यही नेताई है ।

सच एक जटायु की एक और रावण ने हत्या कर दी थी ।

□

समन्दर

उस खूब सूरत नीली-नीली आंखों वाली शिक्षित युवती अमला की विवाह की शर्त भी विचित्र थी। जिसे सुनकर उम्मीदवार चौंक उठता था। जब वह उसका कारण पूछता तो तल्ख स्वर मे भौंहों में बल डालकर कहती, "कारण नहीं बताना चाहती। बस, मेरी शर्त है कि शादी के बाद में कभी समंदर के पास नहीं जाऊंगी। उसको देखना भी पसंद नहीं करूंगी..........समंदर"...हरा नीला समंदर, समंदर...... विशाल, विराट समंदर....... अपने दैत्याकार स्वरूप मे विध्वंसकारी लहरों रूपी हाथों को विभिन्न मुद्राओं मे हिलाता हुआ समंदर।"

वह भावावेश मे कविता कहने लगती।

"समंदर जहाजों व इनसानों को निगलने वाला हिंस्र समंदर।"

उसकी इन बातों से कइयों को वह असामान्य लगती तो कइयों को अहंकारी। भला कोई भी शादी करने वाला शर्त का कारण और रहस्य तो जानना चाहेगा, पर अमला थी कि कारण बताना ही नहीं चाहती थी। इस कारण उसकी शादी नहीं होती थी।

अमला की जिद्द की किरचों ने उसके मां-बाप को आहत-सा कर दिया। वे समझ नहीं पा रहे थे कि कौन-सी घटना या दुर्घटना है, जो अमला को इस शर्त को मनवाने के लिए बाध्य कर रही है। हालांकि वे काफी आधुनिक थे। मां टीचर थी और बाप आफिस सुपरिटेंडेंट। भाई एम. ए. के बाद आई.ए.एस. की तैयारी कर रहा था। सब-कुछ ठीक और अच्छा चल रहा था सिवाय अमला की शादी को लेकर।

उस दिन एक बहुत ही अच्छा रिश्ता फिर आया। लड़का प्रोफेसर था। अत्यंत मेधावी और मनोविज्ञान को समझने वाला। नाम भी था ज्ञान।

अमला को देखते ही उसके भीतर एक सुख का अनुभव हुआ। अमला को भी उसने प्रथम दृष्टि में प्रभावित किया। उसे अच्छा लगा।

ज्ञान ने सारी बात सुन-समझकर अमला की ओर देखकर कहा, "मुझे आपकी शर्त मंजूर है। मैं आपको समंदर की जगह रेत के समंदर की ओर ले जाऊंगा। वह भी एक समंदर होता है, रेत ही रेत।...... उस समंदर मे भागते हिरन, खरगोश, मखमल की तरह मुलायम ममोलिये, सांप, बांबी और पैणियां साप। अमलाजी, उस समंदर का नजारा भी बड़ा ही मनोहारी होता है। यदि

उसकी लहरिया रेत पर बैठकर फोटो खिंचवाएं तो लगेगा कि आप सचमुच ही लहरों पर बैठी हैं। एकदम अनुपम! दर्शनीय।"

अमला ने देखा, ज्ञान की आंखों में गहरापन था। एक सघन संवेदना का आभास था, जो आत्मा की गहराइयों से निकलकर आंखों में आ बैठती है।

ज्ञान ने मुस्कराते हुए कहा, "मैंने आपकी शर्त मान ली। बिना किसी हील-हुज्जत के। अब यदि आप बताना चाहें तो उत्तम, नहीं बताना चाहें तो भी उत्तम। मेरा कोई आप पर दबाव नहीं है पर अक्सर हम अपने भीतर किसी हादसे की ग्रंथि बना लेते हैं और जीवन भर उसकी पीड़ा से त्रस्त रहते हैं।" उसने हठात् उठते हुए कहा, "मैं चलता हूं। शादी की तारीख आप तय करेंगी।"

वह जाने लगा। अमला ने उसे एक प्रश्नभरी गीली निगाहों से देखा। कोई उत्तर नहीं। एक शब्द हीन स्थिति। चंद अबोले क्षण।

ज्ञान बाहर निकल गया।

केवल रह गया सूना और उसकी श्वासों से घिरा अकेलापन।

ठहरा-ठहरा मौन। उस मौन को तोड़ रही थी यदा-कदा परदे की सरसराहट।

अमला अपने भीतर धंसती गयी। झांकती रही। आत्म-दर्पण पर कुछ चेहरे उभरे। जाने-पहचाने और अनजाने।

उनमें गहरा हुआ एक चेहरा।

युवा और भोला चेहरा। बड़ी-बड़ी आंखें। फूटती मूंछें-दाढ़ी। मांसल सुगठित बदन।

ज़ाकिर।

उसे दिखायी दे रहा था, ओखा बंदरगाह। द्वारका से थोड़ी दूर स्थित ओखा बंदरगाह। टाटा कैमिकल्स और समदर।

शांत और मौन समदर। उस मौन में तैरती पालों की नावें। ठहरे हुए जहाज। क्रेनें। मजदूर और द्वारका द्वीप के गरीब, रोटी की जुझारू लड़ाई लड़ते हुए नाविक। यात्रियों और तीर्थ यात्रियों की आवाजाही।

अमला अपनी दो सहेलियों के साथ ओखा पहुंची थी बेट द्वारका के छोटे-से द्वीप का मजा लेने।

ओखा बंदरगाह पहुंचते ही वे तीनों सहेलियां उतरीं। नावों से इस पार से उस पार ले जाने वाले उनके पास लपककर आये। अमला ने जीन्स व लाल कुरता पहन रखा था। किशोरावस्था को छोड़कर यौवन के उत्तेजक क्षणों में उसने कदम ही रखा था। बाप की लाड़ली, स्वतंत्र और दंभी लड़की। कैमरा भी रखती थी।

नाविक अजरुद्दीन ने उनके पास आकर कहा, "बहनजी, चलिए आपको नाव की सैर करा दूं।"

उस समय आकाश में बादल थे। मौसम खराब था। समंदर में तूफान-सा आ रहा था।

अमला कुछ बोलती, इसके पहले ही पांच छोटे-छोटे बालकों ने उसका घेराव कर लिया। बालकों ने केवल चड्डियां पहन रखी थीं। बार-बार वे समंदर में कूद रहे थे।

एक ने कहा, "बहनजी, आप दस पैसे फेंकिए, हम समन्दर से निकाल लायेंगे।"

तीनों सहेलियों के चेहरों पर आश्चर्य पसर गया।

समन्दर में से पैसा निकाल लायेंगे, जैसे उन्हें उन बालकों की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था।

अमला की सहेली मनसा ने उन बालकों को अविश्वास की दृष्टि से देखा। क्षणिक जड़ता भी आ गयी थी उसमें। फिर बोली "यह नहीं हो सकता""यह असम्भव है। दस पैसे का सिक्का समन्दर में से निकाल लाओगे?"

'हां, बहनजी। आप फेंककर तो देखिए।'

अमला झट से बोली, 'यार, फेंको न दस पैसे? दस पैसों में इतना मजेदार खेल कहां देखने को मिलेगा?'

वे तीनों पुल की ग्रिल से बनी दीवार के पास आ गये। तीनों ने एक-एक सिक्का दूर फेंका। फिर और एक-एक सिक्का फेंका। जैसे ही सिक्का फेंका जाता था, बच्चे वहीं से डुबकी लगाते थे और देखते देखते सिक्का मुंह में दबाकर ले आते थे।

कहते हैं—राजा, जोगी, अग्नि, जल इनकी उलटी रीत। डरते रहियो परस राम थोड़ी पालो प्रीत"

इस कथन में एक क्रूर सत्य है। ये चारों जब बिगड़ते हैं फिर उन्हें कोई भी काबू नहीं रख सकता। इनकी गहरी मित्रता हानिप्रद ही होती है।

समन्दर का पानी अचानक उत्ताल तरंगों में बदल गया। बड़ी-बड़ी लहरें समन्दर में लहराने लगीं। नाविक बाहर आ गये।

सुलेमान ने अमला के पास से गुजरते हुए अपने साथी से कहा, 'बड़े ही बदनसीब हैं हम, कल कोई मुसाफिर नहीं आया और आज समन्दर अपनी दुश्मनी निकाल रहा है? न जाने कहां से ये छिपे हुए तूफान आ जाते हैं।'

अमला ने झट से मनसा से कहा,-'हमारा तो मजा ही किरकिरा हो गया यार। वास्तव में यहां के [illegible] ही है।'

सुलेमान चौंका। फिर अमला के पास आकर कहा, 'क्या आपने मुझसे कुछ कहा?'

'नहीं तो ?' वह गम्भीर हो गई। सुलेमान कहने लगा कि फिर रुका।
अनुनयभरे स्वर में बोला, 'बहनजी ! आजकल दिन बड़े बुरे निकल रहे हैं। एक
पास की नाव में चार नाविक होते हैं। पिछले एक सप्ताह से हम चारों जने
केवल दस पन्द्रह रुपये ही कमाते हैं। ...भरपेट नमक-चावल भी नहीं खा सकते ?
पहले नमक को नाव में भरकर बम्बई ले जाते थे पर पिछली बार मेरा छोटा
भाई समन्दर के तूफान में फंस गया और मर गया। तब से अम्मा उधर जाने ही
नहीं देती। आज सोचा था कि अच्छे मुसाफिर आये हैं समन्दर की सैर करेंगे
तो अच्छे पैसे मिलेंगे पर हाय रे फूटे नसीब ! इस कमबख्त समन्दर में भी आ
ही तूफान आना था।'

मनसा ने सिर झटककर कहा, 'हमारा भी मजा खत्म हो गया वरना बच्चे
क्या मस्ती से पैसा निकाल रहे थे। वास्तव में ये बच्चे तो कमाल के हैं।'

सुलेमान के साथ जाकिर भी था। मामा का लड़का भी और बहनोई भी।
उसने छाती फुलाकर कहा 'बहनजी ! मैं इस तूफान में भी सिक्का ढूंढ़कर ला सकता हूं।'

'क्या ?' अमला की आंखें विस्फारित हो गयीं।

दोनों सहेलियां भी चौंक पड़ीं।

'हां।' उसने हलकी हुंकार की।

अमला ने उसे जैसे फटकारते हुए हवा में हाथ उछालकर कहा, 'अरे रहने दो, इस तूफानी समन्दर में सिक्का तुम क्या, तुम्हारे पुरखे भी नहीं निकाल सकते !'

सुलेमान ने सहमकर कहा, 'बहनजी ठीक कहती हैं। इस तूफानी समन्द से दूर ही रहना चाहिए।'

'ये कोई तगड़ा माल फेंके तो अभी लाकर बताता हूं।' जाकिर ने फिर अपनी बात को दोहराया। उसके चेहरे पर अदम्य साहस था।

अमला ने उसे जाकिर की चुनौती समझा।

विमला ने उसे टोका —'नहीं भाई, बड़ा खतरा है इस समन्दर में जाना। इन प्रचण्ड लहरों का क्या भरोसा ?'

अमला ने उसकी बात से असहमति प्रकट की। वह दम्भ से बोली, 'यह बेकार अकड़ रहा है।' फिर उसने जाकिर की ओर मुखातिब होकर कहा, 'यदि तुम सिक्का नहीं लाये तो मैं एक के दो लूंगी।'

जाकिर ने अकड़कर कहा, 'आप जितने का सिक्का फेंकेंगी, यदि मैं उसे नहीं लाया तो उससे दुगुना दूंगा।'

सुलेमान भीतर से घबरा गया। वह जाकिर का हाथ पकड़कर एक ओर खींचता हुआ ले गया। हाथ की पकड़ मजबूत थी। उसने उसे आशंकाओं व भय

मिश्रित स्वर में समझाया 'तुम्हें यह शर्त नहीं लगानी चाहिए। अभी तो मैं अपना एक भाई खो चुका हूं। यह समन्दर जब निगलने की रो में आता है, तब सभी को गटक जाता है।'

उसने जो उत्तर दिया, वह यह दर्शाता था कि हम वरुण के बेटे हैं। हमारा जन्म समन्दर में होता है और मरण भी समन्दर में। हमें समन्दर से रिश्ता नहीं तोड़ना चाहिए।

इधर अमला का अहम मानो आहत हो गया था। जाकिर की चुनौती ने उसे अन्दर से झकझोर दिया था। वह वहीं रोष से भर गयी थी।

अमला ने तेज स्वर में कहा, 'क्यों भाई, भाग रहे हो पीछे ? मैं तुम्हें कहती हूं कि पहले ही हार मान लो।'

'हार समन्दर का बेटा नहीं मानता।'

'तो फेंकूं सिक्का ?'

'फेंकिए।'

सुलेमान ने समन्दर को देखा। लगा कि समन्दर गुस्से में है। ज्यादा गुस्से में। इसीलिए उसकी लहरें गरज-गरजकर किनारों को चाटें मार रही हैं। व भयभीत सा जाकिर की ओर देखने लगा।

जाकिर ने अत्यन्त ही धीमे शब्दों में सुलेमान से कहा, 'सुलेमान ! मुझे शोक, मुझे कुछ नहीं होगा। जरा सोच, यदि आज पैसा नहीं मिला तो घर चावल नहीं आयेंगे, घर के बच्चों को भूखा सोना पड़ेगा।...आज सूदखोर पैसा नहीं देगा, पिछले दो महीने से उसका ब्याज ही नहीं पहुंचा है। वह बहु ही कायदा और बेरहम आदमी है। ऐसी हालत में मत रोको।'

वह भावुक हो गया। उसके स्वर में पीड़ा का समावेश हो गया। उस भीतर बेचैनियों के जैसे बीहड़ उग आये। उसे अपनी नवविवाहिता बीबी ध्यान शुरू याद आ गया। याचनाभरी आंखें स्मरण हो उठीं, जैसे वह ना दुल्हन की अभिलाषाओं की पूर्ति की मांग कर रही हो ?

'यह समन्दर मेरा कुछ नहीं बिगाड़ेगा भाई। अलबत्ता भूख हमारा अब बुरा कर देगी।' उसने भारी स्वर में कहा।

फिर उसने सुलेमान को नहीं देखा। अपने को सख्त और तेज करता हु वह अमला के पास पहुंचा।

न जाने क्यों अमला के अन्तस में अहम् जोर-जोर से चीखने चिल्लाने लगा उसने जैसे चीखते हुए जाकिर से कहा, 'अरे भैया, हार मान भी लो।'

'मैं हार नहीं मानूंगा। बताइए कितने का सिक्का फेंक रही हैं।' उस गरदन झटकते हुए अकड़कर कहा।

'पचास का सिक्का फेंकूंगी। पूरे पचास रुपये का।' इस एक अजीब समर अनवर उसकी दोनों आंखों में दीप्त हो उठा।

'प '' चा''''स ।' सुलेमान ने हकलाते हुए पूछा । उसकी आंखों में अवि-
श्वास की हलकी छाया थी ।

'पूरे पचास''''।' अमला ने शब्दों को लगभग पीस डाला ।

जाकिर ने कपड़े उतार दिये । वह तैयार हो गया । पलभर के लिए उसने खुदा की इबादत हेतु आकाश की ओर देखा और फिर बोला, 'फेंकिए सिक्का।'

समन्दर ऐसे गरजा जैसे उसे गुस्सा आ गया हो । एक मृत्युवरणी तरंग आकर किनारे से टकरायी ।

अमला ने अपने पर्स से सिक्का निकाला । यह सिक्का उसने नमूने के रूप में पर्स में रख छोड़ा था । सरकार ने उसे एक नेता की स्मृति में जारी किया था।

न जाने क्यों मनसा और विमला एक अजाने आतंक से घिर गयीं । वे कांप उठीं । दोनों ने एक साथ बोलकर अमला को सिक्का न फेंकने के लिए कहा ।

अमला ने घमण्ड से कहा, 'मैं हार नहीं मानूंगी ।'

और उसने सिक्का निकालकर फेंक दिया ।

जाकिर भी साथ-साथ कूद पड़ा ।

समन्दर नाराज हो गया । लहरों का भी वही गर्जन और नर्तन । उसने सबको डरा दिया, पर अमला में न जाने कौन-सा अमानवीय प्रेत घुस गया था, जिसने जोर-जोर से खिलखिलाना शुरू कर दिया ।

मनसा ने उसे चीखकर रोका ।

पर जाकिर समन्दर में गया सो वापस नहीं आया । निर्धारित समय के बाद तो सुलेमान व अन्य उपस्थितों की आकृतियां अवसाद और चिन्ताओं से घिरने लगीं ।

'जाकिर नहीं आया ।' सुलेमान के बदन में बेचैनियों व पीड़ाओं के सैलाब घुमड़ने लगे, इस वाक्य को याद करते ।

और, समन्दर भी जैसे नर का भक्षण लेकर शान्त हो गया । जैसे आज वह बहुत भूखा था ।

जाकिर के समन्दर में डूबने की बात तुरन्त फैल गयी । देखते-देखते वहां भीड़ इकट्ठा हो गयी ।

जाकिर की मां, मामी, भाभी, बहू और रिश्तेदार आ गये । जो भी तैरना जानता था, वह समन्दर में कूद पड़ा ।''' पर जाकिर की लाश वहां से थोड़ी दूर किनारे पर मिली ।

बहुत ही दर्दनाक दृश्य था । जाकिर की जवान बीवी अपने पति की लाश से लिपट-लिपटकर करुण क्रन्दन और चीखें मार रही थी ।

जाकिर की मां की आंखों में समस्त वसुन्धरा की वेदना थी । जड़ता और . के अहसास के मिले-जुले भाव ।

ममता भी बेचैन हो गयी। उसे लगा कि हर व्यक्ति उसके गोरे-सलोने मुखड़े पर लानतें बरसा रहा है।

जाकिर की भाभी ने कहा, 'यह खूबसूरत औरत हत्यारी है।'

ममता ने धीरे से कहा, 'अब यहां से खिसक चलो वरना... उत्तेजित लोग कुछ भी अनिष्ट कर देंगे।'

वे तीनों अपने स्कूटर पर बैठकर धीरे-से निकल गयीं।

□ □ □

अपने कमरे में बैठे हुए ममता को लगा कि वह सचमुच हत्यारी है! वह अपराध-बोध से घिरती गयी। दर्द के बीहड़ों ने उसकी आत्मा को घेरकर दम-पीड़ा देनी शुरू की। सचमुच वह हत्यारी है। यदि वह संयम और शालीनता से काम लेती तो यह दुर्घटना नहीं घटती।

तीसरे दिन उसने पता लगाया। मालूम हुआ कि जाकिर पोस्टमार्टम की की रिपोर्ट में डूबने से मृत्यु की पुष्टि हुई है और उसके पेट में वह पचास का सिक्का भी निकला है।

जाकिर शर्त जीत गया। वह हार गयी। फिर ममता अपने को बहुत बड़ा अपराधी समझने लगी।

समदर को लेकर उसमें एक अजीब-सी भावना, अरुचि, भय भर गया। उसने निश्चय कर लिया कि वह अब कभी समदर को देखेगी भी नहीं।

धीरे धीरे यह अपराध-बोध उसके व्यक्तित्व का हिस्सा हो गया। उसकी ग्रंथि इस शर्त के रूप में जन्म गयी।

□ □ □

विवाह के बाद ज्ञान ने अनेक प्रयासों के बाद यह सारी घटना जानी। उसने ममता के कंधे पर हाथ रखा और कहा, "तुम खुश और नार्मल रहो, हम कभी भी समदर की ओर नहीं जाएंगे। बस, अपने को पीड़ित न करो। इस घटना को विस्मृतियों की गुफा में फेंकने की चेष्टा करो।"

ममता ने ज्ञान की ओर देखा, "ज्ञान, मेरे भीतर भी एक समंदर लहरा रहा है, जिसमें जाकिर तैर रहा है।"

'नहीं, अपने भीतर के समदर को सुखा डालो। इसी से मुक्ति मिलेगी।'

□

सतलड़ा हार

ठाकुर मुजसिंह पीठ तकिये के सहारे एकदम ढीले होकर पसरे हुए थे। पंखा हांफ-हांफ कर चल रहा था। ऐसे तीन पंखे ब्रिटिश काल में उन्हें तत्कालीन जिलाधीश रेनाल्ड साहब ने भेंट किए थे। भेंट करते समय अत्यन्त प्रसन्न होकर वे बोले थे, 'वैल मुजसिंह तुम सचमुच अच्छे आदमी हो। तुम्हारा हृदय विशाल है। हमने जो चीज मांगी, वह तुमने तुरन्त दे दी। मैं तुम्हारी 'सरवतड़ी' को अपने साथ विलायत ले जाऊंगा। वह एक कम्पलीट वूमैन है।'

सरवतड़ी ठाकुर की दरोगिन की जवान बेटी थी। वैसे वह ठाकुर की ही बेटी थी पर दरोगिन के पेट से जन्म लेने के कारण उसे ठाकुर की सगी बेटी का मान नहीं मिला था।

सरवतड़ी अपूर्व सुन्दरी थी। साहब की नजर चढ़ गई। बस मांग ली। ठाकुर ने सरवतड़ी के बदले विलायती तीन पंखे मांग लिए। साहब ने तुरन्त दे दिए।

पर बड़ी ठकुरानी के सामने सरवतड़ी दहाड़ मार कर रोई तो वह ठाकुर के पास आकर बोली थी, 'आपने यह पाप क्यों किया? आपने सरवतड़ी""।'

उसके वाक्य को तीव्रता से काटते हुए ठाकुर ने दांत पीस कर कहा 'चुप रहो। मुझे सलाह देने की कोई जरूरत नहीं। तुम्हें क्या पता, मैंने कितनी सरवतड़ियां पैदा कर दी हैं।"" देख, कितने शानदार पंखे हैं"" विलायत के बने हैं"" कलेक्टर साहब ने भेंट दिए हैं। जात-बिरादरी में मान बढ़ेगा।'

ठाकुर हर आगन्तुक के सामने इन पंखों का सालों जिक्र करते रहे।

इस बात को पच्चीस साल हो गए थे। अंग्रेज चले गए पर ठाकुरों की ठकुराई और मनोवृत्ति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। बाहरी बदलाव से अबूझ कई लोग अपने ही सामन्ती परिवेश में जीते थे और अपने मुर्दे मूल्यों की रक्षा कर रहे थे।

एक दिन उनके गांव का जौहरी मोतीचंद उनके पास आया। मोतीचंद का कलकत्ता में हीरे-मोतियों का व्यापार था। समय-समय पर गांव आता-जाता था। ठाकुर से भी मिलता था।

पिछली बार ठाकुर के पास आया था तब उसकी दृष्टि ठाकुर की सातवीं पत्नी 'केसरदे' पर पड़ी। केसरदे अनुपम थी। देखते ही युवा सेठ के मन में वासना-जनित लगावों का झंझा उठ गया।

इस बार भी उसकी केसरदे से अप्रत्याशित भेंट हो गई और निगाहें टकरा गईं। दोनों के होठों पर एक मनचाही मुस्कान नाच गई।

सेठ सोचने लगा कि यह यहां सड़ रही होगी। तिल तिल पिंजर हो रही होगी। मैं इसे प्राप्त कर लूं तो…? उसकी मनोवृत्ति उजागर हुई कि रूपली पल्ले तो रोई में भी भले।

ठाकुर ने सेठ की आवभगती की। आदर से कहा, 'पधारो सेठजी पधारो' अरे सेठ जी, कभी-कभी हमें भी कोई खास चीज दिखाया कीजिए। दिखाने के पैसे तो आप नहीं लेंगे ?

सेठ हंस पड़ा। बोला, 'सचमुच दिखाने के पैसे तो नहीं लेंगे ?'

और उसने हीरे मोतियों की कई चीजें दिखलाई। उनमें एक सतलड़ा हार था। सात लड़ियों का हार अद्भुत था। उसे देखते ही ठाकुर की आंखें चमक उठीं। लालच की स्फुलिंगें आंखों में दमक उठीं। अपने भद्दे होठों पर जीभ फिरा कर वह बोला 'यह हार कितने का है !'

'पैसों की बात छोड़िए, पहले हार को देखिए। पसन्द आए तो ले लीजिए… बहुत महगा नहीं है।'

ठाकुर मन ही मन बोला, 'समय की बात है वर्ना लठैत भेजकर यह हार मंगवा लेता पर अब… आह ! हार वास्तव मे अद्भुत है। यदि मिल जाए तो दूसरे ठाकुरों मे मान बढ़ेगा। यह भेंट दे दे तो…?'

फिर घर बाहर की बातें होने लगी। सेठ ने बातचीत के मध्य बिना प्रसंग केसरदे का कई बार नाम लिया। उसके अप्रतिम सौन्दर्य की प्रशंसा की। जाने के पूर्व उसने फिर केसरदे के रंग-रूप की प्रशंसा की।

ठाकुर उस हार को मुफ्त लेना चाहता था। उसके दिलोदिमाग मे वह हार कोहरे की तरह छा गया था। तन सोवणिया और मन-सोवणिया हार था वह। उसने हार को लेकर उसकी प्रशंसा मे फिर कई वाक्य जोड़ डाले।

यादों के सिलसिले मे अचानक उसे रेनाल्ड साहब की याद हो आई। उसने तुरन्त सोचा कि यदि यह सेठ रेनाल्ड बन जाए तो ? सेठ ने भी बार-बार केसरदे का नाम लिया है।

ठाकुर के अन्तस मे रंग-बिरंगे कबूतर उड़ने लगे। अधिक उत्तेजना व तनाव के कारण वह सुस्त हो गया। उसकी भृकुटियों से भरी आकृति बीमार सी लगने लगी।

ठाकुर जैसे स्वप्न से जगा हो, इस तरह चौंक कर बोला, 'सतलड़ा हार लाए हैं ?'

'हां।'

'मैं इसे लूंगा… जरूर लूंगा।' फिर उसने अपनी रानी को पुकार कर

कहा, 'सुग्गा ! तेरी सबसे छोटी ठकुरानी को जाकर कह कि वह खुद शर्बत लेकर आये।'

उसके जाने के बाद ठाकुर फिर उस हार को लेकर सोचने लगा, कितना मोहक है हार, रानियां-महारानियां ही ऐसे हार पहनती हैं। हीरे ऐसे चमक रहे हैं जैसे बोल रहे हैं। ऐसे दपदप कर रहे है जैसे मणिधर सांप ने मणियां बिखेर दी हों। इस हार को लेना है""पर मुफ्त में मिल जाये तो मजा आ जाये। यदि ये सेठ दे दे तो इसको क्या अन्तर पड़ेगा ?'

'ठाकुर सा क्या सोचने लगे ?'

ठाकुर फंस से हंस पड़ा। फिर पलकें नचाता हुआ बोला, 'सेठजी ! मैं सोच रहा था।' वह सभल कर झूठ बोला, 'कि समय कितना बदल गया है ? समय की शक्ति के समक्ष शूरमाओं को भी धूल चाटनी पड़ जाती है। आप तो जानते ही हैं कि हमारे घर की औरतें खिड़की से झांक नहीं सकती थीं, आज कारों में घूमती रहती हैं। यदि बड़े अतिथि का वह आदर न करे तो अतिथि अपमान समझता है।"" आप कितने बड़े व्यापारी हैं। पहले हमारी आप रैयत थी पर अब बराबर के आदमी बन गये हैं। यदि हमारे घर की प्रमुख सदस्या आपका आदर न करे तो आप बुरा मानेंगे न ? कलकत्ते के कितने बड़े जौहरी है आप ? लीजिए ठकुरानी जी आ गई हैं ?'

ठकुरानी केसरदे की रग उड़ी साधारण पोशाक थी। बोर सिर पर बंधा था। हाथों में पुरानी चूड़ियां। गले में एक मादलिया।

तभी ठाकुर को खो-खों करके खांसी आने लगी। खंखार थूकने के लिए वह लपक कर बाहर चला गया। यह खांसी उसने जानबूझकर की या स्वाभाविक रूप से हुई, यह कहना कठिन है।

एकांत पाते ही सेठ ने वह हार केसरदे के पांवों में डालते हुए कहा, 'पहले मेरा मुजरा मानिए केसरदे जी। फिर इस हार को देखिए ठाकुर सा इसे लेना चाहते हैं ?'

'मुझे सब पता है। मुझे शर्बत लाने के लिए तभी कहा गया है।' उसने तिक्त स्वर में कहा।

'फिर आप यह भी जान गई होंगी कि ठाकुर की नीयत क्या है ? उसकी नजर में अपनी लुगाई का मोल क्या है ? एक पांच दस हजार के हार के लिए उन्होंने आपको मेरे सामने पेश कर दिया। यही उनकी नैतिकता है""मैं झूठ नहीं बोलता मैं भी पहली नजर में आपके अपूर्व रूप पर मुग्ध हो गया था। शायद प्रथम दृष्टि प्रेम इसे ही कहते हैं ? मैं आपको चाहने लगा हूं और आपका यह लालची पति मेरे इस हार को मुफ्त में लेना चाहता है। यदि इसके बदले में आपको मांग लूं तो यह ना-ना करते मुझे आपको दे सकता है। इसे

सिर्फ हार चाहिए।""यह हार को मुफ्त में पाना चाहता है। आप इस नरक से निकल कर मेरे साथ चलना चाहती हैं तो आप मुझे थोड़ा अन्तराल के बाद पान का बीड़ा देने आइए। मैं फिर आधी रात को महादेव पीपल पर इन्तजार करूंगा। कलकत्ते ले चलूंगा। आप ठाकुर सा की कोई चिन्ता न करें। यह हार के बदले कुछ भी दे सकता है। सोचिए, मुझे आप बहुत पसन्द हैं।'

ठाकुर के आते ही केसरदे चली गई।

ठाकुर फिर बैठकर हार की बनावट की प्रशंसा करने लगा, 'यह हार किसी नामी-गिरामी सुनार का बनाया हुआ है।'

सेठ दम्भ से बोला—यह विलायत का बना हुआ है।'

सेठ जानता था कि विदेश के नाम पर ठाकुर ने केवल विलायत का नाम ही सुना हुआ है।

'मुझे पहले ही अनुमान हो गया था। सच सेठजी। विलायत के ठाट-बाट ही निराले हैं। मेरे एक खास दोस्त थे रेनाल्ड। यह विलायती पंखा है न? उसने पंखे की ओर संकेत करके कहा, 'ऐसे तीन पंखे मुझे रेनाल्ड साहब ने भेंट दिए थे। आज तक खराब नहीं हुए। हवा भी खूब देते हैं।'

सेठ ने गर्व से कहा, 'मेरा यह सतलड़ा हार ऐसा बना हुआ है कि उसे सात पीढ़ी पहनेगी। आप चाहें तो सतलड़े के सात हिस्से करके अपनी सातों ठकुरानियों को पहना सकते हैं? वैसा ही प्रभाव रहेगा, यही इसकी विशेषता है।'

'बेशक।'

फिर वे इधर-उधर की बातें करने लगे। सेठ को केसरदे का व्यग्रता से इन्तजार था। वह सोच रहा था पैसे का दाव खाली नहीं जाना चाहिए। पैसा इस समय का परमेश्वर है। सर्वस्व है।

तभी केसरदे पान का बीड़ा लेकर आ गई।

ठाकुर ने उल्लासित होकर कहा, 'यह बड़ी सलीके वाली लुगाई है।'

केसरदे ने उसे घृणा भाव से देखा।

फिर वह लपक कर भीतर चली गई।

सेठ ने ठाकुर को हार सौंपते हुए कहा, 'यह हार आप रख लीजिए""पैसों की चिंता करने की जरूरत नहीं। मुझे रेनाल्ड से कम मत जानिए""आपकी केसरदे हार से कम सुन्दर नहीं।'

ठाकुर बेहयाई से ही-ही हंसने लगा।

दूसरे दिन सुबह-सुबह बड़ी बूढ़ी ठकुरानी क्रोध से भरी हुई ठाकुर के पास आयी और गरज कर बोली, केसरदे कहां है?'

नशे की पिनक में ठाकुर जिदा मक्खी निगलते हुए बोला, 'मुझे क्या

कहा, 'सुग्गा ! तेरी सबसे छोटी ठकुरानी को जाकर कह कि वह खुद शर्बत लेकर आये।'

उसके जाने के बाद ठाकुर फिर उस हार को लेकर सोचने लगा, कितना मोहक है हार, रानियां-महारानियां ही ऐसे हार पहनती हैं। हीरे ऐसे चमक रहे है जैसे बोल रहे हैं। ऐसे दपदप कर रहे हैं जैसे मणिधर सांप ने मणियां बिखेर दी हों। इस हार को लेना है....पर मुफ्त में मिल जाये तो मजा आ जाये। यदि ये सेठ दे दे तो इसको क्या अन्तर पड़ेगा ?'

'ठाकुर सा क्या सोचने लगे ?'

ठाकुर फंदा से हंस पड़ा। फिर पलकें नचाता हुआ बोला, 'सेठजी ! मैं सोच रहा था।' वह सभल कर झूठ बोला, 'कि समय कितना बदल गया है ? समय को शक्ति के समक्ष शूरमाओं को भी धूल चाटनी पड़ जाती है। आप तो जान ही हैं कि हमारे घर की औरतें खिड़की से झांक नहीं सकती थीं, आज कारों घूमती रहती है। यदि बड़े अतिथि का वह आदर न करे तो अतिथि अपमान समझता है।... आप कितने बड़े व्यापारी हैं। पहले हमारी आप रैयत थी पर अब बराबर के आदमी बन गये हैं। यदि हमारे घर की प्रमुख सदस्या आपका आदर न करे तो आप बुरा मानेंगे न ? कलकत्ते के कितने बड़े जौहरी हैं आप ? लीजिए ठकुरानी जी आ गई है ?'

ठकुरानी केसरदे की रंग उड़ी साधारण पौशाक थी। बोर सिर पर बंधा था। हाथों में पुरानी चूड़ियां। गले में एक मादलिया।

तभी ठाकुर को खों-खों करके खांसी आने लगी। खंखार थूकने के लिए वह लपक कर बाहर चला गया। यह खांसी उसने जानबूझकर की या स्वाभाविक रूप से हुई, यह कहना कठिन है।

एकांत पाते ही सेठ ने वह हार केसरदे के पांवों में डालते हुए कहा, 'पहले मेरा मुजरा मानिए केसरदे जी। फिर इस हार को देखिए ठाकुर सा इसे लेना चाहते हैं ?'

'मुझे सब पता है। मुझे शर्बत लाने के लिए तभी कहा गया है।' उसने तिक्त स्वर में कहा।

'फिर आप यह भी जान गई होंगी कि ठाकुर की नीयत क्या है ? उसकी नजर में अपनी लुगाई का मोल क्या है ? एक पांच दस हजार के हार के लिए उन्होंने आपको मेरे सामने पेश कर दिया। यही उनकी नैतिकता है....मैं झूठ नहीं बोलता मैं भी पहली नजर में आपके अपूर्व रूप पर मुग्ध हो गया था। शायद प्रथम दृष्टि प्रेम इसे ही कहते हैं ? मैं आपको चाहने लगा हूं और आपका यह लालची पति मेरे इस हार को मुफ्त में लेना चाहता है। यदि इसके बदले में आपको मांग लूं तो यह ना-ना करते मुझे आपको दे सकता है। इसे

सिर्फ हार चाहिए।""यह हार को मुफ्त में पाना चाहता है। आप इस नरक से निकल कर मेरे साथ चलना चाहती हैं तो आप मुझे थोड़ा अन्तराल के बाद पान का बीड़ा देने आइए। मैं फिर आधी रात को महादेव पीपल पर इन्तजार करूंगा। कलकत्ते से चलूंगा। आप ठाकुर सा की कोई चिन्ता न करें। यह हार के बदले कुछ भी दे सकता है। सोचिए, मुझे आप बहुत पसन्द हैं।'

ठाकुर के आते ही केसरदे चली गई।

ठाकुर फिर ऐंठकर हार की बनावट की प्रशंसा करने लगा, 'यह हार किसी नामी-गिरामी सुनार का बनाया हुआ है।'

सेठ दम्भ से बोला—यह विलायत का बना हुआ है।'

सेठ जानता था कि विदेश के नाम पर ठाकुर ने केवल विलायत का नाम ही सुना हुआ है।

'मुझे पहले ही अनुमान हो गया था। मन सेठजी। विलायत के ठाट-बाट ही निराले हैं। मेरे एक खास दोस्त थे रेनाल्ड। यह विलायती पगा है न ? उसने पगे की ओर संकेत करके कहा, 'ऐसे तीन पगे मुझे रेनाल्ड साहब ने भेंट दिए थे। आज तक खराब नहीं हुए। हवा भी खूब देते हैं।'

सेठ ने गर्व से कहा, 'मेरा यह सतलड़ा हार ऐसा बना हुआ है कि उसे सात पीढ़ी पहनेगी। आप चाहें तो सातलड़े के सात हिस्से करके अपनी सातों ठकुरानियों को पहना सकते हैं ? वैसा ही प्रभाव रहेगा, यही इसकी विशेषता है।'

'बेशक।'

फिर वे इधर-उधर की बातें करने लगे। सेठ को केसरदे का व्यग्रता से इन्तजार था। वह सोच रहा था पैसे का दांव खाली नहीं जाना चाहिए। पैसा इस समय का परमेश्वर है। सर्वस्व है।

तभी केसरदे पान का बीड़ा लेकर आ गई।

ठाकुर ने उल्लासित होकर कहा, 'यह बड़ी सलीके वाली लुगाई है।'

केसरदे ने उसे घृणा भाव से देखा।

फिर वह लपक कर भीतर चली गई।

सेठ ने ठाकुर को हार सौंपते हुए कहा, 'यह हार आप रख लीजिए—इसको की चिंता करने की जरूरत नहीं। मुझे रनाल्ड से कम मत समझिए—आपकी केसरदे हार से कम सुन्दर नहीं।'

ठाकुर बेहयाई से ही-ही हंसने लगा।

दूसरे दिन सुबह-सुबह बड़ी बूढ़ी ठकुरानी क्रोध से भरी हुई ठाकुर के पास आई और गरज कर बोली, केसरदे कहां है ?'

नशे की गिरफ्त में ठाकुर सिर्फ अपनी सिर खुजाते हुए बोला, 'मुझे क्या

पता ? मैं उसके चींचड़ की तरह थोड़ी ही चिपका रहता हूं।' 'कानों में कौर मत लीजिए ठाकुर सा।""आपको सब पता है। आपको सतलड़ा हार मिल गया न? केसरदे से अदला-बदली छिः।

ठाकुर अपनी में आ गया। गालियां देता हुआ बोला, 'खूंसट, जबान ज्यादा बढ़ गई क्या ? तू तो खुद कहती थी कि केसरदे चोखी नहीं है। छिनाल रांड भाग गई होगी।'

अचानक गिरगिट की तरह रंग बदल कर ठाकुर विनम्र स्वर में बोला, 'सेठ ने मुझे हार भेंट किया है""आखिर में उसका ठाकुर हूं न ? सतलड़ा हार है आप पहनेंगी इसे ?'

एक घुटी हुई चीख बूढ़ी ठकुरानी के मुंह से निकली। आवाज भरी-भरी थी, 'मैं इस हार पर थूकती हूं""केसरदे की कीमत पर यह हार""?'

ठाकुर उसे चांटा मारता हुआ 'गरजा, चुप कर चुड़ैल""बक बक ज्यादा करने लगी है। गर्दन धड़ से अलग कर दूंगा।""जागीरदार, जमींदार और डेरों-वाली में लड़कियों की कोई कमी है ? कंकर-पत्थर समझते हैं हम बेटियों को। ""भलाई इसी में है कि इस बात को यहीं पर जमीदोज कर दो समझीं।'

फिर वह अनन्त तृष्णा व लालच के साथ बोला, 'यह हार कितना शानदार है। इसके हीरे तारों की तरह जगमग कर रहे हैं। मुझे सेठ ने भेंट दिया है। बड़ा आदमी हूं न ? बस, इतना ही याद रख मेरी पतिव्रता।'

ठाकुर ने मूंछों पर ताव दिया। उसी समय चौकीदार भाग कर आया। वह घबरा कर कहने लगा 'ठाकुर सा तोरणद्वार के गुबन्द टूट गए हैं। पोल गिर गई है।'

ठकुरानी चली गई। ठाकुर अब भी हार को निहार रहा था। अफीम का टुकड़ा मुंह में लेकर संयत स्वर में बोला, 'अरे ! कोई मिनख और जानवर तो नहीं मरा ?'

एक लंगड़ा और बहरा सन्नाटा पसर गया। □

संगोष्ठी

मेरे भीतर आक्रोश और वितृष्णा दोनों साथ-साथ जन्मीं। इससे तीव्रता से घुमड़ रहे अपने अन्दर के विचारों को मैं पकड़ नहीं पाया। सब गड़बड़ सा हो गया। फिर धीरे-धीरे मैंने अपने को सामान्य किया। मुझे पहली बार अपने अस्तित्व का अहसास हुआ। भीड़ में अपनी मौजूदगी का अहसास। अब मुझे अपने चारों ओर भीड़ नजर आई। आम आदमियों से परे बुद्धिजीवियों की भीड़। कलाकारों, साहित्यकारों, प्रोफेसरों, शिक्षकों और श्रोताओं की भीड़।

सारी भीड़ लॉन में इधर-उधर छोटे-छोटे टुकड़ों में फैली हुई थी। लन्च हो रहा था। एक सरकारी संस्था की ओर से संगोष्ठी के तीसरे सत्र के अवसान के बाद का लन्च। बहुत ही महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी थी—'मानव समाज, घातक हथियार और युद्ध।' बड़े-बड़े स्वनाम धन्य वक्ता देश के विभिन्न प्रांतों से हिस्सा लेने आए थे। मैं भी एक प्रबुद्ध श्रोता था। मैं युद्ध और आयुधों के संदर्भ में मानव की स्थिति के परिप्रेक्ष्य में वह पर्चे सुन चुका था। इस अन्तराल के बाद दूसरी संगोष्ठी शुरू होने वाली थी।

मुझमें आक्रोश व वितृष्णा एक साथ क्यों जन्मी? बात ही कुछ ऐसी थी कि संगोष्ठी के आज के पेपर के बाद सदा की तरह शंका-समाधान हेतु श्रोताओं को आह्वान किया गया। उसमें एक अति आधुनिक महिला ने एक प्रश्न किया। तब मैं यह तो नहीं समझ पाया कि यह महिला विचारों से कितनी आधुनिक है पर वह पोशाक से एकदम आधुनिक लग रही थी।""मांसल बदन होते हुए भी उसने जीन्स, आधी बांह का नीला स्पोर्ट शर्ट, गले में एक स्टील की पतली चैन, कानों में नीले मोतियों के लांग, कंधों तक के बाल जिनकी जड़ों की एक सूत भर की सफेदी बता रही थी कि यह खिजाब लगाती है। गहरा मेक-अप। उससे वह लगभग शूटिंग के लिए जाती अभिनेत्री लग रही थी। उसकी जीन्स में उसके उभरे अंग शायद ही उत्तेजना जगा पाते हों पर वितृष्णा जरूर पैदा कर रहे थे।

उस महिला ने अंग्रेजी में प्रश्न किया। मैंने उसे जिस ढंग की अंग्रेजी बोलते हुए पाया, वैसी अंग्रेजी अभ्यास के बल पर ही आती है। व्याकरण की त्रुटियों के साथ धारा प्रवाह अंग्रेजी बोलना। प्रश्न भी हास्यास्पद था। उत्तर देने वाले ने हिन्दी में जवाब दिया तो वह महिला झट से बोली, 'अंग्रेजी में बोलिए, यह इंटरनेशनल सेमिनार है।'

जवाब देने वाले प्रोफेसर कांत ने मुस्कराकर कहा, 'जानता हूं मैडम कि यह इंटरनेशनल सेमिनार है, पर आप जिस ढंग की अंग्रेजी बोली रही हैं, उससे लगता है कि आपको हिन्दी में ही जवाब देना पड़ेगा।'

सब लोग खिलखिला कर हंस पड़े। हाल में कई क्षणों तक शोर गूंजता रहा।...

पत्रवाचक ने फिर गम्भीरता से कहा, 'मैडम ! क्या अंग्रेजी में बोलने से ही सेमिनार अन्तर्राष्ट्रीय हो जाएगा ? अंग्रेजी के माध्यम से कुछ भी होना अन्तर्राष्ट्रीय नहीं होता।'

यही महिला लंच के बाद जब तीसरी बार आइसक्रीम खाने के लिए लाइन में लगी तो मुझमें एक साथ आक्रोश और वितृष्णा जन्मी। मैंने सोचा अपने आपको शिक्षित व शिष्ट समझने वाली इस महिला की अपनी कोई नैतिकता नहीं है।

तभी मुझे जोर की खिलखिलाहट सुनाई पड़ी। लगा कि तरह-तरह के ठहाके आपस में गुत्थमगुत्था हो रहे हैं। मैं धीरे से उठ कर उधर चला गया।

उधर चंद बुद्धिजीवी थे। पैंट-बुश्शर्ट ही उनकी पोशाकें थीं। हाथों में प्लेटें और चम्मच। वे दनादन खा रहे थे।

एक गंजे ने कहा, 'ये संगोष्ठियां क्यों होती हैं ?'

जीन्स और ढीला स्वेटर पहने हुए युवक ने कहा, 'इन लंचों के लिए।' वह फस से हंसा। फिर बोला, 'मनोज ! तुम बता सकते हो कि तुम यहां क्यों आते हो, जबकि तुम विचारों से फासिस्ट हो ?'

'देवेन ! मनोज तो यहां सिर्फ मस्ती मारने आता है। शायद तुम्हें पता नहीं, इसका कालेज पास में है।' दूसरे युवक ने व्यंग्य से कहा।

मनोज ने रसगुल्ला पूरा का पूरा गटकते हुए कहा, 'ये युद्ध न कभी बं हुए हैं और न कभी बंद होंगे। यह फिलासफी ही गलत है कि हम संगोष्ठिय करके युद्ध का खतरा मानवों पर से हटा देंगे। यह कितना सच है कि जिस विकास होगा, उसका विनाश जरूर होगा। जब इतने घातक हथियार बने तो कभी प्रयोग में भी लाए जाएंगे। हमें यह मान लेना चाहिए कि हम मृत्यु के करीब हैं।'

उसी समय एक युवती पास आयी। वह तांत की साड़ी में बंगालिन रही थी। उसने मनोज से कहा, 'हलो मनोज, हाऊ आर यू...?'

'फाइन मैडम।' मनोज ने उसकी ओर लपकते हुए कहा 'आप कै प्रीतिमा जी ? सुना है कि पूरा सेमिनार आप अटेंड कर रही हैं।'

'निश्चय ही। बहुत महत्वपूर्ण सेमिनार है। मैं एक दैनिक के लिए पर लिख रही हूं। ओह सॉरी, मैं जरा सेक्रेटरी से मिल लूं।'

वह लपक कर संस्था के सेक्रेटरी के पास पहुंची और उनसे उलझ गई। उसकी बदलती हुई मुद्राओं से लग रहा था कि कोई खास बात है।

मैं लपक कर उधर गया। सुना तो पाया कि प्रीतिमा जी सेक्रेटरी से विनती कर रही हैं कि उसे कन्वेंस के पैसे दिलाये जाएं क्योंकि वह सेमिनार दैनिक''''की ओर से अटेंड कर रही हैं। वह रिपोर्टिंग करेगी।

उसी समय एक युवक ने आकर बातचीत में व्यवधान डाला, 'सर! मुझे सेमिनार का बैग नहीं मिल रहा है? आखिर मैं इस संस्था का सदस्य हूं और बाहर से आया हूं।'

'आप मिस्टर आलोक से मेरा सदर्भ देकर बात कर लीजिए, आपका काम हो जाएगा।' सेक्रेटरी ने बेपरवाही से जवाब दिया।

'प्रो० के०''''सर। संगोष्ठी बहुत ही महत्वपूर्ण है। पेपर्स बड़ी खोज-बीन से लिखे गए हैं।'

सेक्रेटरी को उसके वाक्य में चापलूसी की बू आ गई। वे भन्ना कर व्यग्य से बोले, 'आप जाइए और बैग ले लीजिए वर्ना वे खत्म हो जाएंगे।'

युवक एकदम झेंप गया।

सेक्रेटरी ने प्रीतिमा से कहा, 'आप मिस्टर गुप्ता को कह दीजिए, वे दिला देंगे। मैं साइन कर दूंगा पर कॉन्वेंस में कोई कमी नहीं आनी चाहिए।'

'चिन्ता न करें।''' उसने जरा सहमकर कहा, 'एक बैग मैं भी ले लूं।'

'ले लीजिए।' जब आप रिपोर्टिंग कर रही हैं, तब बैग भी ले लीजिए।' सेक्रेटरी ने गर्दन झटक कर कहा।

तभी चपरासी ने आकर कहा, 'सर, आपको प्रेसीडेंट साहब बुला रहे हैं।

मैं अकेला हो गया। चारों ओर देखने लगा। डाइनिंग हॉल वाली लाइन पहले की तरह लम्बी थी। कई लोग दो-दो, तीन-तीन बार डाइनिंग पर हाथ साफ कर रहे थे।

एक मैला कुचैला पायजामा कुर्ता पहने तथा सिर पर टोपी लगाए हुए एक आदमी आराम से कुर्सी पर बैठा हुआ खाना खा रहा था।

मेरी उससे नजर टकराई। 'नमस्कार!' वह मुस्करा पड़ा। एक [illegible] लिया भाव था उसकी निगाहों में। उसकी मुस्कराती आकृति पर एक [illegible]।

मैं उत्सुकतावश उसके पास चला गया। उसने [illegible] किया और [illegible] की तरह पूछा, 'आपने खाना खा लिया भाई साहब!'

'जी।'

'[illegible] के इस [illegible] हुए [illegible] है?'

'बिल्कुल! दुनिया तबाह हो जाएगी।' मैंने उसके शब्दों को [illegible] हुए कहा, 'दुनिया पर [illegible] हो [illegible]। फिर भी हम [illegible] के लिए लड़ेंगे!'

उसने अपनी खिचड़ीनुमा काली-सफेद दाढ़ी को खुजाते हुए कहा, 'पर मैं तो समझता हूं कि जैसा हम जी रहे हैं, उससे तो अच्छा यही रहेगा कि हम मिट जाएं।'

मैंने सबसे पहले अहसास किया कि यह है कोई बुद्धिजीवी ही। मैंने उसकी बात से असहमति प्रकट करते हुए कहा, 'आदमी को इतना निराश नहीं होना चाहिए।'

वह हठ तू बोला, 'आशा लाये कहां से ? आदमी अपने आसपास के फैले हुए खतरों को क्या जानता नहीं ?'

'आप....।' मैंने उसका परिचय जानना चाहा।

'मेरा कोई परिचय नहीं है। वैसे मुझे लोग इस तरह जानते हैं कि मैं सदा आपको संगोष्ठियों व बैठकों में मिलूंगा। जैसे जहां भी रामायण का पाठ होगा है, वहां साकार-निराकार के रूप में हनुमान दैठता है, वैसे मैं हर रोज गोष्ठी एटेंड करता हूं। बस, आप मुझे हनुमान कह लीजिए।...भाई साहब। मैं गोष्ठियों में जाता ही इसलिए हूं कि मुझे अच्छा खाने को मिले। इस संस्था की हर गोष्ठी मे भरपेट स्वादिष्ट खाना मिलता है।....मैं झूठ नहीं बोलूंगा। मैं सुनने के उद्देश्य से कभी भी गोष्ठी में नहीं जाता। जब आता हूं तब कुछ सुन लेता हूं। जब आदमी कुछ सुन लेता है तब कुछ गुन भी लेता है।...यह गुनना उसका विवेक बन जाता है। यह विवेक बड़ा ही कष्टप्रद होता है।'

मुझे लगा कि यह आदमी बड़ा ही मेधावी है। यह अपने को छुपा रहा है। उसे कुरेदने की गरज से मैंने कहा, 'मैं आपकी बात से असहमत हूं। सभी ने अज्ञान को ही अन्धकार और कष्टदायक कहा है।'

वह मुस्कराया। उसने मुझे एक व्यक्ति की ओर संकेत करके कहा, 'यह जो व्यक्ति जल्दी-जल्दी खा रहा है, गर्ग जाति का बनिया है। अनपढ़, गूंगा बानू और बहरा।....यह जहां कहीं भी भीड़ देखता है, वहां पहुंच जाता है...इस सिलसिले में मैं थोड़ा परिचित हो गया उससे। आपको बताऊं, जब दिल्ली में दंगे हो रहे थे तब यह बड़े इतमीनान से खीर खा रहा था, जबकि मेरा खाना पीना हराम हो गया था। बताइए, लाशों पर खाना खाया जा सकता है ? खून जनी हत्याएं व लूटपाट के दौरान कोई चैन से रह सकता है ? पर यह सदा प्रसन्न रहता है और अजीब ढंग से मुस्कुराता रहता है। मुझे और आपको न्यूक्लियर आयुधों के युद्ध की भयानकता के बारे में पता है तभी तो हम उस विनाश की परिकल्पना करके एक दहशत से घिर जाते हैं। अधीर और बेचैन रहते हैं।

'आप निस्सन्देह इंटलेक्चुअल हैं।' मैंने उसकी प्रशंसा की।

'नहीं भाई, मुझे तो मेरे घर वाले एक विक्षिप्त व्यक्ति समझते हैं।' उसने

पीडा से लगभग कराहते हुए कहा, 'कुत्ते से भी बदतर जिंदगी जीता हूं मैं। अभी तो मैं कहता हूं कि हमारे भीतर जो हथियार हैं, लड़ाइयां हैं, खतरे हैं उनका सफाया कैसे होगा ? मेरे बेटे ही मुझे फालतू समझकर कोचते रहते हैं। उपेक्षा, घृणा और अलगावीपन का व्यवहार। ओह ! बड़ा दुःख होता है।'

मेरा मन उस इनसान की बात से बोझिल हो गया। वास्तव में हमारे भीतर छोटे-छोटे युद्धों के कई टापू हैं। इन टापुओं मे तरह-तरह के हथियार बन रहे हैं। ये हथियार भी उतने ही खतरनाक हैं जितने एटमी हथियार। भीतरी हथियार भी हमारी संवेदनशीलता की हत्या करते रहते हैं।'

'हलो भैया।'

'अरे अनाम—तुम—बड़े दिनों के बाद मिले ? क्या हाल है ?'

'इसके हाल मैं बताता हूं।' बीच में ही हीरेन्द्र ने आकर कहा, 'भैया ! अब अनाम जावाज खान बन गया है।' मुझे पहली बार मालूम हुआ कि अनाम मुसलमान है। मैं तो केवल उसे लेखक के रूप मे जानता हू।

'यह जान गया कि लेखक से ज्यादा मुसलमान बनने में फायदा है। यह चुनाव लड़ेगा माइनोरिटी के नाम से आगे बढ़ेगा छिः !' अनाम जल्दी से खिसक गया।

इन्टीमेट की खुशबू। मन उदास और बुझा-बुझा। आदमी दिन-प्रतिदिन बौना हो रहा है ? हम सबको क्या हो रहा है ?

एक कोमल स्पर्श।

तीन महिलाएं और एक मर्द हाथों में लंच की प्लेट लिए लॉन की ओर जा रहे थे। लगभग चारों मध्यम उच्च वर्ग या उच्च वर्ग के लग रहे थे।

वे मेरे सामने लॉन पर बैठ कर इतमीनान से खाने लगे। बातचीत करने लगे। मैं भी चुपचाप उनके पास बैठ गया।

हरी साड़ी वाली महिला ने कहा, 'मिसेज गुलाटी, पेपर्स में कोई दम नहीं है। वही पिटी-पिटाई बातें।'

लाल साटन पट्टी की साड़ी वाली महिला मिसेज गुलाटी ने कौर निगलते हुए कहा, 'मिस वर्मा, यहां कौन पेपर्स सुनने आता है। हम तो यहां टाइम पास करने तथा लंच लेने आते हैं।'

मर्द ने सिगरेट सुलगा कर कहा, 'वेस्टेज आफ मनी... पैसों का अपव्यय। इतनी भीड़ इकट्ठी करने की क्या जरूरत है। आजकल चारों ओर गोष्ठियों के शोर ही शोर। जैसे गोष्ठियों की ओला-वृष्टि हो रही हो !'

'आपको तो बुलाया होगा ?' मिस वर्मा ने पूछा।

'बिलकुल...आखिर मैं एक प्रोफेसर हूं...हिस्ट्री का प्रोफेसर...मुरलशाल

पर मैंने पी-एच० डी० की है। ...पर इस संगोष्ठी में कोई महत्व की बात नहीं हुई। सेंट-पर-सेंट रिपीटेशन।'

उसी समय संगोष्ठी के संयोजक डा. लाल उधर से गुजरे। चारों ने उन्हें प्रसन्न मुद्रा में विश किया।

वही गिरगिटी मर्द, होठों पर मुस्कान लाकर उनके पास पहुंचा और बोला, 'डाक्टर साहब! बधाई। इतनी महत्वपूर्ण गोष्ठी आज तक नहीं हुई। सारे पेपर्स अत्यन्त ही गम्भीर व नये आयामों को स्पर्श करने वाले थे।'

'थैंक्यू थैंक्यू....।'

संयोजक जल्दी से सरक गये मानो वे जल्दी में थे।

मर्द ने उन महिलाओं की ओर देखा तो मिसेज गुलाटी बोली, 'वाह सुदेश जी, आपने हमें झूठ बोलने से बचा लिया।'

सुदेश मुस्कुराया। उनके पास बैठते हुए बोला, 'मैंने सदा आप सबका उपकार ही किया है। आप सब के लिए मैंने झूठ बोला। कम से कम धन्यवाद तो दीजिए।'

तीसरी महिला जिसने पेंट व बुशर्ट पहन रखा था, तपाक से बोली, 'मैं धन्यवाद नहीं दूंगी। आपने संगोष्ठी की इतनी तारीफ क्यों की जब आपने अभी-अभी उसकी महत्ता को नामंजूर किया था।'

सुदेश ने लापरवाही से हवा में हाथ उछालते हुए कहा, 'यही तो आज के महानगरीय चालाक आदमी का चरित्र है। अरे! आपको यदि किसी से लाभ उठाना है तो आप उसकी मुंह पर तारीफ कीजिए और पीछे से जो मन में आये बकिये।'

'छिः' फातिमा ने गर्दन को झटका दिया।

'मिस फातिमा, आप इसीलिए ही तो नौकरी नहीं पा सकी। अरे! जमाने को समझिए।' उसने नितांत बुजुर्गाना अंदाज में कहा।

'अपने खुद को नदारद करके मैं कुछ भी सुख-सुविधा नहीं पाना चाहती।' उसने कठोर स्वर में कहा। उसकी आकृति रक्तीली हो गयी थी। वह फिर बोली, 'सुदेश जी मैं कुछ भी करूंगी वह अपनी योग्यता के बल पर। मैं बिचारा कभी नहीं बनूंगी।'

वह फिर बोला, 'फातिमा जी, जमाने को समझिए।'

मेरा दम न जाने क्यों घुटने लगा।

उठ खड़ा हुआ इधर-उधर उपस्थिति के बीच में टहलता रहा। तभी किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा। मैं चौंक पड़ा। पलट कर देखा। मेरी आंखों में चमक जाग उठी, 'अरे जोगेश तुम। ...कब आये यहां?'

'संगोष्ठी के शुरू होने के पहले ही आ गया था।'

'देखा तो नहीं।'

'सबसे आगे बैठा था। पीछे कोई सीट भी खाली नहीं थी।' जीतेश ने मुझे झट से पूछा, 'आदमी पहली पंक्ति में बैठने से क्यों हिचकिचाता है?'

'हीनता के कारण।'

'संगोष्ठी कैसी रही?'

'मुझे इसकी सार्थकता के बारे में संदेह है। युद्ध और घातक हथियारों से खतरा क्या केवल हम जैसे बुद्धिजीवियों को ही है। हर छोटी-बड़ी बात की आम आदमी तक पहुंच होनी चाहिए। यहां तो जिन्हें बुलाया गया है, उनमें से दस प्रतिशत को छोड़कर कोई भी सीरियस नहीं है। फिर वही सब उगला जा रहा है, जो भीतर डाला गया था। कोई नयी जानकारी नहीं। इतने पैसों से तो एक छोटा-सा आन्दोलन चलाया जा सकता है, जो आम आदमी तक घातक हथियारों व युद्ध के विरुद्ध जनमत संग्रह करने का एक रास्ता हो सकता है। ऐसी चर्चा है कि जिन्हें बोलने के लिए बुलाया गया है, वे अधिकांश संयोजक जी के रिश्तेदार और दोस्त हैं वर्ना डाक्टर आशुतोष को अवश्य बुलाया जाता?'

बादल का एक टुकड़ा सूर्य के आगे आ गया था जिसमें चिलचिलाती धूप खत्म हो गई थी, क्षणभर के लिए।

जीतेश ने सहसा मेरे हाथ को पकड़ा और घसीटता हुआ एक कोने में ले गया जहां दो खाली प्लेटें पड़ी हुई थी। जैसे उसे कोई संगीन बात याद हो आई हो।

'क्या बात है? सहसा ऐसे क्यों गम्भीर हो गये?' मैंने पूछा।

जीतेश ने दुःख से कहा, 'मेरी बहिन घर लौट आई है। उसे उसके पति ने मार-मार कर अधमरा कर दिया है। वे दहेज में स्कूटर मांग रहे हैं और मेरा जैसा मास्टर कहां से स्कूटर देगा? यार! मेरी मदद करो।'

मैं एकदम गुस्से में भर गया। मुझे हनुमान की बात याद आ गई। वास्तव में हमारे भीतर कितने घातक हथियारों से लैस युद्ध जमा हुए पड़े हैं। मैंने उसे पुलिस में रिपोर्ट करने के लिए कहा। वह डर गया। तभी लंच टाइम खत्म हो गया था। मैंने उसे समझाया कि रात को तुम्हारी बहिन से सारी स्थिति समझ कर कोई हल ढूंढेंगे। हम लोग हॉल में आ गये। संगोष्ठी फिर शुरू हो गई। एक प्रोफेसर ने पर्चा पढ़ा। इसके बाद सवाल-जवाब शुरू हुए अध्यक्ष महोदय की आज्ञा से। तभी एक युवक बीच में उठा। वेशभूषा से हिप्पी-सा लग रहा था। बिखरे बाल और उदास आंखों की दहक जैसे कह रही थी कि इसके भीतर कुछ सुलग रहा है। वह बिना अध्यक्ष की आज्ञा के माइक पकड़कर

चीखता हुआ बोला, 'यह घातक आयुध व युद्ध संगोष्ठी है या ये प्रोफेसर किसी क्लास को पढ़ा रहे हैं। इधर-उधर की बातें मारकर, उदाहरण देकर आयुधों की रचना प्रक्रिया बताकर आप लाखों रुपये खर्च करके कौन-सी उपलब्धि कर रहे हैं?' और उसने उस पर्चे की दस गलतियां बता दीं। संगोष्ठी में हलचल-सी हो गयी। अनेक लोगों ने नारे लगाये। शोर मचाया। विरोध प्रगट किया कि यह देश का पैसा बरबाद किया जा रहा है। वह शोर ठंडा हुआ ही नहीं था कि एक युवती ने एक युवक को चांटा मार दिया। वह बदहवास-सी चिल्ला रही थी कि इसने पीछे से मुझसे छेड़खानी की है। वह युवक भी तैश में आ गया और उसने एक झापड़ उस युवती को मार दिया। झापड़ संगीन था। युवती के लहू आ गया। फिर क्या! हड़कंप मच गयी। पुलिस को फोन किया गया। वह युवती हिन्दी-अंग्रेजी में चिल्लाती जा रही थी। गालियां बकती जा रही थी। वह युवक भी अंग्रेजी में ही गालियां बक रहा था। युवक के पास बैठने वालों ने आरोप तक लगा दिया कि यह युवती झूठी है और इसने व्यर्थ ही हंगामा किया है। कदाचित् इस तरह के हंगामे करना उसकी मानसिक दुर्बलता हो। आदत हो! जैसे बदनाम ही सही पर नाम तो होगा।

पुलिस आई और दोनों को पकड़कर ले गई। चंद साक्षियों के भी नाम लिखे गये। मुझे लगा कि हमें सचमुच अपने भीतर के हथियारों व युद्धों से पहले निपटना है।

□

डर

वह कई पल तक अपनी अजनबी निगाहों से दुकान को देखता रहा, मानों ; उसका निरीक्षण कर रहा हो। उसके साथ दो औरतें थीं। गेहूंए रंग की स्त-दुरुस्त। वे आपस में कुछ बतिया रही थी। उन्होंने नकली गहनों से अपने ो लाद सा रखा था। सिर से पांव तक अजीब सा शृंगार। पीतल, कांच हाथी-ांत और लाख के बने गहनों के अलावा रंग-बिरंगे कपड़ों की भी चूड़ियां थीं, जन्हें लोग उत्सुकता से देख रहे थे।

उन दोनों औरतो ने गहरा काजल भी डाल रखा था, जो पलकों के बाहर ाक पसर गया था।

मर्द ने धोती, कमीज और पांवों में जोधपुरी मोजडी पहन रखी थी।

वह सवाल भरी निगाह से देखते-देखते जैसे ही गम्भीर हुआ वैसे ही दुकानदार ने पूछा, 'क्या बात है भाई, रेडियो खरीदना है ?'

'जी नही।' उसने गर्दन हिलाई। गर्दन के साथ उसके कानों की सोने की मुरकिया हिल गई। दुकानदार कुछ बोलता, उससे पहले ही वह बोल पड़ा, 'रेडियो ठीक कराना है।'

'तो भीतर आ जा।'

वह फिर भी सहमता-सहमता भीतर आया। उसकी बगल में एक गठरी थी।

उसने गठरी रखकर कहा, 'मेरा रेडियो ठीक कर दीजिए। बोलता ही नहीं है।'

'पर रेडियो·······!'

'इस गठरी मे है!'

'खोल!'

उसने गठरी खोली। उसमें दो बैंड का एक ट्रांजिस्टर था। लोकलमेड।

दुकानदार ने ट्रांजिस्टर को उठा कर जैसे ही बैंड-स्विच को छुआ, वैसे ही उसे पता चल गया कि डोरी टूटी हुई है। उसने आगंतुक से कहा, 'थोड़ी देर बैठो, मैं ठीक कर देता हूं।'

ग्राहक ने पलट कर बाहर औरतों की ओर देखा, फिर नजदीक जाकर कहा, 'थं दोनूं बैठो! रेडियो अबार ही ठीक हो जासी।'

मैं अभी तक उन तीनों को एक अन्वेषक की निगाह से देख रहा था उन्हें लेकर मन में कई जिज्ञासाएं उमड़ रही थीं। अन्त में मैंने पूछ ही लिया, 'भाई तेरा कुण सा गांव है ?'

'निबाड़।'

'वह तो यहां से दूर है।' मैंने ललाट में बल डाल कर कहा, 'यहां तुम क्यों आए हो ?'

'मजूरी करने।'

'कहां ?'

'नहर पर।'

'बीकानेर के बीछवाल के पास ?'

'हां।'

'जाति ?'

'राजपूत भाट।' उसने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा, 'हम लोग बाल दिया भाट नहीं हैं। वैसे भी हमारा कोई पक्का ठोर-ठिकाना नहीं है। रोजी-रोटी की तलाश में इधर-उधर भटकते रहते हैं। पूरे राजस्थान से पंजाब तक। साबजी, पेट तो भरना ही पड़ता है। यह पेट क्या न दिखा दे !'

उसने बाहर की ओर देखा, मानो वह अपनी आंखों में आकाश की सारी शून्यता भर लेना चाहता हो।

दुकानदार ट्रांजिस्टर को ठीक करने में व्यस्त हो गया। उसके चेहरे से लग रहा था कि हमारी बातचीत में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है।

मैंने ही उसे कुरेदने की दृष्टि से पूछा, 'तुम लोग अपना स्थायी घर क्यों नहीं बना लेते ? पढ़ते-लिखते क्यों नही ? सरकार ने तुम लोगों को बहुत सी सुविधाएं दे रखी हैं। उनका लाभ क्यों नहीं उठाते ?'

वह नासमझ की तरह मुझे देखने लगा। उसकी आंखों में नासमझी का फैलाव था। एक जड़ता थी। फिर जैसे वह सफाई देता हुआ बोला, 'मैं आपका मतलब नहीं समझा ?'

मैंने उसे समझाने की गरज से कहा, 'भाई, मेरे कहने का मतलब यह है कि तुम लोग एक जगह टिक कर क्यों नही रहते ? कोई पक्का धंधा या नौकरी क्यों नही करते ?'

इस बार उसके चेहरे पर बुझापन छा गया। एक जानी-पहचानी चमक उठी, जो टूटे व हारे हुए लोगों की आंखों में रहती है। आहिस्ता-आहिस्ता बोला, 'साब जी, कौन सुख से रहना नहीं चाहता ! कौन नौकरी चाकरी करना नहीं चाहता, पर केवल चाहने से तो सब कुछ नहीं मिल जाता ! यदि मैं अकेला

चाह भी लूं तो जात-बिरादरी की बात भी आड़े आती है। दरअसल हमारी जात में पढ़ने का रिवाज ही नहीं है। जम कर नौकरी-चाकरी करना हमें सुहाता ही नहीं है। चलते-रहने की कुछ आदत सी बन गई है। हम लोग बस घूमते रहते हैं। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक.....। वह भी मौज-मस्ती के लिए नहीं, पेट भरने के लिए, रोजी-रोटी की तलाश में।' वह एक पल चुप रहा। फिर उसने जैसे कोई रहस्य खोला हो, इस तरह बोला, 'साब जी, हम दो ही बातों के पीछे कष्ट उठाते रहते हैं—एक रोटी के और दूजो ब्याह के।'

'ब्याह के ?' मैं चौंक पड़ा। उसे घूर कर देखने लगा।

शायद वह मेरी बात समझ गया हो, अतः अपने चेहरे पर उपदेशक जैसी गम्भीरता लाता हुआ बोला, 'साब जी, हमारी बिरादरी अलग है। उसके नेम-नियम और रीतिरिवाज अलग है। हमें एक शादी पर लड़की वालों को छह से दस हजार तक नकद रुपए देने पड़ते हैं।...यानी लड़की वाले एक लड़की के छह से दस हजार तक लेते हैं। हां, कोई-कोई भला आदमी धरम की बेटी भी ब्याहता है। एकदम धरम की नहीं।...वह केवल दो-तीन हजार रुपए लेता है, पर मुफ्त की बेटी कोई न देता।"

सहसा उसका स्वर बुझ गया। उसकी आंखों में पीड़ा की परछाइयां नाच उठीं। स्वर में अकेलापन तैर आया। बोला, 'मैंने अपनी लुगाई के दस हजार दिए हैं.....।'

'दस हजार रुपए ?' जैसे मुझे विश्वास नहीं हो पा रहा था।

'हां साब जी, हां !' उसने जोर देकर कहा, 'और उस कर्जे को उतारने में हमें पांच साल लगे हैं.....।'

मैं अपने आप में खो गया था। सोच रहा था कि हमारे सभ्य समाज में औरत को अक्सर पांव की जूती समझा जाता है, पर उसके समाज में औरत मूल्यवान है।

'मैंने पूछा, 'तो तुम अपनी लुगाई को पांव की जूती नहीं समझते ?'

'अरे साब जी, लुगाई को पांव की जूती हम नहीं समझते हैं। दस हजार कोई जूती की कीमत होती है। हमारी लुगाई तो सिरमौर है। बड़ी सूधी है मेरी लुगाई। एकदम गाय की तरह सूधी, भली। मेरा कर्जा उतारने में वह भी रात-दिन मेहनत मजूरी करती थी। मेरी बहन ने भी बड़ा सहयोग दिया।...सबने मिलकर कर्जा उतारा।'

'तुम्हें यह सब करने की क्या जरूरत थी ! बहन की शादी के दस हजार वापस मिल जाएंगे।' मैंने कहा।

'ना, साब जी ना...मैं अपनी बहन को धरम की दूंगा। केवल तीन

उसकी आंखें विस्फारित हो गईं। चेहरे पर आश्चर्य के दीपक जल उठे। वह मुझे घूर-घूर कर ऐसे देखने लगा जैसे मैं अजनबी हो गया हूं।

वह अजाने आतंक से घिर कर बोला, "साब जी, आप देवी-देवताओं के कोप व दोप से वाकिफ नहीं हैं। यदि होते तो ऐसी अणूती बात नहीं करते। आप नहीं जानते कि मेरी बहन कितना कष्ट पाती थी। ऐसे तड़पती थी कि मासें भर आती थी। दवा दारू का कोई असर नहीं हुआ। हार कर मेरी मा ने बाबा जी की जात मांगी और आज सब ठीक है। अब तो मेरी बहन भी मजदूरी मे सहयोग करती है। आज हम सब जो बेफिकरी की नींद सोते हैं, वह बाबा जी के कारण ही सोते हैं।"' फिर मा की बात भी रखनी है। उसने मरने से पहले कहा था—जसोदा को बाबा जी की छतरी ले जाकर धोक लगवाना।"' साब जी, बोलना को पूरी करना धर्म है। फिर मेरी बहन को भी हर समय वहम रहता है कि वह फिर बीमार हो जाएगी।'

'पर इतने रुपये खर्च करने के बाद तुम लोग पेट कैसे भरोगे ?'

शायद उसकी पत्नी ने हमारी बातें सुन ली थी। वह जैसे भपटती हुई आई और बोली, "सुनिए साब जी, इसे आप खोटी सलाह मत द। देवी-देवताओं क बोलना पूरी न होने से अणूती बातें ही होती हैं। आपको पता है कि मेरी नण ने क्या-क्या कष्ट भेले हैं ?"' गिलारी (छिपकली) की कटी पूंछ की तरह तड़पत थी। इन्हें चोखी सलाह दीजिए। आदमी पैसा तो अपने सुख के लिए कमाता है मैं जानती हूं कि हमारे पास घर क्या, अपना कहने को झोपड़ा भी नहीं है फिर भी जो वचन की बात है, उसे तो पूरा करना ही पड़ेगा। सास की बात बोलना यदि पूरी नहीं हुई तो बिरादरी में निंदा नहीं होगी! फिर बाबा ज माई ने दुबारा दोप कर दिया तो—!"

मैंने अपने शब्दों पर जोर देकर कहा, "यह अंधविश्वास है, फालतू ह है!—बहन जी, *कड़ी मेहनत की कमाई को जबरदस्ती मय से बरबाद करन* मूर्खता है।"

वह हंस पड़ी, जैसे उसे मेरी बुद्धि पर तरस आया हो। वह व्यंग भरे लह में बोली, "साब जी, आप भी हमीं गरीबों को उपदेश देते हैं।—आप हमारे साब को मना क्यों नहीं करते कि वह रविवार को भेरू जी क्यों भागता है हमारी हाजिरी लेने वाला वह जवान धनपत हर शाम बजरंगबलि के मंदिर माथा क्यों टेकता है ? हर छोटे-बड़े मंदिर के आगे छोटा-बड़ा मेला लगता है मैं अपनी नणद के सुख-संतोष के लिए उम्र भर की कमाई निछावर कर सक हूं।"' पैसा साथ लेकर कोई नहीं मरता।"

वह बापी तरस की। चेहरा तमतमा उठा। ट्रांजिस्टर ठीक हो गया थ वे पैसे देकर बाहर चले गए—अंध भय से घिरे-घिरे वे तीनों।

पर उनके जाने के बाद मैं ठीगे तनाव से घिर गया ! मैंने कुछ कहने के पहले यह क्यों नहीं सोचा कि इस अंधे व व्यर्थ के भय के शिकार सभी लोग हैं, वरना मंदिरों के आगे इतनी भीड़ कैसे होती ? ईदगाह की नमाज और गिरजे की प्रार्थना में इतने लोग क्यों आते हैं ?

ऐसे लोगों को याद कर मैं सोच रहा था, बांया जी देवी के आतंक से ग्रस्त अनपढ़ और गंवार लोग क्या इनसे कम आतंकित हैं ? यंत्र व पूंजी की दोगली संतान एक असहायता व डर के घेरे में जा रही है। शार्ट-कट से जल्द-से-जल्द कुबेरपति बनने की इच्छा ने आदमी को इतना कमजोर कर दिया है कि अठारिस में जाने से भी पहले वह ईश्वर को याद करता है।

अभी मैं सोच ही रहा था कि वह औरत वापस आई—आकुल-व्याकुल व भयभीत। और चीखकर बोली, "देखो आपकी गलत सलाह का अजाम ! दुकान से बाहर निकलते ही मेरी ननद को मिरगी आ गई।" साच जी बांया जी बड़ी चमत्कारी हैं।—मन में खोट लाते ही चमत्कार।"

मैंने उसे कोई जवाब नहीं दिया। बाहर जाकर देखा कि उसकी जवान ननद ऐंठ रही है। उसके जिस्म की नसें तनी हुई थीं। आंखें पथरा गई थीं। जबरदस्त अकड़ाव। भाई कातर भाव से उसे देख रहा था। करुणामय स्थिति थी।

उसके भाई ने पछतावे से कहा, "मैंने आपकी गलत बात सुनते ही दंड पा लिया।"

फिर वह बार-बार बांया जी को हाथ जोड़ने लगा।

मैंने तांगा मंगवाया। तुरंत उन्हें लेकर अस्पताल चल पड़ा।

उसे स्वस्थ होते-होते पांच दिन लग गए।

विदाई के समय मैंने उससे कहा, "तुम लोग बांयाजी जाओ या मावलिया जी, पर मैं तुम लोगों को कहूंगा कि जसोदा की अब शादी कर दो। देखना यह ठीक हो जाएगी।

वे मेरी ओर अर्थ भरी निगाहों से देखने लगे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि जसोदा की बीमारी का कारण उसका शादी न होना भी हो सकता था। सायास मर्द ने हाथ जोड़ा और औरत ने कहा, "यह भी तो बांया जी की कृपा से ही होगा।"

"नहीं, तुम्हारी कोशिश से।"

बस रवाना हुई। मैं उनसे एक अजीब से बंधन से बंध गया था। दिल भर आया था।

वे चले गए। मैं अपनी दिशा चल पड़ा। बस स्टाप के पास हनुमान मंदिर था। वहां अपार भीड़ थी।

सिलसिला

दरवाजे के ठीक सामने कोई [illegible] कचरे का ढेर डाल गया। इधर [illegible] की व्यवस्था बिल्कुल बिगड़ गयी थी। कोई अपनी [illegible] नहीं। [illegible] से बड़ा कर्मचारी [illegible] के प्रति उदासीन बन रहा था। जहां-तहां [illegible] डाल रखे थे और कई-कई दिनों तक मैला ढोने वाली गाड़ियां नहीं आती थीं। इससे नागरिक लोग परेशान और दुखी थे। बदबू के [illegible] हवा के साथ भरभराते रहते थे। बीच और [illegible] भी [illegible] क्योंकि उन [illegible] ने किसी ने मरे हुए चूहे भी डाल दिये थे।

बस्ती वाले हैरान थे कि ऐसा क्यों हो गया? किसने यह कचरा डाला? यह तो नागरिक शास्त्र के विरुद्ध है कि अपने लोगों के बीच यह कचरा कौन डाल गया? यह कोई मजदूरी तो नहीं है? मजदूरी के सामने अरजन का घर था पर उसने कोई विरोध नहीं किया। यह आश्चर्य ही था। अरजन ने भले ही जीवन में सम्पूर्ण तौर न बताया हो पर वह दिनभर जबान के अनगिनत तीर चलाता था। इन तीरों पर गाली और तानों के तीर होते थे! ये तीर चलते थे—सिर्फ पत्नी पर!

अरजन किस जाति का था—इसका सही अन्दाजा किसी को नहीं था। वह अपने को वर्मा लिखता था। उसका रंग काला था और शरीर थुलथुला। चमड़ी भैंसे की तरह सूखी-सूखी और कठोर। बाल घुंघराले और कद जरा ठिगना। आवाज खड़खड़ाती मानो किसी ने टीन पर कंकर गिरा दिये हों। अरजन सदा धोती हाफ कमीज पहनता था। पांव में चप्पल। वह भी कोल्हापुरी।

उसकी पत्नी उतनी ही सुन्दर और आकर्षक थी। छरहरे बदन की अच्छे कद-काठी की गोरीगट स्त्री। मोहल्ले वाले उसकी झलक कभी ही पाते थे, जब अरजन काम पर चला जाता और वह अपने को खुले आकाश की चिड़िया समझती। हालांकि अरजन उसकी एक-एक हरकत की जासूसी के लिए अपनी भांजी 'सतकी' को ले आया था। सतकी चौदह वर्ष की बिना मां की बेटी थी।....उसका बाप उसे बिल्कुल प्यार नहीं करता था।....वह तो कभी-कभी इतना तक कह डालता था कि उसकी लुगाई उसके गले में फांस डाल गयी।.... उसकी नयी बहू भी सतकी के साथ निर्मम व्यवहार करती थी और बात-बात पर वह उसकी रुई की तरह धुनाई कर देती थी।

जब मामा ने आकर उसकी मांग की तो तुरन्त सतकी के बाप ने बिना

किसी तुए हुज्जत के सतकी को उसके पीछे रवाना कर दिया, चलो, गले की फांस निकली।

सतकी मामा के घर आ गयी। मामा के तीन बच्चे थे। तीनों लड़कियां। सतकी जल्दी ही नये घर में एडजेस्ट हो गयी। मामी का स्वभाव व रंग-रूप उसे पसन्द आया। मामा भी उसको लाड़-प्यार करता था। मामी को बात-बात पर गालियां देता और पीट देता था। उस पर जो मन में आये आरोप लगा देता था। सतकी भी मुंह में मूंग घाले रहती थी।

उस दिन जब मामी स्नानघर में स्नान कर रही थी तो मामा ने सतकी को अपने पास बुलाकर कहा 'सतकी। मैं तुझे अपनी छोरी सुखी रखूंगा। पर तुझे मेरी एक बात माननी होगी।'

'क्या ?'

मामा उसके जैसे ही और नजदीक आया कि उसके मुंह से बदबू का भभका निकला। सतकी ने भोलेपन से कहा, 'मामा। तुम्हारे मुंह से बास आ रही है।'

मामा सहसा आदमी से राक्षस बन गया। उसके चेहरे पर पैशाचिक भाव आये और आंखों में हिंसता।

सतकी कांप उठी। उसकी आकृति सफेद हो गयी। उसने मामा से कहा, मामा ! 'तुम्हारे मुंह से नहीं, मेरे नाक में ही बास बस गयी है।'

मामा ने उसको घूरते हुए कहा, 'करमजली। फिर कभी मामी की तरह ऐसा कहा तो राड के भीटे खोंस डालूंगा। यदि सुख-सन्तोष से रहना है तो अपनी जीभ पर काबू रखना। छोरा खाने का मिल गया तो निठल्ली को बातें आने लग गयीं।'

'नहीं मामा....मुझे माफ करदे।' वह मामा के क्रोधी स्वभाव से परिचित थी।

'फिर सुन... देख, तेरी यह मामी मेरे दुकान जाने पर, पीछे से क्या करती है, इसका ध्यान रखना। एक एक बात पर निगाह रखना... मैं तुझे नये गाभे बनवा कर दूंगा, ...रसमलाई खिलाऊंगा। हां, मामी को कुछ भी मत बताना।'

'ठीक है...ठीक है।' उसने कांपते हुए कहा।

सरजन की पत्नी रूपली नहा कर बाहर निकली। उसने केवल पेटीकोट पहन रखा था। पेटीकोट पर अंगोछा डाल रखा था। उसका सद्यस्नात सौन्दर्य यौनाकर्षण से भरपूर था। उसे देखते ही वह फूस की आग की तरह भड़क उठा। 'ऐसे क्यूं आयी ? नागी ही आ जाती। लाज-शरम को तो मिसरी की तरह घोल कर पी गयी है।'

'घर में कौन है–फिर... आपके सामने कैसे भी आऊं क्या फर्क पड़ता है।'

एकाएक रूपली की नजर न जाने ऊपर की ओर क्यों उठ गयी? उसके साथ अरजन की भी। समीर के मकान की छत पर पड़ोसी का लड़का खड़ा था।....

उसे देखते ही अरजन का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। बदन में आग सी लग गयी। वह बाघ की तरह उस पर झपट पड़ा और जानवर की तरह उसे पीटने लगा–'छिनाल रांड... मुझे गधा समझ रखा है। नागा होकर लोगों को अंग दिखाती है. चोर मालजादी तू समझती है कि मेरे आंखें नहीं है?... मरी! मैं सात तालों में बन्द चीज देख सकता हूं।'

उसने कितने थप्पड़ घूंसे बरसाए, यह सतकी नहीं गिन सकी। वह सुन्न हो गयी। उसे लगा कि उसका खून जम गया है। उसके डील के किसी प्रेत ने हजारों आलपिना के कांटे चुभो दिये हैं। उसकी आंखें भर आयीं। भयभीत सी उठी और कहने लगी मामा""मत मारो मामी को""मामा मत मारो""मेरी मासी (सौतेली मां) तो सारा दिन घर में लहंगा पहन कर ही घूमती है। अपना घर है न?'

'तू चुप कर बालनजोगी।' अरजन बारूद फटने जैसी आवाज में बोला, 'यह रांड मुझे भैसा समझती है। मैं इसे चोखा नहीं लगता। बड़ी लम्बी जीभ हो गयी है""जोबन मावै कोनी। फाटे है। यह मुझ पति को भी विराग करती है।'

उसकी आकृति पर क्रोध के ऐसे दाने दिखायी दे रहे थे जैसे तवे के जलने पर आग के दिपते हैं।

रूपली भी लालचूट हो गयी थी—मार खाते-खाते। उसके गोरे शरीर पर उंगलियों के निशान उभर आये थे।

अरजन उसे छोड़कर हांफने लगा। उसके चेहरे पर अब भी क्रूरतम भाव थे। लम्बा सांस लेकर वह खाजाने की निगाह से रूपली को देखने लगा।

रूपली अभ्यस्त की तरह बैठ गयी। भरी हुई आंखों के आंसुओं को अपनी हथेलियों से पोंछती हुई वह रोने के स्वर में बोली, 'धाप गये मारते-मारते। नहीं धापे तो और कूट (पीट) लीजिए" गला ही मसोस दीजिए ताकि सदा की राड़ मिट जाय""।'

अरजन आहत सांप की तरह फुफकार कर इधर-उधर चक्कर मारने लगा। सतकी तो बस बसकें भर रही थी।

अरजन ने आदेशात्मक स्वर में कहा, 'तू तेरी आदतों से बाज आ जा वर्ना एक दिन मालजादी के चेहरे पर तेजाब डाल दूंगा""फिर लोगों की तेरी ओर देखने की हिम्मत भी नहीं होगी।

वह बिना खाये-पीये दूकान चला गया। घर में सन्नाटा था। छोटी बच्ची अब भी सोयी हुई थी और बड़ी बच्चियां स्कूल चली गयी थीं।

सतकी की निगाह दीवार पर लगी बाबा रामदेव की तस्वीर पर चली गयी। उसने उसकी ओर प्रार्थना भरी दृष्टि से देखा।

रूपली विद्रोह स्वर में बोली, 'उसकी ओर क्या देख रही है। मेरी कोई मदद नहीं करता… मैं भाग फूटी हूँ… नहीं तो क्या ऐसे राक्षस के पल्ले बन्धती। सतकी! नौ साल में ब्याही थी और तेरह साल की धणी कन्ने आयी। इसमें मेरा क्या कसूर कि मैं रूपाली गणगोर हूं।… जब भी कोई देखता मेरे रंग-रूप की तारीफ करने लगता है।… कोई व्यंग में कहता-कैसी बीनणी बिगाड़ी है—भैंसे के संग गाय बांध दी… मैं जानती हूं मेरा राम जानता है… कि मैंने अपने मन में कभी खोट भी लायी हो तो? दूजे मरद को मन में भी बसाया हो तो? पूरे तन-मन से इनके साथ जीवन जी रही हूं।… पर ऐ… तो यही सोचते हैं कि मैं छिनाल हूं… मैं बस भाग जाऊंगी।… मैं थोथी लुगाई नहीं हूं।… बाबे की सोगन खाकर कहती हूं कि पिछले एक जुग से इसरी हाड़ तुड़वा रही हूं। मेरे जितने रूं हैं-उतने थप्पड़-घूंसे इन्होंने मुझे मारे हैं। अब संवण सगति ने जवाब दे दिया है। अत्याचार सहते-सहते तो पत्थर भी रो देता है। मैं तो लुगाई जात हूं। रीस तो इतनी आती है कि डील को बासती लगा दूं या फिर कूवा-खाड करलूं।…

सतकी ने मामी को पानी का लोटा लाकर दिया। बोली 'थोड़ो पानी पीले, जी-सोरो हो जायेगा।'

'अब तो श्मसान आया ही जी सोरा होगा।'

'पर पानी पीलो।'

उसने अनिच्छा से पानी पिया। सतकी का हाथ अनायास उसकी पीठ पर चला गया। नीले निशान उभर आये थे। सिर के बाएं हिस्से पर एक गूमड़ उभर आया था। सतकी ने उसे स्पर्श किया वह कराह उठी।

'गूमड़े मे पीड़ हो रही है मामी।'

उसने जवाब नहीं दिया। वह सुबक पड़ी। उसने सतकी को अपने मे भींच लिया।

सब्जी में नमक जरा तेज हो गया तो उसकी पिटाई। कपड़ों की इस्त्री ठीक से नहीं, पिटाई। माचे को सही जगह पर नहीं रखा गया है, पिटाई… यह सिलसिला… अपनी हीनता की ग्रन्थियों को छुपाने के लिए अत्याचार का एक न खत्म होने वाला सिलसिला।

सतकी को लगने लगा कि मामी की पिटाई देखने से तो अच्छा है कि वह अपने घर जाकर खुद ही मार खाती रहे। यह तो अधिक पीड़ादायक है। उसके—

भीतर अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। संघर्ष का कांटेदार सिलसिला। सतकी ने एक दिन निर्णायक स्वर में कहा, 'मैं अपने घर जाऊंगी। मुझसे यह अन्याय नहीं देखा जा सकता मामी! मामा तो सांचेली राक्षस है।'

'तू मत जा मैं भी तिरिया हूं.....जब कोई तिरिया अपने पर आ जाती है तब इन मिनखों को धूल चटवा देती है। समझी।'

उस रात रूपली ने खाना नहीं बनाया। बीमारी का बहाना कर लिया। पति चीखा-चिल्लाया, धमकियां दीं, एक दो झापड़ भी मारे पर उसने खाना नहीं बनाया। हार कर अरजन बाजार से खाना लेने चला गया। जब वह घर में आया तो सतकी ने बताया कि मामी पड़ोसी के घर पर है। उसे लगा कि उसे जलती आग में झोंक दिया है। वह ढोल की तरह बज उठा। अंट-संट और अश्लील गालियों से उसने घर भर दिया। कई बार बुलाने के बाद भी जब रूपली नहीं आई तब वह लड़ाकू मुद्रा में पड़ोसी के घर गया। वहां उसने उसे रसगुल्ला खाते देखा। उससे वह तिलमिला उठा और गालियां निकालता हुआ भीतर गया। वह उसके बालों में हाथ डालना ही चाहता था कि पड़ोसी के लड़के ने उसे रोक दिया। वह म्हारी लुगाई म्हारी लुगाई.... बड़बड़ाने लगा।

'थारी लुगाई थारे घर में है। मेरे घर में हंगामा करने की जरूरत नहीं। साले को किवाड़ी से काट डालूंगा। बहुत दिनों से कसाईबाड़ा खोल रखा है... भली सेती लुगाई को जानवर की तरह मारता है।.... बापड़ी गाय को सताता है।.....मैं इसे अभी थाने ले जाऊंगा। सारे गवाड़ की गवाह दिखलाऊंगा....यह बहुत सुन्दर है, इसमें इसका क्या दोष है। अब यह यहां रहेगी हमारी बहिन बेटी की तरह,.... पापड़ बंट कर, ऊन कातकर अपना पेट भर लेगी। तू अपने टाबर टींगरों को सम्भाल।' पड़ोसी बूढ़े रामरख ने गुस्से में कहा।

उसने देखा मामला गड़बड़ा गया है। फिर भी उसने अनेक धमकियां गवाड़ वालों को दीं। वह घर आ गया। पागल की तरह चीखता-चिल्लाता रहा। बर्तन भांड़े तोड़ता रहा। फिर थक कर निढाल हो गया। खाट पर पड़ कर वह गुस्से में तड़पता रहा।

जब उसकी आंख खुली तो गहरा सन्नाटा था। बच्चे सो गये थे। छोटी बच्ची सतकी के पास सोई पड़ी थी। दूध की बोतल पास में रखी हुई थी। जिससे लग रहा था कि सतकी ने ही इसे दूध पिलाया है, उसे अब भी विश्वास नहीं हो रहा था कि उसकी बहू भयहीन कैसे हो गई? जरूर उसमें कोई प्रेतिनी घुस गयी, उसको देखकर वह थर थर कांपने लगती थी। वह पड़ोसी के घर चली गयी। इतनी निर्भीक-निडर और निशंक। जरूर इस पड़ोसी से भीतर ही भीतर पेंच लड़ा रही थी। कुलटा कहीं की।

उसने तारों भरे आकाश को देखा। तारे उसे अपनी काली देह में जख्म से लगे। फिर वह सो नहीं सका। बस वह बार-बार इस अमूलचूल परिवर्तन के बारे में सोच रहा था।

सुबह हो गयी। वह उठ कर बाहर निकला। उसने सोचा कि एक बार बस उसकी पत्नी घर में आ जाय, फिर तो वह सब ठीक कर लेगा। फिर उसे गवाड़वालों ने बताया कि वह थाने चली गयी है।

वह कांप गया।

उसने जल्दी से कपड़े पहने और थाने की ओर चला। पर रुक गया। उसे आश्चर्य हुआ कि घर के सामने वाला कचरा साफ हो गया और अब सिर्फ वहां उसके दाग रह गये हैं।""""वह टूटता जा रहा था। अन्त में उसने सोचा कि वह गवाड़ वालों को बिचोलिया बना कर कोई समझौता कर लेगा।

उसी समय एक कुतिया एक गोधे (सांड) के पीछे भोंकती हुई भाग रही थी। गोधा भाग रहा था।

'इतने मुसटंडे गोधे को कुतिया भगा रही है।' उसने आश्चर्य से सोचा वह """"इपली """ गोधा"" कुतिया।

वह पसीना-पसीना हो गया। फिर ठोकर खाकर गिर पड़ा और धूल धूसरित हो गया।

अब वह काफी दीन था। टूटा हुआ था। इतना दुर्बल महसूस कर रहा था जैसे वह अब अपनी पत्नी को डण्डे के जोर पर नहीं दबा सकता। उसमें जरूर कोई प्रेत घुस गया है। उसे इस सिलसिले को खत्म करना होगा।

सहसा उसे गोधा व कुतिया याद हो आये।

◘

ये भूखे क्षण

जब भी मैं दफ्तर से निकलता हूं एक ही प्रश्न उठता है कि कहां जाऊं ? इस प्रश्न के साथ ही मुझे एक अजीब सी बेचैनी सताने लगती है और मैं स्तब्ध सा दफ्तर के मेन-गेट के आगे खड़ा रहता हूं। दूसरे लोग जल्दी-जल्दी से भागते हैं। थके हारे और मुरझाये हुए उनके चेहरों पर एक उत्साह झलकता है, अपने-अपने घर जाने का उत्साह, अपने बाल बच्चों से मिलने का उत्साह पर मैं इस दिल्ली के लिए अजनबी हूं और दिल्ली मेरे लिए अजनबी। जहां मुझे कमरा मिला है उस कमरे के आस पास कोई कमरा नहीं है और न ही मेरी किसी से जान पहचान। सभी अनजाने और बेगाने।

महीने की पहली तारीख से लेकर दस-पन्द्रह तारीख तक ऊब कुछ कम रहती है। उन दिनों जेब कुछ भारी होती है और रेस्त्रां वाले भारी जेबों वालों की ऊब को बहुत अंशों में छीनने की चेष्टा भी करते हैं। लेकिन बाद में कोल्हू के बैल की तरह जिन्दगी हो जाती है। निरुद्देश्य कनॉटप्लेस देखना, उन पर लगी प्राइस-लिस्टों को पढ़ना और शाम होते-होते होटल में खाना खाकर कमरे में आकर मुर्दे की तरह पड़कर सो जाना। नींद न आये तो खिड़की की राह तारों को गिनना वर्ना चांदनी को लेकर कवियों जैसी सुन्दर कल्पनाएं करना। मानसिक ऐश्वर्य, यौनानन्द आदि प्राप्त करना।

मैंने उसकी बेहूदी बात का कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन दूसरे दिन ही जल्दी आकर मैंने कमरे के आगे की छत पर पुस्तक हाथ में लेकर चहलकदमी करनी शुरू कर दी। गली के उस पार के हरे मकान के दूसरे तल्ले के एक कमरे में मुझे एक लड़की के दर्शन हुए जो स्नान करके कपड़े सुखा रही थी। संयोग समझिए उससे मेरी आखें भी चार हो गयीं ! बस मैं उसे देखता रहा और वह मुझे। लेकिन इस भेंट की उम्र बहुत कम थी। थोड़ी देर के बाद वह लड़की फिर दिखायी दी, वह शीशा लेकर बरामदे में आयी और अपने घने काले केशों को संवारने लगी। हठात् मुझे महसूस हुआ कि एक अज्ञात आनन्द मुझमें प्रवेश कर गया है जो मेरी ऊब और उकताहट से संघर्ष करके विजयी हो रहा है। मेरे दोस्त ने ठीक ही कहा था कि कुछ करो, किसी उलझन से ही एकान्त को ...ना है।

...सरे दिन मैंने उस दोस्त को चाय पिलायी। वह अत्यन्त विस्मित था

और उसने मुस्करा कर कहा, 'लगता है कि कहीं उलझ गये हो प्यारे ? बोवर्ड पर ताज़गी है ।'

मैंने अत्यन्त गम्भीरता से कहा, 'कहां दोस्त, मुझ गरीब के ऐसे भाग्य कहां ?' पर मुझे इस बात का भय हुआ कि कहीं मेरे भीतर का खोखलापन और झूठ बगावत न कर दें, इसलिए मैंने बात का सिलसिला बढ़ाया, 'तुम्हें शादी किये हुए कितना अर्सा हो गया है ?'

'तीन साल ।'

'कितने बच्चे हैं ?'

'दो ।'

'तीन साल में दो ?' मैंने विस्मय से पूछा । मेरी आंखें विस्फारित हो गयीं, 'तुम अपनी बीबी का शारीरिक-मानसिक शोषण करते हो ? यह अन्याय है । पाप है ।'

'हो सकता है पर ! हमारे, कम से कम मेरे लिए अपनी पत्नी के सिवाय जीवन में और कौन सा मनोरंजन है । यह दफ्तर और यह घर । इसके बीच न मरनेवाली ऊब और नीरसता । फिर बच्चे होंगे ही, मनचाहे और अनमागे ।' मैंने देखा कि उसका चेहरा उदासियों से ढक गया है और उसकी आंखों में व्यथा की दीप्ति झलक उठी है ।

मैंने चाय का बड़ा घूंट लिया और प्याले को रखता हुआ बोला, 'सचमुच यह ज़िन्दगी कोई जीने की चीज नहीं है ।'

पर उस दिन मैं दफ्तर की फाइलों में खोया हुआ बार-बार यह सोच रहा था कि वह लड़की बार-बार मुझे क्यों देख रही थी ? उसने बरामदे में आकर बाल क्यों बनाये थे ? फाइलों में उसका चेहरा उभर-उभर कर आ रहा था । मेरी इच्छा होती थी कि आज कोई ऐसी दुर्घटना हो जाय जिससे दफ्तर की तुरन्त छुट्टी हो जाय ! पर घड़ी ने जब साढ़े पांच बजाये तभी ही छुट्टी हुई और मैं लपक कर बस स्टाप की ओर गया ।

क्यू में खड़ा हो गया ।

हठात् मुझे ख्याल आया कि मेरे आगे एक बहुत सुन्दर कन्या खड़ी है । मैंने उसे सहमते-डरते हुए देखा कि वह लड़की रेशमी सलवार कुर्ते में है और उसके बाल खुले-खुले कन्धों पर झूल रहे हैं । बाजू पर उसने एक खादी भडार का पर्स लटका रखा है और एक कलाई में दो चूड़ियां और दूसरी में घड़ी है ।

टिकटवाला पंक्तिबद्ध खड़े लोगों को टिकट दे रहा था । उसने जब टिकट लिया तब मैंने अपना ध्यान दूसरी ओर कर लिया था । स्वयं मैंने करोलबाग का टिकट खरीदा ।

बस आयी । हम दोनों पास-पास बैठे । सचमुच आज का दिन मेरे लिए

बहुत ही आनन्द का और जोरदार दिन है । मैं उस लड़की के स्पर्श सुख का
आनन्द लेता रहा । जैसे ही बस गुरुद्वारा रोड़ पहुंची वैसे ही वह उतर गई
और उसके साथ मैं भी । हालांकि मुझे दो स्टॉपिज आगे उतरना था । मैं उ
लड़की को अपलक देखता रहा और वह भी मुझे । मैं उसके बारे में सोचूं
इसके पहले ही वह मेरे समीप आकर बोली, माफी कीजियेगा, ईस्ट पटेलनगर
कौन सी बस जायेगी ?'

'21 नम्बर ।'

'21 नम्बर ?' उसने विस्मय से भौंहें चढ़ाकर कहा, 'मैं शायद भूल नहीं
करती हूं तो हम लोग 21 नम्बर से ही आये थे ?' वह सचमुच बहुत ही नजदीक
आ गयी थी ।

'हम लोग 21 नम्बर से ही आये थे, फिर आप यहां क्यों उतरीं ? आपको
आगे जाना चाहिए था ।' मैंने जैसे अफसोस जाहिर करने के अन्दाज में कहा ।

'बड़े अजीब हैं, ये बसवाले भी । व्यर्थ का परेशान करते हैं । देखिये न
जब मैंने पूछा तो कह दिया कि नहीं जायेगी ।' उसकी खूबसूरत आंखों में आक्रो
था ।

मैंने उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा, 'यहां शराफत नाम की कोई
चीज ही नहीं है । यहां हर आदमी दूसरे आदमी को परेशान करने में ही मजा
लेता है ।'

वह कुछ विचलित सी हुई । आवागमन को देखती रही । उसकी उंगलियां
अपने पर्स पर तेजी से चल रही थीं । शिष्टता के नाते मुझे चला जाना चाहिए
था पर मैं सम्मोहित सा खड़ा रहा ।

'इस रूट की सर्विस कितने मिनट की है ?'

'सुनते है, दस-पन्द्रह मिनटों की ।'

'नहीं जी, मैं तो यहां कभी-कभी आधा-आधा घंटे वेट करती हूं । अंधेर
नगरी चौपट राजा ।'

'आपने सोलह आने ठीक कहा । इस देश में हर आदमी राजा बना हुआ
है, प्रजा तो है ही नहीं ।'

फिर हम दोनों के बीच मौन आकर बैठ गया । सिलसिले के बढ़ने के
अभाव में मैंने उससे रुखसत ली । शायद जीवन में यह पहला अवसर था जब
एक इतनी सुन्दर कन्या ने मुझसे इतनी देर बातचीत की । उसके स्पर्श व सांसों
की गंध मेरे भीतर समा गयी थी ।

उस रात बड़ी देर तक नींद नहीं आयी । हरे मकान वाली लड़की बा
बार बरामदे में आती थी और चली जाती थी—चार नजरें करके । पता न
ारे में सोचते-सोचते मुझे कब नींद आ गयी ।

मैं उठा तब धूप काफी निकल आयी थी । छत की दीवारें

में चमक रही थी और मेरे कमरे की खिड़की की राह किरणें रूठी-रूठी सी प्रविष्ट कर रही थीं। मैंने एक अंगड़ाई ली और आलस मरोड़ा। मुझे लगा कि मैं एकदम स्वस्थ हो गया हूं। ऊब मर चुकी है। एकान्त कहीं भाग गया है। मैं दांतुन करने बैठा। बार-बार यही सोच रहा था कि कल वाली अपरिचिता आज मिल जाय तो? बदन में झुरझुरी छूट गयी। एक स्फूर्ति अंग-अंग मे आयी और मै जल्दी-जल्दी दफ्तर जाने की तैयारी करने लगा। पर उस दिन मैं फाइलों में उलझा रहा। लंच टाइम पर मैंने अपने दोस्त सोमी से पूछा, 'सोमी, क्या तुम्हें यह दफ्तर का कमरा बैरक सा नहीं लगता है? कम से कम मुझे यह दफ्तर बैरक लगता है और मै अपने को एक कैदी समझता हूं।'

उसके होंठों के बीच में अर्थ भरी मुस्कान दब आयी। वह बोला, 'जब आदमी को बाहर ज्यादा सुख मिलने लगता है तब उसे दफ्तर बैरक सा ही लगता है।'

मैंने उसकी ओर न देखकर चाय पीते-पीते पूछा, 'यदि किसी को कोई सुन्दर लड़की अचानक मिल जाय तो?'

'उसे अपने आपको एक भाग्यशाली व्यक्ति समझना चाहिए।'

'वह पहली भेंट में लड़के से खुद ब खुद बात करने लग जाय तो?'

'तो उसे एक चमत्कार मानना चाहिए।'

'यदि लड़का बात के सिलसिले को बढाने में असमर्थ रहे तो?'

'उसे एक बेवकूफ समझना चाहिए।' फिर उसने चौंक कर पूछा, 'पर तुम ये सब क्यो पूछ रहे हो?'

'यूं ही?' और मैं अत्यन्त बचकानी हंसी हंस कर बोला, 'दरअसल हर चीज का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए।'

'मैं समझता हूं, गुरु! दाई से पेट छिपा नही।' और उसने मुझे अजीब तिरछी नजर से देखा और फिर बुजुर्ग की तरह उपदेश देता हुआ बोला, 'लेकिन जरा रहना होशियार, यह दिल्ली है!' महानगर! जहां रिश्ते कम व्यापार ज्यादा होते हैं। जहां सारी भावनाएं पैसो के चढ़ोवे मे डूब जाती है। समझे?'

मैंने लापरवाही से कहा, 'अरे यार मेरा इन बातो से क्या वास्ता?'

लेकिन मै उस दिन जैसे ही बस स्टॉप पर आकर खड़ा हुआ, वैसे ही मुझे वही सुन्दर कन्या दिखायी पड़ी। उसने गुलाबी रंग की रेशमी साड़ी पहन रखी थी और शिव के त्रिशूल जैसी बिन्दिया उसके चेहरे का आकर्षण बढ़ा रही थी। मैंने उसे देखा, उसके होंठो पर हलकी मुस्कान नाच गयी। उसकी आंखों ने जैसे मुझसे कहा—नमस्कार। मेरे भी होंठ हलकी मुस्कान मे डूब गये। पर हम दोनों के बीच दस आदमियो का फासला था।

खामोशी बस आयी।

हम सभी लोग एक-एक करके भीतर घुसे। मुझे उसके पीछे वाली सीट पर जगह मिली। उसके पास कोई अन्य व्यक्ति बैठा था।

'टिकट।'

उसने तुरंत दो टिकट ले लिये और मेरी ओर इशारा कर दिया। मैं अचम्भित रह गया। मेरे होंठ एकदम आपस में चिपक गये। केवल उसकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखता रहा। चारों ओर बैठे हुए लोगों की क्या प्रतिक्रिया हो रही है, मुझे नहीं मालूम। मैं अपने आपसे संघर्ष कर रहा था यह लड़की कौन है? इसने मेरा टिकट क्यों खरीदा? क्या…क्या…क्या… मैं मन ही मन अतिरेक आनन्द में डूब सा गया।

बस कब गुरुद्वारा रोड रुकी, मैं नहीं जानता। जब वह उठी, तब मैं भी मंत्रमुग्ध सा उठ गया। बाहर निकल कर मैंने उससे आत्मीयता से पूछा, 'आप यहां क्यों उतरीं?'

'आपके लिए!'

'मेरे लिए?' मैंने अपनी ओर इशारा करके कहा।

'जी, आपके लिए। आप एक शरीफ आदमी लगते हैं। सूरत और सीरत दोनों से।'

मैंने संकोच से सिर हिला दिया।

'देखिए, मैं आधुनिक व नौकरी पेशा हूं। मेरी स्पष्टता को आप अन्यथा नहीं समझेंगे। यदि आप को कोई एतराज न हो तो आप मेरे साथ चाय पी सकते हैं।'

मुझे लगा कि मैं एक नयी दुनिया में चला गया हूं जहां मेरे जीवन के उन ऊब और एकान्त क्षणों का कोई स्थान नहीं है।

'आइए।' मैं उसके पीछे पालतू कुत्ते की तरह चल पड़ा। अब हम दोनों एक रेस्त्रां में थे। आमने-सामने बैठे थे और जब बाहर निकले तब हम वि[illegible] परिचित से होकर निकले। प्रेम के अथाह सागर में डूबे हुए निकले। फि[illegible] मुलाकातें बढ़ीं, प्यार की कई शक्लें और सूरतें देखीं। चूंकि जोगिन्दर स्त्री [illegible] और मैं पुरुष इसलिए मेरा काफी रुपया खर्च हो जाता था, अतः मैंने अपनी प्रे[illegible] और विधवा मां को झूठ ही लिखा कि मैं तनखा लेकर आ रहा था किसी [illegible] कतरे ने मेरी जेब काट ली।

एक दिन मैंने जोगिन्दर से पूछा, 'तुम करती क्या हो?'

मेरे प्रश्न पर वह हंस पड़ी। बोली, 'वैसे बम्बई मे मेरा अपना घर [illegible] मैं एक धनी बाप की बेटी हूं पर चूंकि ठाले बैठे-बैठे बोर हो जाती हूं, इस[illegible] 'मिलर एण्ड सोलर' कम्पनी की विशेष प्रतिनिधि हूं। उनकी बनाई हुई [illegible] को दिखाकर आर्डर बुक करती हूं।'

मुझे जोगिन्दर के लिए कभी-कभी दफ्तर से जल्दी छुट्टी लेनी पड़ती थी। क्योंकि उस दिन मुझे उसके साथ प्राइंर बुक करने जाना पड़ता था। मैं उसकी अटैची पकड़े हुए पीछे-पीछे पचास कदम की दूरी पर चलता था हालांकि एक भोर काफी एडवांस थी पर दूसरी ओर जब कभी भी आर्डर बुक करने जाती और अटैची साथ होती तब वह मुझसे दूर दूर रहती थी।

एक बार मैंने चाय पीते पीते कहा, 'लोग मुझे तुम्हारी जगह एजेंट समझते हैं। मिलर एण्ड सोनर की अटैची जो मेरे हाथ में होती है। नाम भी कितने बड़े अक्षरों में लिखा हुआ है।'

यह बात उसके कमरे के भीतर हो रही थी। उसने मुझे प्यार से देखा और मेरे हाथ का चुम्बन लेते हुए कहा, 'डियर! जरा सोचो मैं किस खानदान से सम्बन्धित हूं, फिर तुम मेरे लिए इतना भी नहीं कर सकते?'

मैंने उसे अपनी बाहों में भर लिया। तब मुझे ऐसा लगा कि मैं इस धरती का सबसे भाग्यशाली इन्सान हूं।

'चलो, पार्क में घूमने चलें।' उसने मेरी बाहों से मुक्त होकर कहा। मैंने उसका प्रस्ताव तुरन्त स्वीकार कर लिया। हम दोनों पार्क की दूब पर लेटे हुए थे।

मैंने फिल्मी हीरो की तरह कहा 'जोगिन्दर।'

'हूं।'

'मैं तुम्हारे डैडी से मिलना चाहता हूं।'

'मिल लेना।'

'पर तुम्हें साथ चलना होगा। इतने बड़े अमीर के सामने जाने की मेरी हिम्मत ही नहीं होती।'

'तुम पहले 'हीनता' से छुटकारा पा लो फिर मेरे डैडी से मिलो वर्ना तुम उनकी बड़ी-बड़ी मूछों को देखकर ही गूंगे बन जाओगे। क्या पर्सनलिटी है? एकदम शेर की तरह लगते हैं।

और फिर वह अपने घर परिवार और अपने पिताजी की शान-शौकत, स्वभाव और व्यक्तित्व का ऐसा वर्णन करती थी कि मुझे लगता कि मैं उन लोगों के विराट समृद्धि के बीच कोई बौना हूं और मुझे विराट रूप के समक्ष खड़ा करने के लिए भेजा जा रहा है।……मैं अपना इरादा बदल देता था।

तीन महीने गुजरे। ऐसे सुखद उत्तेजित, मधुरतम क्षण जिनका कोई मूल्य नहीं हो सकता। मुझे हर घड़ी ऐसा महसूस होता था कि मेरे आसपास ऊब व ऊकताहट नहीं है। सर्वत्र ताजगी ही ताजगी है!

हालांकि दिन पर दिन महंगाई बढ़ रही थी और लोग दैनिक आवश्यकताओं के लिए परेशान हो रहे थे पर जोगिन्दर का पर्स सदा नोटों से भरा

रहता था और वह मुझे बताता रहता था कि आजकल मेरे पास रुपया बहुत हो गया है। मां को चिट्ठी लिखने का मूड नहीं होता था। सोमी के साथ साथ निहायत ही बेजायका लगती थी और मैं उससे इस तरह कतराता था जैसे बूढ़ा दिल्ली से, क्योंकि वह हर घड़ी अपनी दरिद्रता का रोना रोता रहता था। एक बार तो मैंने उसे दानवीर की तरह पचास का नोट भी दिया। कभी-कभी मैं उसे उपदेश भी दे देता था कि पार्ट टाइम का कहीं और जॉब कर लो।

"आज तुमने लेट कर दिया।" लाबोहिम की गुफा में बैठे हुए मैंने जोगिन्दर से पूछा।

उसने अपना पसीना पोंछते हुए कहा, "घर से तार आ गया है, इसलिए एक सप्ताह के लिए बम्बई जा रही हूं।"

"मैं भी साथ चलूं।" बच्चे की तरह आग्रह भरे स्वर में मैंने कहा। वह मुस्करा पड़ी।

"सचमुच तुम बच्चे हो....ऐसी स्थिति में शादी की बात नहीं हो सकती। मैं जाकर तुरन्त लौट आऊंगी। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती।

"डियर ! प्लीज, मुझ पर भरोसा करो और मुसकराओ।"

मैं उसे एरोड्रम छोड़ने गया।

घर पहुंचते-पहुंचते मैं बहुत उदास था—इतना उदास कि जैसे सूनी घाटियाँ मेरे चारों ओर फैल गयी हैं।

सोमी मेरी इस उदासी और परेशानी को आखिर ताड़ ही गया।

"क्या बात है ? आज तुम इतने खोये हुए क्यों लगते हो ?" लगता है किसी हसीना ने तुम्हें चप्पलों से पीटा है।

मैंने उसे डांटते हुए कहा—बकवास बंद ! मेरे सिर में दर्द है।

मैं सदा उसकी प्रतीक्षा करता था उसके पत्र की या !

"ऐसे ही पूरे दस दिन गुजर गये, एक भी खत नहीं आया।" न जाने क्यों मेरे मुंह से यह सब हठात निकल गया तब मैं और सोमी रेस्त्रां में चाय पी रहे थे।

सोमी ने मेरे मुंह की बात पकड़ते हुए कहा, 'किसने खत नहीं लिखा, बता यार मुझसे क्या छिपाना।'

मैंने सोमी को अपना रोमांस-प्रकरण सुना दिया।

वह अत्यन्त लापरवाही से बोला, 'छि: तुम भी यार किसके चक्कर में पड़ गये ? ये वर्किंग गर्ल्स हैं। इनकी अपनी अलग विवशताएं, स्वार्थ और स्थितियां और ये अपने को उनके अनुसार ढालती रहती हैं। तुम्हें उनकी बातों को गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए।'

मैंने उसकी बात को काटते हुए कहा, "नहीं यार, जोगिन्दर ऐसी नहीं है। उसके व्यवहार में अविश्वास और छल की बू ही नहीं आती थी। देखो न इस चित्र को, वह एक सहृदय और अच्छी लड़की नहीं लगती? उसकी आंखों में चालाकी दिखायी देती है?"

"फिर इन्तजार करो।"

और मैं सुबह शाम उसको और उसके पत्र की प्रतीक्षा करता रहता था। उस प्रतीक्षा के अतिरिक्त मेरे जीवन में कुछ था ही नहीं। रात को जो सपने बुन कर रखता था, वे भोर के तारे के साथ खत्म हो जाते थे।

एक दिन सुबह ही सुबह सोमी आया। घबराया और परेशान सा। उसके हाथ में एक दैनिक पत्र था। वह बैठता हुआ बोला—"यार दस रुपये चाहिए, छोटा बच्चा बहुत बीमार है।"

मैंने उसे दस का नोट दे दिया। वह चला गया पर अपना अखबार भूल गया। मैं उसे पढ़ने लगा। दैनिक पत्र के तीसरे पृष्ठ पर जोगिन्दर का चित्र था। नीचे समाचार था ऊपर जिस लड़की का चित्र है, वह एक बहुत बड़े गिरोह से सम्बन्धित है। दिल्ली, जालंधर और बम्बई की पुलिस उसे काफी अर्से से ढूंढ रही थी। यह लड़की कई नामों से और अनोखे तरीकों से तस्कर के माल की सप्लाई करती थी। आशा की जाती है कि एक पूरे गिरोह के पकड़े जाने की सम्भावना है।

इसके अतिरिक्त संवाददाता ने बताया था यह लड़की अमृतसर के एक सम्पन्न परिवार से सम्बन्धित है और यह हीरोइन बनने के चक्कर में इस गिरोह के लोगों में फंस गयी। हीरोइन तो नहीं बन सकी पर निरन्तर बिगड़ती परिस्थितियों ने उसे इस हालात में डाल दिया। उसने बताया कि वह जिस लड़के के साथ भागी थी, उसने उसे भ्रष्ट करके छोड़ दिया और पेट की आग को बुझाने के लिए वह काला धन्धा करने वालों के होने के लिए विवश कर दी गयी। लड़की इतनी ऊब, दुखी और परेशान हो चुकी है कि अपना अपराध स्वीकार कर लिया है और वह कठोर से कठोर दण्ड पाने के लिए तैयार है।

तीसरे दिन मेरे पास जोगिन्दर की चिट्ठी आयी "मुझे क्षमा करना। हमारी परिस्थितियां हम सबसे बड़ी हैं। जब तक सांस है तब तक तुम्हें चांद को नहीं पाने दूंगी। हालांकि तुमने मेरी बड़ी मदद की थी छलकाने में। मेरे [illegible] होना था और तुम—— मैं सदा चाहती हूं। तुम मुझे पह-चानने की कोशिश न करना वरना पछताओगे। [illegible]। तुम मुझे एक [illegible] के रूप में मिले जिसने मुझ पर जरा भी सन्देह नहीं किया। जो मुझे प्यार की दौलत दुख समझ कर पूछता रहे। पर क्या कर मैं, समय के [illegible] हैं [illegible]

मुर्दा पल जी उठे

उसे महसूस हुआ कि उसके भीतर कोई दकियानूसी आदमी सांप की तरह कुण्डली मारे बैठा है। जब कभी भी वह नये मूल्यों और आस्थाओं के साथ जीने को तैयार होता है, वह सांप फुत्कारने लगता है और उसके कलाकार की महानता, विशालता और उदारता को निगल जाता है। उसे बहुत छोटा व्यक्ति बना देता है। एकदम स्वार्थी। वह भीतर से बहुत ही रूढ़िग्रस्त और संस्कारों से आक्रांत है। तब उसे अपने-आप पर गुस्सा आता है और तरस भी।

उसे याद आया कि कल जरा-सी बात को लेकर उसने जो हंगामा खड़ा किया था उसने उसे बहुत ही ओछा आदमी बना दिया था। सुबीरा ने स्पष्ट कह दिया था कि वह इन गलत स्थितियों में उससे किसी तरह का कोई सम्बन्ध नहीं रख सकती। यदि हमारे सम्बन्धों के बीच कोई सही अंडरस्टेंडिंग नहीं है, तो व्यर्थ रूप से जुड़े रहने से क्या लाभ है? सब कुछ छोड़ देना चाहिए। इन पीड़ादायक सम्बन्धों से तो अलगाव अच्छा रहेगा।

इस पर वह स्तब्ध रह गया था। वह फटी-फटी आंखों से सुबीरा को देखने लगा। उसे लगा था कि सुबीरा पर उसका कोई हक नहीं है।

बात-बात में निकलती और कल भी ऐसा ही हुआ था।

सुबीरा ने शमशेर की प्रशंसा की—वह एक निहायत ही शरीफ लड़का है। स्त्री की भांति लज्जालु और मितभाषी। ज्यादा बकवास नहीं करता।

दोपहर! लिजलिजी धूप! रेस्त्रां के एक केबिन में सुबीरा और आमोद बैठे हुए काफी पी रहे थे। भूरे रंग की केबिन। ऐसा ही टेबल क्लाथ, ऐसा ही परदा।

आमोद ने जरा चिढ़ते हुए कहा, 'तुम उस घनचक्कर का मेरे सामने नाम न लो। मैं उसे किसी भी सूरत में सहन नहीं कर सकता।'

'लेकिन क्यों?'

वह चिढ़कर बोला था, 'क्योंकि मुझमें उसके प्रति एक अरुचि है। मुझसे पहले तुम्हारा उससे घनिष्ट सम्बन्ध था। तुम उसके यहां अक्सर आया-जाया करती थीं। तुम....।'

'छि:!' सुबीरा ने उसे डांटने के स्वर में कहा, 'अपने को इतना छोटा मत बनाओ। पता नहीं, तुम मुझसे सम्बन्धित व्यक्तियों से क्यों चिढ़ते हो? तुम बहुत ही जलने वाले हो?'

"कुछ भी हो।" वह सहसा चुप हो गया। उसे भ्रम हुआ कि कोई आ रहा है, पर वह हवा का झोंका था जिसने पर्दे को हिला दिया था।

सुबीरा ने गरमाये क्षणिक मौन को तोड़ा, 'तुम अपने आपको लेखक कहते हो? अरे अपने हृदय को बड़ा बनाओ। व्यर्थ ही मत जलो। वर्ना मैं तुम्हें लेखक के बजाय पतियारा समझ लूंगी। इतनी संकीर्णता!"

उसने अपने हठ को फिर दोहराया, 'सुबीरा! तुमसे मेरा मानसिक-शारीरिक—दोनों सम्बन्ध हैं, हम एक-दूसरे को बहुत-बहुत प्यार करते हैं। फिर तुम मेरी बात क्यों नहीं मानती? क्या तुम मेरे कहने से शमशेर से सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर सकतीं?" उसने एक लम्बा सांस लिया, 'प्रेमिका अपने प्रेमी के लिए अपना जीवन तक छोड़ सकती है।"

वह मुस्करायी। उसकी मुस्कान कुछ अर्थों से रंगी थी। फिर उसने एक तीखी दृष्टि आमोद पर डाली। कॉफी पीने लगी। कोमल-कोमल उदासी उन दोनों के बीच आकर कछुए-सी चुप-चाप बैठ गई।

आमोद की आकृति तनावों से खिंच गई। वह काफी गंभीर लग रहा था।

कॉफी के प्याले को देखकर उसने कोमल उदासी को मिटाया। 'आमोद! तुम्हें बीसवीं सदी के बजाय सोलहवीं सदी में पैदा होना चाहिए था। अब इस तरह वहमों में नहीं जिया जा सकता। सम्बन्धों की स्थितियां बदल गई हैं। भला बिना कारण मैं किसी से बोलना बन्द क्यों करूं?'

'सिर्फ मेरे प्यार के लिए, सिर्फ मैं चाहता हूं।'

'तुम ऐसी बेहूदी बातें क्यों करते हो?'

'पता नहीं, शमशेर को तुम्हारे साथ देखकर मैं घृणा से क्यों घिर जाता हूं? वह मुझे खलनायक सा लगता है। मेरी इच्छा होती है कि मैं उसे पीड़ा दूं, अपमानित करूं!'

उसने कॉफी का घूंट लिया। आमोद की दृष्टि में स्थिरता थी।

सुबीरा उसकी इस ऊलजलूल बात से तड़प उठी। उसमें भी एक तरह का अकड़पन आ गया। वह जिस परिवेश और वातावरण में पली थी उसमें व्यर्थ के दबावों एवं सनकों को सहन करने का स्थान नहीं था। वह अत्यन्त ही स्पष्ट शब्दों में बोली—'अकारण मैं किसी से बोलना बन्द नहीं कर सकती। शमशेर से मेरी जान-पहचान तुमसे पहले से ही है। पता नहीं तुम भी बिलकुल साधारण आदमियों की तरह क्यों सोचते हो? आमोद, मुझे समझो। व्यर्थ के तनावों से बचो।'

आमोद ने सनकी की भांति अपनी बात फिर दोहराई, 'तुम्हें उससे सम्बन्ध तोडना ही पड़ेगा।'

इस पर सुवीरा का भी धैर्य जाता रहा। वह तुनक कर बोली, 'अपनी बच्चों जैसी बक-बक और हठ को छोड़ो।'''आज शमशेर के लिए हिटलर की तरह हुक्म चला रहे हो और विवाह के बाद कहोगे—अपने माँ-बाप से मत बोलो, खिड़की के बाहर मत झांको, इस तरह मत देखो।''' यह भी सम्भव है कि जब तुम बाहर जाओगे तो ताला लगाकर जाओगे। सुनो आमोद, ये सब मसहय हैं। मैं प्रीति पूर्व करने वाली लड़की हूँ।' वह सहसा बहुत ही गम्भीर हो गई। पश्चाताप भरे स्वर में बोली, 'मैं महसूस करती हूँ कि मैंने जिस त्वरा से तुमसे संबंध बढ़ाये, प्यार किया, स्पर्श दिये और अपना शरीर दिया उससे तुम्हें ''' नहीं आमोद, यह धारणा गलत है। कोई भी समझदार औरत बिना विश्वास के ऐसा नहीं कर सकती। यह सही है कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। अपना पति बनाना चाहती हूँ, पर अब पछता रही हूँ। मैं नहीं जानती थी कि एक लेखक भी इतना संदिग्ध दिमाग रख सकता है?'

'परन्तु तुम इतना हठ क्यों करती हो? तुमने एक बार कहा था कि मैं तुम्हारे लिए अपने प्राण दे सकती हूँ। फिर शमशेर को छोड़ क्यों''' '

वह बीच में ही धीमे से हंसी। उसका चेहरा गंभीरता में डूब गया। उसकी पलकों के नीचे हल्के-हल्के दायरे फैल गये। अपने होंठों पर जीभ को फेरती हुई वह बोली, 'मरना सरल है पर व्यर्थ के प्रतिबन्धों के साथ जीना कठिन। जीना मूल आदर्शों के साथ होना है।'

आमोद चुप रहा। कॉफी उसके लिए कड़वी हो गई थी। दोनों के बीच फिर मौन छा गया। आमोद ने निर्णयात्मक स्वर में कहा, 'मैं केवल यह चाहता हूँ। मैं शमशेर के साथ तुम्हारे किसी भी सम्बन्ध को सहन नहीं कर सकता।'

'तुम फिर से सोचना। बच्चों जैसी आदतें जीवन में जहर घोल देती हैं। इनसे मुक्ति नहीं मिलता।'

सुवीरा चुप हो गई। वह कैबिन उन दोनों को गैस चैम्बर जैसा लगा जिसमें उन दोनों का दम घुटने लगा। फिर वे सहसा अजनबी बन गये। फिर जब वे दोनों सड़क पर आये तब ऐसे लग रहे थे कि वे दोनों अपरिचित हैं।

दूसरे दिन आमोद सुबह-सुबह ही सुवीरा के घर गया। उसकी ममी ने बताया कि वह रात को बड़ी देर से आई थी इसलिए वह अब भी सो रही है।'''बस वह उत्तेजित हो गया। अपने मन में विरुद्ध बगावत करके तो वह यहाँ आया था और आते ही यह शुभ संवाद? वह भीतर ही भीतर जल गया उसने तुरन्त सोचा कि यह अवश्य ही उस शमशेर के बच्चे के साथ नाइट शो देखने गई होगी? उसे लगा कि उसका मुंह विषैला हो गया है!

वह त्वरा से सुवीरा के कमरे में गया। इस घर में उसे कोई रोक-टोक नहीं थी। सुवीरा पलग पर पेट के बल सोई हुई थी। हल्का-हल्का उजाला।

खिड़की के शीशे से संघर्ष करती हुई धूप। अलसाया-सा बिस्तर। यदि आमोद का मूड अच्छा होता तो वह सुबीरा का चुम्बन लेकर जगाता। और सुबीरा नाना करती और वह सुबह को उत्तेजना के क्षणों में बांध देता। पर आज वह गुस्से में था।

उसने सुबीरा को पुकारा। उसे स्पर्श तक नहीं किया? ऐसा करना उसे पराजयसूचक लगा। उसने अपने-आपसे कहा—यदि मैं सुबीरा से सदा-सदा के लिए सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए आया हूं तो मुझे किसी तरह की कमज़ोरी का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। सुबीरा ने आलस मरोड़ा। आलस मरोड़ते उसने अपनी छाती को एक झटका दिया और कल की समस्त कटु-स्मृतियों को विस्मृत करके वह बोली, 'गुड मारनिंग डियर, क्या आज तुम हमारे पास बैठोगे नहीं?'

वह रूखे स्वर में बोला, 'मैं जल्दी में हूं।'

'अरे बैठो ना?' उसने आमोद का हाथ पकड़ना चाहा पर वह दूर हट गया और उसने अपनी जेब में से एक चिट्ठी निकाली। उसे उसकी ओर फेंकते हुए कहा, 'मुझे आज शाम तक इसका जवाब चाहिए।' सुबीरा उसे कुछ कहे, 'इसके पहले ही वह कमरे से बाहर निकल कर सीढ़ियां उतर गया।

सुबीरा कुछ देर तक अप्रतिभ सी बैठी रही। उसे एक मुर्दापन ने घेर लिया। यही कारण था कि उसने आमोद को पुकारा नहीं।

कई क्षण कछुए की तरह सरक गये। आखिर सुबीरा ने पत्र खोला। पढ़ने लगी—

प्रिय सुबीरा,

कल की बातों से मैं बहुत परेशान हूं। मुझे रात भर नींद नहीं आयी। मैं लेखक हूं, पर लेखक के साथ एक आदमी भी। मैं वर्षों से एक ऐसी लड़की की तलाश में था जो केवल मुझ पर केन्द्रित रहे। तुम प्रेम में सीरियस नहीं हो। अनेक लड़कों से घिरे रहना तुम्हारी हॉबी है पर यह मुझे सहन नहीं होता। इसके लिए तुम मुझ पर कोई भी आरोप लगा सकती हो? इसे मेरा हठ कहो या मूर्खता, पर तुम्हें मुझे और शमशेर में से एक को चुनना पड़ेगा। मैं शमशेर को जरा भी बर्दाश्त नहीं कर सकता। पता नहीं, उसे देख कर मैं घृणा से क्यों भर जाता हूं। मैं चाहूंगा कि तुम या तो उसे बिलकुल छोड़ दो या मुझे? मैं टेंशन नहीं सह सकता। मैं सच कह सकता हूं कि तुम मेरे जीवन की वह युवती हो, जिसे मैंने सच्चे हृदय से प्रेम किया है। तुम्हें मेरे लिए यह त्याग करना ही पड़ेगा। डार्लिंग, प्यार कहीं न कहीं किसी से त्याग चाहता ही है। अपने निर्णय से अवगत कराना। यदि तुम्हें मेरी बात स्वीकार न हो तो भी मेरे और तुम्हारे

साथ औपचारिक सम्बन्ध अवश्य बने रहें ताकि लोग हमें लेकर व्यर्थ की चर्चाएं न करें। बस।

—आमोद

पत्र पढ़ते ही सुवीरा एक गहरी उत्तेजना और आवेश से घिर गयी। फर्श पर थूकती हुई वह अपने-आपसे बोली, 'मैंने कितना गलत आदमी चुना है। ऐसे लेखक को लेखक न कह कर भड़भूजा कहना चाहिए।' वह अपने-आपको सुलगती हुई अंगीठी समझने लगी। कुछ क्षणों तक भीषण संघर्ष में रही। पत्र पलंग पर फालतू कागज की तरह पड़ा था।

'मुझे इस महान् लेखक से तुरन्त सम्बन्ध तोड़ लेना चाहिए।' इस वाक्य के साथ उसे लगा कि वह आन्तरिक रूप से टूट-सी गयी है। उसके दिमाग में पीड़ा की लहरें मचलने लगी हैं। वह ऊब-सी उठी है। वह शिथिल-सी बैठी रही। फिर उसने विचारा—कहीं वे दोनों प्रेम की प्रगाढ़ता के आवरण में एक-दूसरे से ऊब तो नहीं गये हैं?… इस विचार के साथ ही उसे अपने भीतर कुछ ढहता हुआ लगा।

धूप का टुकड़ा लावारिस-सा वेंटीलेशन में से कमरे में कूद आया था। सुवीरा को उसका इस तरह आना गवारा नहीं हुआ। उसने उसे वापस उसी पल भगा दिया। शांत सी अर्ध-शापित हो गयी। सोचने लगी।

आमोद से उसके बढ़ते, बनते और आज मिटते हुए सम्बन्धों के बारे में। एक पल के बाद ही उसने तय किया कि पहले चाय पी लेनी चाहिए। उसके बाद नौकरानी को चाय लाने के लिए कहा। फिर वही आत्मलीनता!

सभी रुकावटों के बाद भी कमरे में उजास हो गया था। वैसे तो वह प्रभात होते ही सारी खिड़कियां खोल देती थी पर आज उसने ऐसा नहीं किया।

चाय आ गयी। वह चाय बना कर धीमे-धीमे पीने लगी। उसे याद आया—आमोद को वह लेखक के रूप में जानती थी। एक दिन अचानक रास्ते में भेंट हो गयी। परोक्ष पहचान ने तुरन्त ही सारी औपचारिकताएं तोड़ डाली। भेंट अनेक भेंटों में बदल गयी। आमोद का कवित्वमय व्यक्तित्व उसके मन मस्तिष्क पर छाता गया। एक तरह से वह अपने आपको मन ही मन समर्पित कर चुकी थी। जो स्थितियां काफी तपस्या के बाद आती हैं, वे स्थितियां उन दोनों के मध्य तूफान की गति से आयी।

फिर एक दिन आमोद ने सुवीरा के मांसल शरीर के सागर में बहने का हठ किया तो स्थिति गंभीर हो गयी। सम्बन्धों के टूट जाने की नौबत आ गयी। सुवीरा आमोद से रागात्मक रूप से जुड़ गयी थी। सम्बन्ध तोड़ना नहीं चाहती थी और फिर आमोद ने विवाह का वचन भी दे दिया था। उसने अपने को सौंप दिया। दोनों को कोई पछतावा नहीं। सब कुछ बड़ी सावधानी से हुआ। आमोद

या नियति के नाम पर नहीं। यह सिलसिला गहरा, बहुत गहरा होता गया। लेकिन प्राहिस्ता-प्राहिस्ता दोनों ने जाना कि भावुकता में उठाया गया यह कदम अधिक ठीक व स्वस्थ नहीं है। सम्बन्धों को चरम सीमा या स्पर्श कराने के पहले मानसिक स्थितियों व आदतों को समझना नितान्त जरूरी है। एक दूसरे पर आत्मीयता भरे विश्वास की आवश्यकता है। 'पर हम केवल भावनाओं में बहे।'

वह एकदम उदास हो गयी। आखिर में मुवीरा ने तय किया कि अविश्वासों के दायरे में जीने से तो अच्छा है, कि सब-कुछ तोड़ देना चाहिए। क्योंकि आमोद में सहिष्णुता कम है, वह चाहता है कि मैं उससे साड़ी की भांति लिपटी रहूँ।" वह जिससे कहे, उससे बोलूं। यानी मेरा एक-एक पल उससे प्रतिबद्ध हो, यह कैसे सम्भव हो सकता है। उसने कुछ देर के बाद फिर विश्लेषित किया—यह भी सम्भव है कि हम कदाचित एक दूसरे से अब ऊब गये हो वर्ना सम्बन्धो को तोड़ देने का चैलेंज नही दिया जा सकता। अवश्य हमारे बीच अवश्य उकताहट आ गयी है।

उसने एक, दो, तीन कप चाय पी। उसने खिड़कियां खोल दीं। ताजगी कमरे में घुस आयी। वह सूरज की ओर देखकर मन ही मन बोली—'मैं शमशेर से बोलना बन्द नहीं करूंगी, आमोद से सारे सम्बन्ध तोड़ डालूंगी।'

निर्णय हो गया।

निर्णय होने के बाद उसे यह लगा कि उसके भीतर पीड़ा का सैलाब उमड़ आया है और वह अपने को पीड़ा का एक सुलगता हुआ पिंड मात्र समझ रही है। अपने मन को तनावों व निर्णय से अवगत कराने के लिए उसने आमोद को पत्र लिखा--आमोद तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर इच्छा हुई कि तुम्हारे जैसे लेखक को हजार बार फटकारूं और इतने चांटे मारूं कि मैं स्वयं मारते-मारते अपना होश-हवास खो बैठूं। पर मैं ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि मैं तुम्हारे लेखक को बहुत-बहुत प्यार करती हूं। तुमसे सम्बन्ध तोड़ने की कल्पना मात्र से पीड़ा होती है फिर सचमुच तोड़ने की बात कितनी पीड़ा जनक हो सकती है। लेकिन इधर के तनावों को देखते हुए यह आवश्यक सा लगता है। वस्तुतः तुम में संदेह के सांप पल रहे हैं और मैं उस अविश्वसनीय स्थिति को सहन नहीं कर सकती। मैं तुम्हें बता देना चाहती हूं कि तुम पहले आदमी हो जिसको मैं सभी रूपों से समर्पित हूं, वह भी इसलिए कि तुम मेरे साथ जीवन भर रहोगे। पर ऐसी स्थितियों में जीवन भर कैसे रहा जा सकता है। सम्बन्धों की सार्थकता विश्वास में है। शमशेर बहुत ही साधारण आदमी है, तुम्हारा उससे क्या मुकाबला? फिर भी वह मेरा मित्र है और मित्र एक नही, अनेक हो सकते हैं मेरे। उन्हें लेकर तुम्हें टेंशन में आने की कोई जरूरत नही है।

अब मैं अन्तिम बात पर आती हूं। शमशेर और तुममें से चुनना? इसका

उत्तर देने हुए लगता है कि मैं किसी गहरी खाई मे चीखने के लिए छोड़ दी गयी हूं। एक ऐसा आदमी जो केवल मेरा मित्र है, उससे सामान्य सम्बन्ध है, उससे तुम्हारी तुलना कैसे हो सकती है क्योंकि तुम्हें मैं प्यार करती हूं, तुम्हारे स्पर्श के फूल अब भी मेरे शरीर मे खिले हुए हैं। फिर भी मैं तुमसे ही सम्बन्ध तोड़ूंगी क्योंकि मुझे तुम्हारी सकीर्णता और दकियानूसीपन पसन्द नहीं है। यह स्थितियां हमारे वैवाहिक जीवन को जहर बना देंगी। जीवन की यह भी एक सही स्थिति है कि सम्बन्ध बनते और टूटते हैं। चेहरे दिखायी देते हैं और लोप हो जाते है, पर जो पल प्रेम में डूबे हुए हैं वे अमर होते हैं। हम अलग हो रहे हैं—अपनी खुशी से। सब-कुछ टूट जाने के बाद भी इस भावुकपन में कुछ शेष रह जायेगा। क्या शेष रह जायेगा—शब्द नहीं दे सकती पर कुछ सुखद अनोखा ही रहता है। अच्छा अन्तिम प्यार व चुम्बन"""

वह पत्र लिख कर कुछ देर तक विमूढ़ सी बैठी रही। चुप-चुप। गुमशुम। फिर उसने पत्र पढ़ा। एक बार, दो बार, तीन बार! इसके बाद उसने अपने-आपको काफी हल्का महसूस किया। उसे प्रतीत हुआ कि 'इस तोड़ने की बात' ने उसे एक नयी ताजगी दी है, बढ़ती हुई ऊब और सम्बन्धों की नीरसता को कम किया है। उसने आलस मरोड़ा।

उसकी इच्छा हुई कि वह नहा ले। टब में बैठकर अपने को झागों मे डुबा ले। अंग-अंग धो डाले। और नहाते समय आमोद आ जाय तो? तो""तो -वह खुशी में भर गयी। उसने सोचा कि उसे आमोद की तरह बचपना नही करना चाहिए। वह भावुक है, जिद्दी है, शांति से सब कुछ समझ जायेगा। इतना कठोर कड़वा पत्र सम्बन्धों की पुनः जुड़ने की सारी स्थितियों को खत्म कर देगा। दूरियां पैदा कर देगा।""यह भी सही है कि ऐसी तनावपूर्ण स्थितियां जीवन मे कई बार आ सकती हैं""इसका मतलब तोड़ देने से थोड़े ही है। 'मुझे भी उसे समझना चाहिए।""मैं उसे समझा लूंगी।'""उसने अपने को ताजा, बहुत ताजा महसूस किया।

वह बाथरूम में चली गयी। टब में बैठकर उसने अपने को झागों में डुबो लिया। फिर बाहर आकर शावर खोल लिया। पानी की बूंदें उसके चिकने जिस्म पर फिसलने लगी। नहाते-नहाते उसने सोचा कि आमोद आ जाय तो? -- वह सिहरनों से भर गयी।

□

मिस मोनिका और पेड़ का तना

उसने मेज़ पर चलती हुई मक्खी को लपककर पकड़ा। उसको चुटकी में उठाया और उसे फेंकते हुए वह बोली, "विवाह एक दीमक है जो स्त्री को लकड़ी की तरह खोखली कर देता है। जब स्त्री भरपूर जवानी में होती है, तब उसका ढांचा एक मजबूत लकड़ी की तरह होता है। बाद में उसको पति परमेश्वर की दी हुई कई तरह की दीमकें लगकर उसे खोखला कर देती है। और सबसे खतरनाक दीमकें हैं—ये बच्चे! जब से होते हैं तब से उस बेचारी का बड़ा बुरा हाल होता है। ये बच्चे बिच्छुओं की तरह स्वार्थी होते हैं जो अपनी मां को चट कर जाते हैं और उसको कंकालवत् छोड़कर कहीं और चले जाते हैं।"" विमला! इसलिए मैं अकेली ही रहती हूं।" कहकर मोनिका चुप हो गई। उसके चेहरे पर केक्टस के पौधे जैसा खुदरापन व कंटीलापन उभर आया, जिससे वह बड़ी डरावनी लगने लगी। विमला जड़वत हो गई। उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला।

"तुम लोग बिल्लियों की तरह हो। इनके प्यार के दूध को पीने के लिए पूंछनुमा साड़ी हिलाती हुई पहुंच जाती हो। इनकी वासनाओं के चूहे इनके शरीर रूपी मकान में बड़ी हलचल मचाए हुए होते हैं और तुम्हारे द्वारा उन्हें भगवा कर वे तुम लोगों की सदा के लिए छुट्टी कर देते हैं। ये बड़े स्वार्थी होते हैं। मैं कहती हूं कि तुम्हारे पास पैसा होना चाहिए, ये सभी मधुमक्खियों की तरह तुम पर टूट पड़ेंगे। अजीब-अजीब भाषा में भिनभिनाएंगे कि उसके अर्थ को समझने के लिए तुम्हें जरूर शब्दकोश देखना पड़ेगा। लेकिन उस भाषा के आवरण में केवल उनका निम्न स्वार्थ होता है। बहुत ही गंदा। इसलिए मेरी बात मानो और उस मजनूं की औलाद को लम्बे हाथ जोड़ दो। यह प्यार, यह भावुकता और यह लम्बे जीवन के सपने 'हजारे' के फूल की तरह होता है। जो देखने में सुन्दर होता है, लेकिन उसमें किसी तरह की खुशबू नहीं होती।' यह कहते हुए वह उसी तरह खड़ी हो गई जिस तरह कॉलेज में छात्राओं के सम्मुख खड़ी होती थी। उसकी दृष्टि में वही आदेश व बड़प्पन था।

विमला अबोध बच्ची-सी उसे एकटक देखती रही। कुछ देर मौन छाया रहा। वह क्षण भर का मौन उसे श्मशान के सन्नाटे-सा लगा। विमला ने धीरे से

प्रश्न किया, 'तुम्हारे पास बहुत पैसा है। निरा एकान्त जीवन है। लेकिन मुझे एक बात का जवाब दो कि आखिर तुम्हारा अन्त क्या होगा? क्या तुम मरते समय लुटेरे 'मुहम्मद गजनवी' की तरह रोओगी कि इतनी दौलत का अब क्या होगा?—या तुम इन सभी साजो-सामान को अपने साथ लेकर मरोगी।'

मोनिका अट्टहास कर उठी। उसके चेहरे पर जल्लादों जैसी लापरवाही आ गई। वह चलकर बोली, 'मैं एक दिन अपने सामने इन सबको जला डालूंगी। जब यह राख हो जाएगा तब मैं अपने प्राण त्यागूंगी क्योंकि धन, पैसा तो मेरे हजार उत्तराधिकारी पैदा हो जाएंगे और मुझे उत्तराधिकारी के नाम से चिढ़ है।'

'यह सब स्वाभाविक नहीं है। प्रकृति-विरुद्ध है। सामान्यता की जगह तुम में असामान्यता आ रही है। मुझे विश्वास है कि तुम्हारी मानसिक स्थिति रोम के बादशाह नीरो की तरह होगी। तुम अपने घर को अपने हाथों से जलाओगी और उसने गाया था, तुम रोओगी।' विमला का स्वर नीम की तरह कड़ुवा हो गया।

'मुझे उसी में आनन्द आएगा।' वह धम से कुर्सी पर बैठ गई जैसे किसी ने उसे जबरदस्ती बिठा दिया हो। वह विमला पर दृष्टि फैलाती हुई बोली, 'मुझे सहजता में न विश्वास है, न आनन्द।'

'फिर मरो। मैं तुम्हारी कोई बात नहीं मान सकती। मैं विमलेश से शादी करूंगी और जरूर करूंगी।'

'फिर, मैं तुम्हें एक पैसा भी उधार नहीं दूंगी। मेरा पैसा तुम्हें पोसने के लिए है, न कि तुम्हें मिटाने के लिए। सचमुच तुम जैसी मूर्ख युवती को कैद में बन्द कर दिया जाए।''' दुःख इस बात का है कि मैं इस देश की शासिका नहीं हूं।'

विमला उठ खड़ी हुई। उसने मोनिका के कमरे को देखा। उसके दरवाजे पर लटके चमकदार टैपेस्ट्री के पर्दे पर नजर जमाकर व्यंग से कहा, 'तुम्हारा दिल इस बन्द सलाखों वाली खिड़की की तरह है, जिसमें न कोई आ सकता है और न कोई जा सकता है। यह बन्द है और बन्द ही रहेगी। और तू अपनी ही घुटन में मर जाएगी। नमस्ते।'

'ठहरो, मेरी बात मान लो। इन पुरुषों को तुम क्यों नहीं समझ पा रही हो। मैं कहती हूं कि तुमने एम० ए० व्यर्थ ही किया है। मुहम्मद तुगलक की तरह सपने मत देखो।' वह चौंककर बोली, 'अरे, हां, तुम मैरेलिन मैनरो को जानती हो न? अमेरिका की बेहतरीन अभिनेत्री, जिसके नग्न सौन्दर्य को देखने के लिए वहां के लोग दीवाने थे। उस ऐश्वर्य सम्पन्न व लोकप्रिय अभिनेत्री ने अन्त में आत्महत्या की थी, क्योंकि इन मर्द-रूपी शेरों ने उसे सिर्फ मांस का

सोयड़ा मात्र समझा था और तीनों शेरों (उसके पतियों) ने उस लोयड़े को इस बुरी तरह से काटा था कि उसके भीतर दबे-लुके प्राण छटपटा उठे। उसके अंतिम दिनों की व्याकुलता का अन्दाज मैं लगा सकती हूं। तुमने कटी हुई गिलहरी की पूंछ देखी है। वह अलग होकर भी तड़पती है। ठीक उसी तरह उसके प्राण थे। वह आंतरिक रूप से इस जीवन जगत से दूर होकर तड़पते रहे—सिसकते रहे। धीरे-धीरे बर्फ की तरह ठण्डे पड़ गए""। मेरा कहा मानो, अपने दिल से इस विचार को निकाल दो।'

'मैं तुम्हारी तरह पागल नहीं हूं। मुझे विश्वास है कि तुम्हारा अन्त बहुत भयानक होगा। तुम्हारे लिए यह जीवन असह्य हो जाएगा और एक दिन तुम आत्महत्या करोगी।' वह हवा की तरह बाहर निकल गई।

मोनिका ने शीशे में अपना चेहरा देखा। 'क्या मैं आत्महत्या करूंगी?' उसने अपने आप से प्रश्न किया।

'विमला पागल है। मैं आत्महत्या क्यों करूंगी?' उसने अपने सवाल का खुद उत्तर दिया।

कमरे में एक बारगी घोर सन्नाटा छा गया। उसके सामने की शृंगार मेज पर (काली मैया शिवजी की छाती पर पांव रखे खड़ी है।) छोटा-सा हाथी दांत का स्टेचू पड़ा था। उसकी उस पर दृष्टि गई। एक अजीब सतोष झलका उसकी आंखों में। वह उठी। उसने उसे उठाकर दर्प से देखा। वह बाहर बरामदे में आई। एक कलात्मक पेड़ का इन्सानुमा तना पड़ा था। जब कभी मोनिका अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित होती है, इस तने के पास आकर खड़ी हो जाती है।

वह अभी वहां आकर बैठ गई। अत्यन्त खिन्न और टूटी-सी। वह उस तने के अत्यन्त निकट खिसक गई। अपना गाल उस पर टिका दिया। स्पर्श मादक और पुरुष का स्पर्श!

'यह अकेला उसे प्यार करता है। यह निर्जीव और गूंगा तना।' उसकी आत्मा की गहराइयों में कोई बोल उठा और उसने भावावेश में नेत्र मूंद लिए। बाह्य-जगत उसकी पलकों में बन्द होकर लोप हो गया। उसके सामने लम्बी-लम्बी अन्धेरे की घाटियां फैल गई। ये घाटियां सन्नाटे से गूंज रही थीं। इन घाटियों में कोई वृक्ष नहीं था, कोई फूल नहीं था। सूनी और वीरान। उजड़ी और बियाबान। वह घाटियों को अपनी अन्तर्दृष्टि से देखती रही। इन्हीं घाटियों की तरह उसका दिल है। वीरान और सुनसान। जुगनुओं की चमक की तरह सुख के क्षण उसके जीवन में आए। मां बचपन में मर गई। बाप को सदा यह गम रहा कि मेरे कोई लड़का नहीं है, इसलिए मेरा बुढ़ापा बिगड़ जाएगा और मैं अपने अन्तिम दिनों में दाने-दाने को मुंहताज हो जाऊंगा।""इसलिए उसने

कभी भी ससुराल जाने वाली बेटी को आत्मा से प्यार नहीं किया। एक पालन-पोषण का फर्ज लादे वे उसे दो जून का खाना, साधारण कपड़े और पढ़ाई का खर्च देते रहे। वह पाउडर लगाती, टीका-टमका करती, बालों में जूड़ा बांधती तो वे सख्त नाराज होते और उस तरह के रवैये को वे फालतू खर्च की संज्ञा देते थे। मोनिका तर्क जरूर करती। तर्क पर वे जल-भुन जाते थे। भाषण कर्ता की तरह कहते, "एक गरीब क्लर्क जीवन की इससे अधिक क्या आवश्यकताएं पूरी कर सकता है? आज की लड़कियां प्रकृतिजन्य सौन्दर्य को नहीं सवारती बल्कि बनावट ही बनावट में पैसों को जाया करती हैं।" मोनिका चुप हो जाती। झल्लाहट के मारे वह घुमा-फुमा हो जाती। उसके पिताजी वहां से खिसक जाते। वह क्रोध में तड़पती रह जाती। उम्र जवान हो गई। बाप का रवैया और बूढ़ा हो गया। उनके व्यवहार में रूखापन और मुखर हो आया। वह बी. ए. में पहुंच गई। आहिस्ता-आहिस्ता उसने पिताजी से कुछ कहना ही छोड़ दिया। जो कपड़े वे ला देते, उसे वह पहन लेती और जो वे थाली में परोस-देते, उसे वह खा लेती।

उसकी नौकरानी देवी धीरे-धीरे उसकी तरफ आई। पर्दे हिले और उसके कदमों की आहट ने कमरे की शून्यता को भंग किया। मोनिका को देखकर वह ठिठक गई। कुछ पल स्तब्ध-सी खड़ी रही। फिर उसने अपने बायें हाथ से पर्दे को पकड़ लिया। उसने सोचा, "यह मालकिन की सदा की आदत है।···यह पेड़ का तना और मेरी मालकिन! तना भी क्या कमाल है? एकदम आदमी की शक्ल का।" उसने नाक भौं सिकोड़ा। "बेचारी के मर्द नहीं है, अकेली है। इस पेड़ को ही···।" वह ही-ही-ही करके मौन हंसी हंस पड़ी। भाग खड़ी हुई वापस।···"हां मालकिन ने सख्त हिदायत दे रखी है—जब मैं इस तने के पास बैठी रहूं तब तुम मुझे किसी कीमत पर नहीं छेड़ोगी। उस समय मैं बहुत ही गम्भीर बात सोचती हूं।···सोचती हैं, सोचती रहें।" देवी ने मुंह बिचका दिया।

अब मोनिका व्यथा अभिभूत-सी मुद्रा परिवर्तन करके बैठ गई। उसका आंचल भी खिसक गया था और उसके दोनों हाथ पीछे की ओर तने को अपने घेरे में ले चुके थे।

उसे एक नई अनुभूति हुई कि यह घेरा 'सरवर' के हाथों का है। अनुभूति मृदुलता के आवृत्त में घिरती गई। उसे 'सरवर' याद आने लगा। उसके साथ बिताए हुए हजारों क्षण। समर्पण और प्रीत के क्षण! फिर अलगाव। फिर मजबूर से प्रेम। अभाव और प्रेम का समझौता नहीं। इस दरिद्रता ने उसे विवाह का कोई नया संदर्भ नहीं ढूंढने दिया। वह युगों से चले आ रहे वातावरण में झूलती रही। लेकिन उसने एक नए सत्य को जाना कि नारी हर हाल अनश्वरा

पाकर दूसरे क्षण नई आस्था ग्रहण कर लेती है। जैसे वह अपूर्ण पाती है मर्द के बिना''' पर यह छन्न मर्द का अपना नहीं। युग परिस्थिति से विवश पुरुष के प्रपंच ने उसे फिर ठगा। तब घृणा से वह नहा उठी। मजुल से सैद्धान्तिक मत-मतान्तर होने के बाद वह अपने में अन्तर्निहित हो गई। सिमट गई और फिर उसके बाप ने कभी भी उसके विवाह की चिन्ता नहीं की। वह एक भी रुपया खर्च करना नहीं चाहता था।

परन्तु उसे ये सब स्मृतियां जला डालती हैं। वह अवश हो जाती है।

तना हिलने लग गया था। उसकी खटखटाहट ने उसका ध्यान भग किया। अतीत की घटनाएं कागज के व्यर्थ टुकड़ों में बिखर कर उड़ गई। वह उठी। उसे चारों ओर से आग जलती हुई प्रतीत हुई। बदन जलने-सा लगा।

आग! आग! आग!

वह स्नान घर में जाकर पानी से भरे हौज में कूद गई। वह बड़ी देर तक स्नान करती रही। बाहर आई। बाहर आकर उसने अपने बाल सुखाये। देवी से चाय बनवाकर पी। कमरे में आई। अपने बाप की जवानी की तस्वीर को देखा। बुढ़ापे की सारी तस्वीर एक दिन उसने अनजाने में (केवल अभिनय मात्र) जला दी थी। उसे अपने बूढ़े बाप से सख्त नफरत थी। वह लोभी और कंजूस बाप जिसने रुपयों के लालच में उसे आजन्म कुंआरी रखा। उसके जीवन को जहर बना डाला। उसके मन में सदा की तरह खयाल आया कि वह इस तस्वीर को भी तोड़-फोड़कर जला डाले ताकि उस कंजूस की कोई शेष-स्मृति भी न रहे। लेकिन अपने इस हिंसक व घृणित विचार को मिटाने के लिए वह तुरन्त कमरे के बाहर हो गई। उसी अर्ध-नग्न अवस्था में वह तने के पास आई। वह सिर्फ ड्रेसिंग गाउन पहने हुए थी। उसका शरीर भीगा-भीगा था उसने उसे भी उतार दिया। दीवारों से चिपटे हुए सोए थे साये। वह तने के पास खड़ी-खड़ी उस पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगी। सोचने लगी, "मुझे पुरुष जाति से सख्त नफरत है। उससे सौ कदम दूर रहना चाहिए। पुरुष का चरित्र 'पिकासो' की चित्रकला है और दिल 'वानगॉग' की गहरे अनेक धब्बों वाली चित्रकला। अबूझ और अजेय। किन्तु प्रभावशाली, अत्यन्त प्रभावशाली! बेचारी स्त्रियां मोह जाती हैं। सम्मोहित-सी प्यार करने लगती हैं। पर मुझे उनसे घृणा है, बेहद घृणा और उसने अपने विचारों के विरुद्ध उस तने को अपनी बांहों में भर लिया।

देवी ने आकर उसके ध्यान को भग किया, 'ज्योत्स्ना दीदी आई हैं।'

'मैं आती हूं।' वह जल्दी से कपड़े पहनकर बैठक में आई। ज्योत्स्ना ने नमस्ते की।

'कहो? कैसे आना हुआ?'

'यूं ही।'

'ज्योत्स्ना ! तुम विधवा हो न ?' उसने हठात् प्रश्न किया।

'हां।'

'पुरुष को वरने के बाद तुम्हें आजीवन वैधव्य मिला ? विमला भी आज पुरुष की होने जा रही है। उसे भी चरम दुःख मिलेगा।' ज्योत्स्ना विमला की सहेली है।

वह भड़क उठी, 'आप बहुत गिरती जा रही हैं। (इन्सानियत उसने अपने मन में कहा) वह आपकी ममेरी बहिन है। आपको उसके सुहाग की कामना करनी चाहिए। ऐसी बद्दुआ कोई दुश्मन भी नहीं देता। मैं विधवा जरूर हूं, पर साथ ही मां भी हूं। उस पुरुष का बेटा मुझे इज्जत और सम्मान के साथ दो जून रोटी देता है। प्यार और स्नेह देता है। वह जब मां मां कहता है तो मैं अपनी सारी थकान भूल जाती हूं। मोनिका दीदी, आपको जिन्दगी में जो नहीं मिला, उसके लिए सबको वंचित करने की चेष्टा न कीजिए। आपका यह धन किसी को याद दिल नहीं करेगा। सही बात यह है कि आपको अभी भी किसी से विवाह'''!'

'ज्योत्स्ना, तुम जा सकती हो।' उसने क्रोध में नथुने फुरकाकर कहा। ज्योत्स्ना चली गई। उसके जाते ही उसने गुस्से में चाय की प्याली व तश्तरी को बाहर फेंक दिया।

'क्या देखती हो ?' मोनिका झल्लाई—देवी को देखकर।

'कुछ नहीं, मालकिन कुछ नहीं।' वह बेचारी कांप रही थी।

'देवी ! ज्योत्स्ना पगली कहती है कि मैं विवाह कर लूं। क्या तू नहीं जानती कि ये पुरुष सपोले होते हैं। प्यार केवल धोखा और छल होता है।'

'आप ठीक कहती हैं।' देवी जानती थी कि जब कभी भी उसकी मालकिन पुरुषों को गालियां देती हैं और अपनी सहेलियों से झगड़ करके उन्हें कोसती है तब अपनी मालकिन को ऐसा उत्तर देना चाहिए। वह रटे-रटाए शब्दों को पिंजरे के तोते की तरह बोली, 'ये पुरुष सांप हैं। उनके चाहने वाली स्त्रियां कुतियाएं हैं। वे पिल्ले पैदा करेंगी एक साथ तीन-तीन, चार-चार। फिर मर जाएंगी। ये सब ऐसी ही हैं मालकिन। उन्हें मरने दो, रिरियाने दो। जब बदन में खून नहीं होगा और ये पुरुष रूपी जोंकें इन्हें छोड़कर किन्हीं दूसरी स्त्रियों से चिपटेंगे तब इनकी आहें सुनेंगी। ये आपकी बातें अभी नहीं सुनेंगी। जहन्नुम में जाने दीजिए इन सबको। चलिए, खाना खा लीजिए (या चाय पी लीजिए)।'

मोनिका दम्भी नारी की तरह कदम उठाती हुई डाइनिंग रूम में जाती है। कुछ देर तक चुप रहती है।

आज भी वह चुप थी। देवी ने आग्रह किया, 'आप खाना शुरू कीजिए, ठंडा हो रहा है।'

उसने खाना शुरू किया।

देवी ने सहमते हुए पूछा, 'आपने भी जीवन में कभी किसी पुरुष को छुआ होगा ?'

मोनिका ऐसी हंसी जैसे उसे देवी पर तरस आ रहा हो। बोली, 'मैंने सपने में भी किसी पुरुष के स्पर्श का ख्याल नहीं किया। मैं इन्हें कटीले तार समझती हूं, इनके पास से गुजरो तो ये अपनी अजगरी सांस से हमारे आंचल को अपनी ओर खींचकर अपने कांटों में उलझा लेंगे""और तुमने ?'

'छिः छिः आप भी कैसी बातें करती हैं ? मैं आपके कदमों पर चलती हूं। ये पुरुष निगोड़े बे-लगाम के घोड़े हैं। कौन इनकी लातें खाये।' और उधर देवी के मस्तिष्क पर उसका प्रेमी पन्ना छा गया और उधर मोनिका को 'सरवर' व 'मंजुल' याद आ गए।

झूठ ! एक विस्फोट की तरह झूठ ने उन दोनों के दिमागों में धमाका किया और वे विमूढ़ हो गईं। दोनों की नजरें टकराईं। दोनों एक साथ हंस पड़ीं।

देवी ने कहा, 'विमल, जरूर शादी करेगी।'

'मरने दो।' उसने चिढ़कर कहा और वह उदास सी सोच बैठी, 'सभी शादियां कर लेंगी और करती जाएंगी। मैं विरोध करूंगी और करती जाऊंगी। एक दिन ऐसा आएगा कि मैं मर जाऊंगी। मेरे कोई नहीं होगा। अकेली, रेगिस्तान की झाड़ी की तरह अकेली, नहीं-नहीं, मैं मर जाऊंगी, मर जाऊंगी, अपने सारे सुखों को मिटाकर पहले ही मिट जाऊंगी सब कुछ खाक कर दूंगी। पर टूटूंगी नहीं। अपने को अब मैं कैसे बदल सकती हूं ? पराजय !' वह कराह उठी।

और फिर वह उठकर अपने बाप की जवान तस्वीर के पास गई। 'मैं इसे फाड़ डालूंगी। इसकी स्मृति को मिटा डालूंगी।' और वहां से वह सीधी उसी इन्सानुमा तने के पास आई और उसे जोर-से हिलाने लगी।

देवी ने मुंह बिचकाकर मन ही मन कहा, 'इनका सदा का धंधा है यह। कभी न कभी ये जरूर पागल होंगी।'

और वह सदा की तरह अपने काम में व्यस्त हो गई।

मोनिका की आंखों में आंसू आ गए। वह टूटकर थककर, तने के सहारे बैठ गई—सदा की तरह—बिलकुल पस्त होकर।

□

राम की हत्या

राम की हत्या हो गई।

उसकी लाश को घेरे हुए बहुत से लोग खड़े थे। छुरा दिल पर लगा था और इतनी भयानकता से लगा था कि सारा वक्ष रद्दी पुराने कपड़े की तरह चिंदी चिंदी रूप में फट गया था और खून छोटी-बड़ी कई धाराओं में बहकर उसके वस्त्रों को अजीब शक्ल दे गया था। घेरे हुए लोग हत्यारे की निर्ममता की चर्चा कर रहे थे और राम एवं उसके अपरिचित परिवार के प्रति तीव्र संवेदना प्रकट कर रहे थे। खून बहकर धरती पर भी बिखर गया था और धूल के कणों में मिलकर अपना अस्तित्व विशेष स्पष्ट बता रहा था। करुणा में डूबे लोगों का घेरा तोड़कर भी निगोड़ी मक्खियां उस लाश पर भिनभिना रही थी। एक बड़ा 'भब्बा' कभी राम के नाक पर और कभी राम के मुह पर बैठ रहा था।

एक स्त्री जो पीड़ा से संतप्त थी, अपने आंसुओं को पोंछती हुई बोली, 'मरने के पहले इस शरीर पर यदि मक्खियां रेंग भी जाती तो गुस्सा आ जाता था, पर अब मक्खियां सब जगह झुंड के रूप में नाच रही हैं।'

दूसरे आदमी ने शून्य दृष्टि से आकाश की ओर निहारकर कहा, 'मरने के बाद मिट्टी हो जाता है यह तन।'

सभी लोगों में करुणा से नहाई हुई संवेदनाएं थी, पर एक वृद्ध पु[illegible] निष्कंप-सा खड़ा था। उसके बाल रुई की तरह सफेद थे और उसकी आंखों [illegible] गहरी व्यथा ठहरी हुई थी। उसके होंठों पर मृत्यु की गहरी काली छाया [illegible] भांति कालापन छाया हुआ था और वह बार-बार लम्बी उसांस भरता था।

'राम की हत्या हो गई।' उसने अपने समीप खड़े हुए युवक से कहा।

'हां, उस्ताद, तुम्हारा राम मर गया।'

उस्ताद ने कोई जवाब नहीं दिया। वह संवेदनाओं में डूबी उपस्थिति [illegible] देखता रहा। उड़ी-उड़ी और व्यथापूरित खोई-खोई दृष्टि।

दूसरा युवक भागकर आया, 'उस्ताद पुलिस आ रही है।'

उस्ताद के चेहरे पर किसी तरह की प्रतिक्रिया नहीं हुई। भावहीन-सा देखता रहा। ऐसा लगा कि एक प्लास्टर की परत किसी ने उसके चेहरे [illegible] बिछा दी हो।

तभी रामलीला का रावण दक्षिणेता ओर से चिल्लाया, 'क्यों यहां

बचा रही है। भागो, भागो भागो भागो, पुलिस आ रही है।' और उसने बड़ी 'लक्ष्मण' के हाथ में हाथ थमाए। वह इधर-उधर भागा।

भीड़ पुलिस का नाम सुनकर खिसकने लगी। कोई कह रहा था, 'अब यहां से खिसकने में ही लाभ है। पुलिस ने देख लिया तो दंगाई के रूप में हमें भी पकड़ लेगी। फिर बिना बात हमारी पिटाई होगी। कचहरी और घर, घर और कचहरी ?'

भीड़ बहुत हल्की हो गई पर मजिस्ट्रेट और उस्ताद। अब रावण सबसे हट जाने के लिए अनुरोध करने लगा।

उस्ताद ने एक हाथ मरे हुए राम की ओर देखा। उफ़! राम की हत्या!

कल रात जिस तरह हजारों की भीड़ के सम्मुख वह वन गये के बाद 'सीते सीते' चिल्ला रहा था। आंखों में व्याकुलता छा गई थी। बड़ी बूढ़ियों की आंखों में अश्रु छलछला आए थे और वह कलाकार प्रभु राम का प्रतिरूप विह्वल होकर भटक भटक कर कह रहा था, 'सीते प्यारी सीते।'

और उस्ताद को लगा कि उसके होंठ फड़क उठे हैं। 'सीते' की पुकार की प्रतिध्वनि देखा किए हुए उसका हृदय आकुल व्याकुल हो उठा है। उसे लगा कि उसके भीतर का राम जीवित हो गया है और बीस वर्ष पूर्व का एक दृश्य उसकी आंखों के आगे साकार हो उठा।

उन दिनों सिनेमा नाटक का प्रचलन बहुत कम था। रामलीला के अन्त में ही पारसी रंग-मंच के नाटक होते जाते थे या कभी-कभी बाहर की कम्पनियां खेल-तमाशे करने आती थीं। उन दिनों एक रामलीला आई थी। नामी रामलीला। उसने डेरा जमाया था—एक सेठ की कोठड़ी में। शहर के परकोटे के समीप थी यह कोठड़ी। सहूलता से उसमें बीस-चालीस आदमी रह सकते थे।

तब दूर-दूर से दर्शक रामलीला देखने आते थे। आकर्षक व्यक्तित्व के धनी होते थे कलाकार। कॉमिक का नायक होता था—मसखरिया, चलता पुर्जा। हाथ में चोंपे बांस को लिए हुए वह हर एक को मारता-पीटता था और लोग उसकी बन्दर जैसी उछल-कूद पर जोर-जोर से कहकहे लगाते थे।

तब उस्ताद स्वयं राम बनता था। अपने गेंहुए रंग, तेज-मधुर आवाज और आकर्षक मांसलता के कारण वह लोगों की नज़र में समाया हुआ था। जब अभिनय करता था, तब लगता था—वह राम है। साक्षात् राम! मर्यादा पुरुषोत्तम!

सीता के वियोग से संतप्त होते-होते सारी रामलीला के सदस्यों को एक प्रमुख सेठ ने भोजन कराने का न्यौता दिया। उन दिनों हनुमान महाराज की वह रामलीला थी—हाथरस के हनुमान महाराज की। और उस्ताद उसमें राम का पार्ट अदा करता था।

वे सारे कलाकार खाना खाने गए। एक साथ सबकी पत्तलें लगीं। तभी एक व्यक्ति ने आकर उस्ताद को बुलाया 'राम जी, जरा सुनिए तो?' उस्ताद का असली नाम नर्मदाप्रसाद था।

तब जनता में रामलीला के पात्र अपने असली नामों से नहीं जाने जाते थे। उस्ताद चकित सा उसकी ओर गया। प्रश्नवाचक चिह्न स्पष्ट-सा उसके चेहरे पर नजर आ रहा था। कौन उसे बुला रहा है?… इस कोठडी के लोगों से उसका किसी तरह का कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं है। फिर कौन उसे बुला रहा है? इसी प्रश्न से घिरा हुआ भीतर गया।

थोड़ी देर में एक लम्बी रूपसी उसके सम्मुख थी। गोरा रंग और सुन्दर नाक-नक्श। उसे देखते ही उस्ताद के सारे शरीर में एक अजीब झुरझुरी छूट गई। जो, व्यक्ति उसे लाया था, वह चला गया था। एक कमरा, एक सुन्दर यौवना और तत्कालीन राम यानी यह बूढ़ा उस्ताद!

युवती ने अत्यन्त सहज स्वर में कहा, 'आप बैठिए न?'

उस्ताद चटाई पर बैठ गया।

'मैं इस सेठ की विधवा बेटी हूं। मेरा नाम 'बूली' है, क्योंकि मैं बचपन से ही नाक में 'बुलाक' पहनती थी। शादी में मेरी वह 'बुलाक' सास ने खोल दी थी।'

बिना पूछे ही इतनी सारी बातों के बताने का उद्देश्य वह नहीं जान सका। उस्ताद अबोध बालक की तरह उसकी ओर देखने लगा। प्यासों का सैलाब था—बूली की आंखों में।

'आपने मुझे बुलाया है?' उसने पहला प्रश्न किया।

'मैंने आपको इसलिए बुलाया है कि मैं राम के चरण स्पर्श करना चाहती हूं। आप साक्षात् राम से लगते हैं। आपको जिस दिन से देखा है, नींद नहीं आती है।'

हालांकि उस समय गर्मी थी, पर नर्मदाप्रसाद को लगा कि उनके भीतर ठंड की पुलकन भरी लहरें दौड़ रही है। वह उठना चाहता था पर उसका शरीर मानों जमीन पर बिछी चटाई से चिपक गया हो। उसने सोचा कि इसे नींद क्यों नहीं आती है?…और वह रोमांचित हो गया। उसने एक बार भयभीत दृष्टि से धीरे-धीरे उस युवती को देखा—एकदम अद्भुत। नितान्त सपनीली परियों-सी।

'मैं सच कहती हूं कि आप मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। मैं आपको सदा एक रुपये का हार पहनाती हूं, पर गुप्त नाम से नाम से पहनाऊंगी तो लोग मुझे न जाने क्या-क्या कहेंगे? पर ये लोग मेरे मन की आग को नहीं जानते। पन्द्रह

वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थी। चूनरी का रंग दस-बारह दफा ही उतरा है। सेज का सिंगार भी जी भरकर सजा नहीं पाई हूं।"

नर्मदा सहम-सा गया वह रामलीला के स्टेज पर सदा सोचता था कि यह कौन धर्म-प्रेमी है जो सदा उसे एक रुपये की माला पहनाता है। आज यह रहस्य एक अनुपम सुन्दरी के रूप में उसके समक्ष प्रगट हुआ है। उसने बड़ी मुश्किल से सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा, 'यह सब कर्मों का फल है। कर्म-गति कभी नहीं टलती है। भगवान राम को भी चौदह वर्ष का वनवास भोगना पड़ा था।'

'हां, मैं कर्म-फूटी हूं ही। कर्म-जली नहीं होती तो क्या इस उम्र में माथे की बिन्दिया मिटती? हाथों की चूड़ियां टूटती।' वह भर-भर आई। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों के पलक-पुलिनों पर छोटी-छोटी अश्रु की लकीरें सी चमक उठी। वह उसके समीप आ गई। उसने नर्मदा के चरण-स्पर्श करके विनीत स्वर मे कहा, 'रामजी, मुझ पर दया कीजिए, मैं आपके पांव पड़ती हूं, मैं बहुत प्यासी हूं।'

स्पष्ट समर्पण की प्रार्थना थी। नर्मदा हक्का-बक्का हो गया। अभी कोई आ जाएगा तो हड्डी-पसली अलग कर देगा। हनुमान महाराज को मालूम हो गया तो उसे नौकरी से निकाल देगा। उसे कितनी मुश्किलों से यह नौकरी मिली है? इस राम के पार्ट के लिए उसने हनुमान महाराज के तलुवों को आंसुओं से धोया था, महीनों हुक्का भरा था, महीनों धोबी की तरह कपड़े धोए थे और आज यह स्त्री"'। तब तक बूली ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसे मालूम हुआ कि बिजली का करेंट उसे छू गया है और वह सुन्न हो गया है।

'देखो, कोई आ जाएगा।" उसने उसे हलका-सा धक्का देकर कहा, 'मेरी नौकरी चली जाएगी।

'आप इसकी चिन्ता न करें। मैं आपको बहुत पैसा दूंगी। नौकरी भी दे दूंगी।' कहने के साथ ही उसने अपनी बांहें नर्मदा के गले मे डालनी चाहीं पर नर्मदा उठ गया। उसका दिल धड़क रहा था। इस अप्रत्याशित आक्रमण से वह मन ही मन इतना भयभीत हो गया था कि उसकी इच्छा हुई कि वह चीखता हुआ भागे और सब कुछ सभी लोगों को बता दे।" पर वह ऐसा कुछ भी नही कर सका। वह अमूर्त शृंखलाओं से जकड़ा हुआ सा बैठा रहा—चुपचाप और निश्चल।

'मैं तुम्हें सोने की यह जंजीर दूंगी।' बूली ने नया प्रलोभन दिया। लेकिन नर्मदा ने उसका भी कोई उत्तर नहीं दिया। उसे बार-बार कंपकंपी छूट रही थी कि कहीं हनुमान महाराज आ गये तो? वह नरवस हो गया और उसने बड़ी हीनता से कहा, 'मुझे यहा से जाने दीजिए।'

'ओह ! आप मेरी बात नहीं मानेंगे। मैं आपको बहुत प्यार करती हूं। रात-दिन, सोते-जागते, उठते-बैठते मुझे आपका ध्यान रहता है। 'आप राम हैं न, राम होकर मुझ पर दया नहीं करेंगे।' उसकी आंखों की प्यास और गहरी हो गई जैसे वह कोई पहाड़ों से घिरी अथाह झील हो और अनंत प्यासी लहरों की तरह उसमें उठ रही हों। यौवन के उद्दाम का ऐसा रूप नर्मदा ने जीवन में कभी नहीं देखा था। वैसे लछमनिया से उसने प्रेम जरूर किया था, पर उस प्रेम में गहरी आत्मीयता थी, एक अलौकिक आनन्द और आकर्षण था। जब वे दोनों अकेले मिलते थे तब उन्मुक्त आकाश के नीचे परिन्दों की तरह दौड़ते थे। शारीरिक भूख वे नहीं जानते थे। वे नितान्त किशोर थे। इतना जरूर सोचते थे कि एक दिन वे शादी करेंगे और खेत में साथ-साथ हल चलायेंगे। पर यह कूली इससे कुछ और चाहती है। वह चाहती है जिसे उसने आज तक केवल सुना ही है। स्त्री और पुरुष! भूख, एक शाश्वत् भूख! एक अनजानी भूख! वह पसीने से भीग गया था। उसकी जबान तालू से सटक गई।

'आप क्या सोचने लगे? जल्दी।'

'मुझे छोड़ दीजिए मैं आपको हाथ जोड़ता हूं। मैं राम हूं। हनुमान महाराज ने कहा था कि बेटा राम का पार्ट मांग रहे हो? उसे करने के लिए राम जैसी महान् आत्मा भी चाहिए। उस जैसी मर्यादा भी चाहिए।' जब तक तुममें अपने वेश के प्रति पवित्रता नहीं होगी तब तक तुम मंच पर वह राम लग ही नहीं सकते जो जन-जन के घट में बसा हुआ है।'

लेकिन कूली वासना में डूबी थी। वह उससे लिपट गई। वह आवेग में बड़बड़ा रही थी, 'मेरी पीर को जानो राम। मैं आपको बहुत चाहती हूं।'

पर नर्मदा को लगा कि लछमनिया की आत्मा कहीं पर भटक रही है। एक वर्ष पहले उसकी शादी उससे हो गई थी। शादी के पहले और उसके बाद आज तक उसने लछमनिया का जिस्म अपनी गोद में एक बार भी नहीं लिया था। अवसर ही नहीं मिला था। रामलीला आज यहां तो कल वहां। एक शहर से दूसरे शहर। एक नगर से दूसरे नगर। अतः गौना भी नहीं हो सका।

'नहीं!' उसने दृढ़ता से कहा।

'क्यों!' कूली तड़पी।

'मेरी सीता—मेरी सीता—! नहीं कूलीबाई जी, मैं पराई नार को नहीं छू सकता। मैं शादी शुदा हूं। मेरे अपनी बहू है। आप विवश होकर यह काम न करें! मेरी मर्यादा को भंग न करें। मैं दूसरी नारी से—।'

बूली के मन में आग की लपटें उठी। वह एकदम खड़ी हो गई। आहत नागिन-सी फुफकार करके बोली, 'मूर्ख, निरे मूर्ख हो। आई लछमी को ठुकराते हो? देखो! मैं तुम्हें और रुपये दूंगी.....तुम.....'

पर नर्मदा बाहर चला आया। उसका ग्रामीण, भोला और निश्छल मन इस समर्पण को पाप मानकर स्वीकार नहीं कर सका। उस दिन उसे वह स्वादिष्ट खाना भी ज़रा रुचिकर नहीं लगा था। हर कौर जहर भरा लगता था। वह बार-बार ईश्वर को धन्यवाद दे रहा था कि उसने उसे एक जघन्य पाप से बचा लिया।

'राम की हत्या हो गई।' एक जोर की आवाज ने उस्ताद के ध्यान को भंग किया। उसने देखा कि एक युवक जिसका चेहरा इस वीभत्स दृश्य को देखकर डर-सा गया है। अपने साथी को कह रहा है—'राम की हत्या हो गई।'

पुलिस आ गई थी। उसके साथ फोटोग्राफर थे। कार्यवाही समाप्त होने के साथ लाश जलाने के लिए उन्हें दे दी गई। लाश शाम को मिली। लाश को प्राप्त करने के लिए उस्ताद को कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ा। दिन भर कोतवाली से अस्पताल और अस्पताल से कोतवाली।

लाश को चिता में जला दिया गया। रामलीला के सारे लोग दहाड़ मार कर रो पड़े। कॉमेडियन 'चलतापुर्जा' जो सारी जनता को सदा हंसाता था, आज भी इस तरह हृदय विदारक रोदन कर रहा था कि सुनने से छाती फट जाती थी।

लेकिन उस्ताद के चेहरे पर एक निर्मम तटस्थता थी। उसकी आंखों में एक भी आंसू नहीं था। साथी-संगी सभी चकित थे। क्या हो गया है उस्ताद को वह इतना मौन क्यों है? सामने आग की भयानक लपटें चटख-चटख कर उठ रही थीं।

उस्ताद नर्मदा को महसूस हुआ कि एक आग उसके अन्तस में जल रही है। इसी तरह चटख-चटखकर एक विचित्र पीड़ा को जन्म दे रही है। उसे याद आया—उसने मर्यादा को नहीं तोड़ा। बूली को नाराज करने के बाद उसे फिर किसी ने गुप्त नाम से माला नहीं पहनाई। वह उसी तन्मयता से राम का पार्ट अदा करता था। अपने पेशे की पवित्रता को वह महान् समझता था। उसे अच्छी तरह से याद है कि एक और महिला उसे हर रोज एक सेर दूध भिजवाती थी। एक दिन वह उससे उसके निवास पर मिलने के लिए भी आई थी। उसने डरते हुए पूछा था, 'कहिए।'

'मैं आपको हर रोज एक सेर दूध भिजवाती हूं।' उस महिला ने यह वाक्य इस लहजे में कहा कि जैसे वह उस दूध के बदले उससे कुछ वापस चाहती है।

'आप मुझे दूध क्यों दिलाती हैं ?'

'आप मुझे राम के रूप में भा गए हैं।'

उसने उस महिला को हाथ जोड़कर कहा, 'मां, मेरा रिजक मेरा सबसे बड़ा धर्म है, उस धर्म को छोड़कर मैं कुछ भी नहीं कर सकता। आप अब जाइए।'

उस महिला के चेहरे पर घृणा के शोले दहक उठे। उसकी खिंची हुई भंगिमा से लग रहा था कि वह औरत उस पर थूकना चाहती है।

पर यह राम ?

जिसकी हत्या हो गई है।

जिसका शरीर लपटों में धू-धू करके जल रहा है। यह राम स्वर्ण मृग का दीवाना हो गया था।

उस्ताद जानता था कि इस राम की हत्या किसने की है ? शूर्पणखा के भाई मेघनाद ने। उस युवती के भाई ने।

श्मसानिया वैराग कम हो गया। कुछ लोग उस्ताद के पास आए।

'उस्ताद ?' रावण बनने वाले युवक ने पूछा 'मंगल की मौत का आपको गम नहीं ?'

'बहुत गम है।' उस्ताद ने उदासी के स्वर में कहा, 'इससे भी बड़ा गम इस बात का है कि उसे अपनी करनी का दण्ड मिला है।'

'कैसे ?' सब चौंक पड़े।

'तुम नहीं जानते हो ? क्योंकि तुम सब लोग आज अपने कर्तव्य और धर्म से हट गए हो। तुम समझते हो कि हम दूसरे लोगों को किसी भी तरह लूट लें। बरगला दें, भ्रष्ट कर दें...। इस शहर में हम लोग पन्द्रह दिन पहले आए थे। पीटती पीटती और आर्थिक संघर्षों में झूलती हमारी यह रामलीला मंडली किसी भी तरह बस चलती है। वह जमाना चला गया जब हजारों लोगों की भीड़ लगती थी। फिर भी धर्म के प्रति रुचि रखने वाली आत्माएं अब भी बहुत हैं।

'यह राम याने मंगल मेरी तरह ही राम का पार्ट करता था। हम जब राम का पार्ट करते थे तब हमें पग-पग पर यह अहसास होता था कि हम सचमुच राम हैं। हमारे समक्ष हमारा अभिनय, हमारा धर्म और हमारी एकरूपता होती थी। लोग हमारे पांव छूने के लिए तरसते थे। हमें देखने के लिए भीड़ इकट्ठी हो जाती थी पर यह मंगल पहले ही दिन से भटक गया। उसकी पापभरी निगाह पहले ही दिन से एक सुन्दर युवती पर जम गई। चूंकि मैं ढोलक बजाता हूं और हरदम यह ध्यान रखता हूं कि कौन अपने अभिनय में त्रुटि रख रहा है, सो मैंने यह भांप लिया। यह मंगल सीता को नहीं उस युवती को देखता था। कौशल्या

तुम सभी सुखों की खोज में भटकते हो। अपनी औकात, हैसियत और सीमाओं को लांघकर तुम समाज को लूटना चाहते हो और अन्त में सुख के दावेदार तुम्हारी हत्या कर देते हैं। ये सुख छुरे के रूप में तुम्हारे दिल के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं।'

चिता भभक उठी। उसके प्रकाश में देखा कि उस्ताद का चेहरा पीड़ा से दमक रहा है। वह ओजस्वी स्वर में एक महात्मा की तरह बोला, 'तब हम अपने पेशे के धर्म के प्रति ईमानदार और भयभीत थे। हम अपने नायक की मर्यादा समझते थे, पर तुम सब लोग एक ऐसी भूख से पीड़ित हो जिसका कोई अन्त नहीं। अभी यह चिता ठण्डी पड़ जाएगी। मंगल राख की ढेरी में बदल जायेगा। यहां अंधेरा छा जाएगा पर हमारे भीतर सन्नाटा""एक अभंग सन्नाटा, सदा छाया रहेगा। पर कल असली किस्से नंगे होंगे और लोग हमें क्या क्या कहेंगे? हम सब एक तरह से हमेशा के लिए मर गए। अपने पेशे से वंचित कर दिए जाएंगे। लोग कहेंगे—राम की हत्या हो गई। और मैं समझता हूं कि राम की हत्या नहीं, अपने पेशे की पवित्रता की हत्या, मर्यादा की हत्या, सत्य की हत्या हो गई, क्योंकि अब हम इस शहर में अपना सिर गौरव से ऊंचा नहीं कर सकेंगे।'

चिता मद्धिम पड़ गई। उसकी चरखें मंद पड़ गईं, पर उस्ताद की सिसकियां तेज और बहुत तेज हो रही थीं।

□

अंधेरों से घिरी रोशनी

हम लोग मेले में घूम रहे थे। मैं, मिसेज भानुमति, उनकी सहेली रोशनी और उसके दो बेटे-बेटी ! मैं भानुमति का मेहमान था। भानुमति का पति सऊदी अरब में एक फर्म में टेक्नीशियन था और स्वयं भानुमति स्कूल में सीनियर टीचर। रोशनी उनकी खास सहेली थी, बचपन की सहेली।

रोशनी के बेटे का नाम बटू था और बेटी का नाम पिंकी। पिंकी शांत और सहज लग रही थी, किन्तु बटू कुछ न कुछ उद्दंडता करता रहता था। वह बार-बार पैसा मांगता था। इधर पैसा लिया और उधर खर्च किया जब उसको मना किया तो वह अपनी मां से उलझ पड़ा। अंट-संट बकने लगा, जैसे वह अपनी मां पर अपना वर्चस्व स्थापित कर रहा हो। आखिर रोशनी देवी, लोक-लाज समझिए या परिस्थिति, उसकी मांग को पूरा कर ही देती थी।

मेरा ख्याल बार-बार उस पर जाता था। लग रहा था कि रोशनी देवी ने अपने बेटे को बिगाड़ रखा है, पर मैंने पूछना ठीक नहीं समझा।...व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप का मैं पक्षधर नहीं हूं।

मैं और भानुमति काफी आगे बढ़ गए थे। नारी स्वतन्त्रता विषय पर हमारी बहस चल रही थी। उसका मानना था कि नारी पहले की तरह ही पुरुष की आज भी गुलाम है। कुछ शाब्दिक एवं सैद्धांतिक स्वाधीनता की बातें जरूर लेखन और भाषणों में उभर कर आई हैं !...मैंने उसके विचारों से थोड़ी असहमति प्रकट की। मेरा मानना था कि मूल्य बदल रहे हैं, उसके अनुसार बंधन ढीले हो रहे हैं।

गम्भीर बातचीत में अचानक भानुमति को रोशनी का ध्यान आया। वह चौंक कर बोली, 'अरे, कहां गई वह ?'

हम दोनों ने उसकी ओर देखा तो रोशनी से उसका बेटा उलझ रहा था ! दोनों के चेहरों पर तनाव एवं खिंचाव साफ नजर आ रहा था। हाथों की गति से लग रहा था कि दोनों काफी उत्तेजना में हैं !

भानुमति ने गुस्से में कहा, 'इसने अपने बेटे को काफी बिगाड़ दिया है। बिल्कुल मवाली हो रहा है। बहुत ही अश्लील गालियां देता है।'

'छि: छि: यह तो आगे चलकर इसके लिए एक प्रॉब्लम हो जाएगा।' मैंने जरा क्षोभ से कहा।

हम दोनों उस ओर बढ़े कि बंटू ने रोशनी के गाल पर चांटा मार दिया। जोरदार चांटा! हम दोनों के बीच क्षणिक शून्यता भर आई। हम लपके। रोशनी का चेहरा देखते ही बनता था। लगा कि किसी ने उसका सारा खून निचोड़ लिया है। वह वर्षों से बीमार है! अपमान, खीझ और पीड़ा के मिले-जुले भाव थे उसकी निगाह में!

उसने हमें बस इतना ही कहा, 'मैं जा रही हूं भानु'''प्लीज, मुझे क्षमा करना।' और वह बंटी को बेदर्दी से घसीटती ले जा रही थी। वह उसे पीट भी रही थी। और बंटू उसे गालियां दे रहा था, उटपटांग बक रहा था!

भानुमति ने मेरी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा। हम दोनों यमुना के किनारे सूखी दूब पर आकर बैठ गए। भानुमति मेरे साथ पढ़ती थी और मेरे मित्र की वह पत्नी भी थी! बड़ी बुद्धिमति और तार्किक!

मैंने जब रोशनी को लेकर उसे कई बार कुरेदा तो उसने बताया, 'रोशनी के साथ एक भयंकर ट्रेजडी है।''' वह बहुत भावुक और संवेदनशील लड़की थी। पढ़ने में भी ठीक-ठाक थी, पर थी अत्यन्त गरीब घर की। उसके सात भाई-बहन थे! सारे भाई मेहनत मजूरी करते थे। मां सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति थी। सबकी सहती थी। विशेषकर अपने शराबी पति से वह बहुत ही दुखी थी। हालांकि वह एक अच्छा मिस्त्री था पर शराब-गांजे की लत ने उसे एकदम नाकारा सिद्ध कर दिया था! इस पर वह बात-बात पर पत्नी और बच्चों को पीट देता था। जब वह नशे में धुत होकर वहशीपन पर उतारू होता तो घर नरक बन जाता था।

और एक दिन अचानक उसने रोशनी की शादी तय कर दी। तब वह मात्र पन्द्रह साल की छोरी थी। मैंने तुम्हें बताया न, कि उसके बाप से घरवाले आतंकित थे। एक दहशत से घिरे रहते थे! जब रोशनी की मां ने विरोध किया तो बाप ने उसकी जमकर पिटाई की। रोशनी कांप उठी और उसने अपने आपको समर्पित कर दिया—हालात के! कोई शगुन नहीं, कोई सगाई का काम नहीं। सीधे शादी। विवाह मण्डप में पहली बार रोशनी को मालूम हुआ कि उसका पति गूंगा-बहरा है। उस मजबूर और दीन पर गाज गिर पड़ा। उसके बाद में यह भी मालूम हुआ कि उसके बाप ने लड़के वालों से विवाह का सारा खर्च और पांच हजार रुपए नकद लिये हैं!''' कितने दर्दनाक बन्धन हैं ये सब? रोशनी गूंगे-बहरे की बहू बन गई। वह गूंगा-बहरा औरत को पाकर पागल हो गया। उसकी उम्र भी तो तीस साल की थी। वह रोशनी की इच्छा के विरुद्ध बलात्कार-दर-बलात्कार करता रहा! वह प्लास्टिक के खिलौने की तरह टूट गई। केवल मेरे पास आकर रोया करती थी। मैं उसे विद्रोह के लिए उकसाती

तो वह भयभीत हो जाती थी। फिर एक-एक साल के अंतर में दो बच्चे! उसके ससुराल वालों की हालत कुछ अच्छी थी। लड़के के बाप ने एक खोखे में चाय की दुकान खोल रखी थी और रोशनी का पति 'मौजी' अपने बाप के साथ काम करता था! दुकान चूंकि मजदूर बस्ती में थी, अतः अच्छी चलती थी। साथ ही रोशनी के ससुर ने सूदखोरी का काम भी शुरू कर रखा था। उसके पास पैसा था, पर वह मौजी को एक नौकर से भी बदतर रखता था! शायद वह परपीड़क भावना से ग्रस्त था।

जब बंटू बड़ा हुआ, तब तक रोशनी काफी कमजोर हो गई थी। बंटू चंचल और आकर्षक बच्चा था, पर रोशनी उसे सड़े हुए सेब की तरह रखती थी। समय काफी होने के बाद भी वह बच्चों पर ध्यान नहीं देती थी! उसके भीतर वितृष्णा एवं अपने आप से कटाव का एक मचलता सरोवर था!

जैसे ही बंटू चार साल का हुआ, उस पर रोशनी की लापरवाही, परिवेश वातावरण का प्रभाव पड़ने लगा। आसपास के लड़कों के साथ वह दिन भर खेलता था, सरकारी स्कूल का छात्र था, जहां प्रायः निचले वर्ग के बच्चे ही पढ़ते थे, जो जिन्दगी को पैबन्दों के साथ जीते थे।

भानुमति ने एक पल रुककर पुनः कहा, 'मैं तुम्हें सच कहती हूं कि रोशनी अंधेरों में घिरती जा रही थी। किसी के प्रति मोह नहीं था उसमें। अपनों के बीच वह अजनबी का जीवन जी रही थी। एक यांत्रिकता भरा जीवन! बंटू के विपरीत पिंकी थी। वह सीधीसादी लड़की समय के पूर्व अपनी मां की वेदना समझने लगी थी। ... वह मां के हर दर्द में हिस्सा बंटाती थी। ... और बंटू? वह जिद्दी, मुंहफट और आवारा होता जा रहा था! हर समय पैसा मांगता... यदि पैसा नहीं मिलता तो वह रोशनी को मां की....बहन की....गालियां निकालता था। सामान उठाकर जमीन पर पटकता और रोशनी को चुनौती देता।... जहां-तहां पैसा रखा रहता था। उसे चुराकर ले जाता....वह अपनी तोतली भाषा में जब गालियां निकालता, वह भद्दी भले ही हों, पर वह सुनने में कहीं अच्छी लगती थी। वह ऐसे चीखता-चिल्लाता रहता था, जैसे कोई बड़ा आदमी हो। कभी-कभी रोशनी उसे पीट दिया करती थी। पीटती थी तो बर्बरता से, पर दुख की बात यह थी कि बंटू पिटता जाता था और भद्दी-भद्दी गालियां निकालता। अंत में हार जाती रोशनी!

मुझे रोशनी ने ही बताया कि कभी-कभी वह उसकी विचित्र गालियां सुनकर हंस पड़ती थी। उसकी बड़े-बूढ़ों जैसी बोलियां उसे सुखकर लगती थीं।... शायद उसको सुखप्रद लगना, उस अतृप्त मानसिकता की प्रतिक्रिया थी। जिसके मूल में उसका गूंगा-बहरा पति था! पति के द्वारा कुछ भी न सुनने की एवज

में पुत्र द्वारा सुनना कहीं उसके अचेतन मन को सन्तोष देता हो ?""उसने स्वयं स्वीकार किया था कि उसे उसकी ये गंदी हरकतें कभी-कभी न जाने क्यों अच्छी लगती हैं ?""भानुमति का चेहरा सहसा गम्भीर हो गया और उसकी दृष्टि में दार्शनिक की ठहक जनम आई थी ! वह फिर बोली, 'मैं जहां तक समझती हूं कि पिता द्वारा उसके कानों को जो लम्बे अर्से तक सुनाया गया था, उसके सुनने की ललक उसमें यदाकदा जाग जाती होगी। इस बात ने भी वहीं उसे कमजोर कर दिया कि उसका पति उसे न तो प्यार के दो बोल बोल सकता है और न तकरार के दो बोल ! गूंगापन, गहरे कुएं का गूंगापन ही था उसके आसपास। तब बटू की यह असामान्य हरकतें जाने अनजाने कदाचित उसे सह्य हो जाती हों ?"" पर उसकी बटू के प्रति यही उदासीनता उसके लिए घातक बनती गई। धीरे-धीरे बंटी एकदम उसके कंट्रोल से बाहर होता गया। उसकी आंखें तब खुलीं, जब वह अपनी जरूरतों के लिए पैसा भी चुराने लगा।""रोशनी का कहना था कि जरूर किसी बुरे प्रभाव की पूर्ति हेतु वह जाने-अनजाने बटू की बुरी आदतों एवं हरकतों को सहती है। अंततोगत्वा वह बटू पर जरूरत से ज्यादा प्रतिबंध रखने लगी, पर जब कुम्हार मिट्टी के बर्तन को पका लेता है, तब उसकी शक्ल तबदील नहीं होती। बटू पक गया था।""और आज तो उसने कमाल ही कर दिया। भरे बाजार में मां को चांटा मार दिया, मैं सोच भी नहीं सकती।""ताल ! मां की थोड़ी-सी लापरवाही कितने भयानक परिणाम से टकरा देती है बच्चे को !""

मैंने उसे बताया कि रोशनी के जीवन में वस्तुतः कोई चार्म नहीं है। वह एक औरत के रूप में अभिशाप है, जो सबके अत्याचार सहती है।

भानुमति ने झल्लाकर कहा, 'वह इन खौफनाक बंधनों से मुक्त क्यों नहीं होती।'

मैंने कहा, 'इसलिए इस देश के स्त्री-पुरुष को एक भयानक रोग है कि स्त्री सीता की इमेज लेकर जीना चाहती है और पुरुष राम की ! यह पाखंड उसे खुले रूप में विद्रोह नहीं करने देता, नए मूल्य की लड़ाई लड़ने नहीं देता। यह रोग हृदय विदारक है।'

हम दोनों लौट आए ! दूसरे दिन मुझे भानुमति ने आकर बताया कि रोशनी ने आत्महत्या कर ली है। उसकी बेटी पिंकी का कहना है कि मेले से लौटने के बाद उसने बंटू की खूब पिटाई की। रुई की तरह उसे धुन डाला"" पर बटू चुप रहने की बजाय उलजलूल गालियां बकता रहा और अंत में वह बेहोश हो गया।

उसकी खबर जब उसके सास-ससुर को लगी तो वे भागते हुए आये। उसके

गूंगे-बहरे पति को अपने बेटे के बारे में कुछ भी पता नहीं था, इसलि-
रोशनी को कसूरवार समझकर उसे कसाई की तरह पीट दि-
सी हो गई ! किसी ने बताया कि मेरी मां को
लग रहा था ।... उसके दादा-दादी मौजी

रात को रोशनी ने मुंह मार

उसने एक पुर्जा लिखा था — मरने से पू

भानुमति ने मुझे पुर्जा दिखाया ।
जोर औरत क्यों जीती है ? उसको जीने
न उसका बाप अपना है, न पति अपना और
वह क्यों नहीं मार सकती ?... कैद रूपी घर को
वह स्त्री अपने को तोड़ कर मिटा सकती है ।...
अपने कंधों पर ढो रही हूं । आज उस लाश को उता-
मुझ में स्वतन्त्र रहकर जीने की क्षमता नहीं है, मैं सती
जीती रही हूं, शायद इसे ही सामाजिक दबाव एवं भय कह-

भानुमति ने मेरी ओर सवाल भरी निगाह से देखा ।
मौतों ने परोक्ष रूप से एक जंग छेड़ दी है, आज नहीं तो कल,
सामने जरूर लड़ा जाएगा ! मैं आशावान हूं ।

पर भानुमति बड़ी देर तक आंखें मूंदे रही । कदाचित् वह
कि अंधेरों से घिरी उसकी रोशनी कब खुले में आएगी ।

सदा ऐसा ही. . .

अपने नगर में उसने उसे एक बार फिर देखा। हालांकि वह उससे काफी दूर था, फिर भी वह अत्यन्त ही भयभीत हो गयी। वह सहसा अपराधी मनोवृत्ति से घिर गयी। वह तुरन्त पीछे घूम कर खड़ी हो गयी—और उसने चन्द ही पलों में अपने को अत्यन्त ही अशक्त महसूस किया। साथ ही उसे लगा की वह पसीने से लथपथ हो रही है क्योंकि पसीने की दो-चार लकीरें उसे अपने ब्लाउज के भीतर रेंगती हुई सी लगी। उसने आहिस्ता-आहिस्ता नजर घुमायी। वह जा चुका था। वह थोड़ी निर्भीक हुई। उसने अपनी भीतरी घुटन को मिटाने के लिए दो-चार लम्बे-लम्बे श्वांस लिये। फिर वह जल्दी-जल्दी मार्केटिंग करने लगी उसने तुरन्त अपने हाथों के थैले को बोझिल बनाया। फिर उसने चोर की तरह इधर-उधर देखा पर वह अपने को उससे मुक्त नहीं कर पायी।

वह चली जा रही थी। रास्ते की भीड़ के स्पर्श से वह चौंक जाती थी। उसे भ्रम होता था कि वह पीछे से उसके कन्धे पर बड़ी नाटकीयता से हाथ रख कर अभी कहेगा, 'अरे''' तुम ? तुम तो देखकर भी अनदेखा कर रही हो ?" फिर सहसा उसके स्वर में व्यंग उभरेगा—वक्त की बात है, वर्ना तुम मुझे न पहचानो, 'यह भूतो न भविष्यति।'

इस विचार मात्र से वह सिहर-सी गयी। उसके कदमों की गति तेज हो गयी। उसने आन्तरिक घबराहट से चारो ओर घूम कर देखा। वह कहीं नहीं था। उसकी इच्छा हुई कि वह किसी अच्छे होटल में बैठकर एक कोल्ड-ड्रिंक पी ले। हालांकि उसे जरा भी प्यास नहीं थी। दरअसल इस इच्छा के पीछे उसका अपने को सड़क पर असुरक्षित समझना था। वह चाहती थी कि किसी केबिन में घुस कर बैठ जाय या कोई ऐसी परिस्थिति बन जाय कि वह घर हो नहीं जाय। 'क्यों न वह अपने पति को लेकर नाइट शो में चली जाय।' उसके पति की ड्यूटी रात में आठ बजे खत्म होती है ? सोचते-सोचते वह एक होटल के केबिन में घुस गयी। उसे केबिन पेराव-सा लगा। महसूस किया ठंडा पीने का निर्णय उसने व्यर्थ ही कर लिया। अब उसे चाय पीने की इच्छा हुई। चाय से ताजगी आयेगी। उसने चाय का आर्डर दिया।

चाय का पहला घूंट लेते ही उसे फिर वह याद आ गया कुछ पलों के लिए उसकी विस्मृति उसे बड़ी सुखद लगी थी। अब'''? उसे अपने चारों ओर का घुटा-घुटा बन्द वातावरण मिटता हुआ लगा। एकाएक उसे ख्याल आया कि

वह यहां न आ जाय ? यदि वह यहां आ गया तो ·· ? इस प्रश्न से वह संत्रस्त हो उठी। उसने तुरन्त तय किया कि यह एकांत ज्यादा खतरनाक है। बस ? उसने शीघ्रता स चाय खत्म की और भीड़ में सम्मिलित हो गयी।

भीड़। रंग-बिरंगी भीड़। उस भीड़ में वह बार-बार भ्रमित हो उठती थी कि वह आ रहा है, क्योंकि भीड़ में चलता हुआ हर आदमी उसे वही लग रहा था।

वह एक कोने में खड़ी हो गयी। उसकी सहेली ने बड़ी आत्मीयता से उसका नाम लिया। उसका चेहरा मुस्कानों में डूबा हुआ था।

वह बोली, 'तुम कहां एकाएक गायब हो जाती हो ? इधर तो तुम मेरे घर की ओर ही आयी नहीं।'

'यूं ही ? कुछ अधिक व्यस्त थी। यह सर्विस और गृहस्थी साथ-साथ नहीं चल सकती।'

'क्यों नहीं चल सकती ? मैं भी तो सर्विस करती हूं, मेरे तो बच्चे भी हैं।'

'पता नहीं, तुम कैसे एडजस्ट कर लेती हो। पर भई मैं बहुत परेशान रहती हूं। अच्छा मैं चलूं। देर हो रही है।'

उसकी सहेली ने उसे तेज दृष्टि से घूरा, फिर बोली, 'तुम बड़ी उखड़ी-उखड़ी लग रही हो ? क्या बात है ? सब ठीक ठाक तो है ?' वह उसकी तीखी नजर को नहीं सह पायी। बोली, 'जी-जी। मैं एकदम ठीक हूं।' उसने अपने को काफी संयत किया। फिर एक अजीब ढंग से मुस्कराकर बोली, 'कभी कभी बहुत थक जाती हूं। जैसे अभी भी सिर दर्द है। शरीर से टूटन। थका-थका मन।'

सहेली ने उससे विदा लेते हुए कहा, 'अरे कुल दो तो प्राणी हो। मियां और बीवी। मस्ती मारा करो न ? अच्छा मैं चली। घर की ओर कभी आना।'

उसकी सहेली चली गयी। हठात् फिर उसे वह दिखाई दिया। पल भर के लिए वह एकदम घबरा गयी और उसके पांव कमजोर हो उठे। भरे-बाजार से भाग जाना चाहिए। पर उसके पास तो मेरे घर का पता भी है। फिर—? वह खम्भे की तरह खड़ी रही। बाद में वह धीरे-धीरे चल पड़ी। एक संकरी गली से दूसरी संकरी गली में। उसने निश्चय कर लिया था कि वह मेन रोड से नहीं जायेगी। छोटी गली के ऊंचे मकान उसे सुरक्षा देते हुए लगे। वह गलियां पार करके अपने घर की ओर बढ़ रही थी। उसका घर बन्द गली में था। बन्द गली का अकेला मकान। वह अपनी बन्द गली में घुमी। उसे वह अपने घर के आगे वह चहल कदमी करता हुआ मिला। वह एक पल ठिठक गयी।

वह उथल-पुथल से घिर गयी। क्रोध, आवेश और पीड़ा। अपने को सम्हा

बनाकर वह आगे बढ़ी और उसने उस पर आक्रमण कर दिया, 'तुम-तुम यहां क्यों आये हो ?' वह उसे प्रश्न भरी दृष्टि से केवल देखता रहा।

'तुम यहां क्यों आये ? जानते नहीं इसका परिणाम कितना भयानक हो सकता है। मैं कहती हूं तुम यहां से इसी समय दफा हो जाओ। जाओ न ?' वह पुनः लगभग चीख पड़ी। वह एक शब्द भी नहीं बोला।

वह न जाने क्या-क्या अनर्गल उगलती रही, पर वह एक यांत्रिक व्यक्ति सा घूरता हुआ एक अर्थ भरी मुस्कान बिखेरता रहा चुपचाप। निस्पन्द अचल।

पीछे वाले मकान की खिड़की खुली। उसमें एक आकृति फ्रेम की तरह जड़ी हुई लगी। फिर उसे आकृति की नजर अपनी ओर झपटती हुई लगी।

उसने बढ़कर कहा, 'भीतर चलो, लोगों के सामने तमाशा बनने की कोई जरूरत नहीं। मेरी भी यहां इज्जत है।'

वे दोनों मकान में आ गए। ताला खोलने के पहले वह फिर घबरा गई थी। उसे लगा कि आंखें मूंद कर वह जिस ताले को खोल लेती है, आज वह प्रयास के बाद भी नहीं खुल पा रहा है। आखिर उसने चाबी को पहचाना। ताला खोला।

मकान के भीतर घुसते ही उसने वही प्रश्न किया, 'तुम यहां क्यों आये ? सोचते क्यों नहीं कि मैं अब शांति से जीना चाहती हूं। सब कुछ भूल जाना चाहती हूं। इस एक वर्ष में मैंने अपने को काफी बदला है।'

वह लम्बी सांस लेकर बैठ गया। उसकी आंखों में कुछ दहकने लगा था। पलकें स्थिर थीं। होंठों पर एक हंसती हुई अनजानी मुस्की परत जमी थी। वह दपदपा रही थी।

'तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। जरा सोचो तो······ऐसा करके तुम्हें क्या मिलेगा ?' वह भी उसके सामने वाली चेयर पर बैठ गई। एक पल-पलकें मूंदकर फिर बोली, 'माना कि मैंने तुमसे प्रेम किया था, मैंने तुमसे अनेक वादे किये थे और तुम्हें वचन भी दिये थे। मैं उन क्षणों को कभी नहीं भूल सकती हूं। वे प्रेमिल और उत्तेजित पल।'

उसे लगा कि उसके बदन में उष्मा पैदा हो गई है और दो कमनीय बांहें उसके चारों ओर लिपटने लगी हैं। आंच से दहकती दो बांहें।

वह फिर बोली। कुछ विद्रोह भरे स्वर में बोली, 'यह भी सही है कि मैंने तुमसे सच्चा और सही प्रेम करने की घोषणा की थी। मैंने तुम्हें यह भी बताया था कि मैं अपने पति से वस्तुतः एकदम ऊब चुकी हूं। और जो कुछ भी आदर्श और नैतिकता के लिपटे शब्दों का प्रयोग करती हूं, वह महज एक ढोंग है, ढोंग है—डियर आई लव यू। आई लव यू—। —यह सब मैंने ही कहा था।'

पोस्टकार्ड

सड़क का यह हिस्सा गहरे सन्नाटे और उदासी में डूब गया जो इस समय कई विभिन्न आवाजों के कोलाहल में डूबा रहता था। यह अनाम सड़क गुण्डों की वजह से बदनाम थी और कोई भी भला आदमी सांझ के धुएं लिपटे मटमैले अंधेरे के उतरते ही उधर से नहीं गुजरता था और यह सुनसान सड़क नगर के नृशंस गुण्डे मद्दी के चेले-चांटियों से भर जाती थी। पर आज यहां सन्नाटा है, कोहरे से संतप्त सन्नाटा।

अंधेरे के साथ कोहरा भी सब जगह रेंगता गया। सड़क के दोनों ओर के मकानों, उनकी खिड़कियों और बिजली के तारों और सड़क पर। तभी एक मकान की खिड़की खुली। बदहवास-सा चौकोर रोशनी का वृत्त झपटकर सड़क पर पसर गया। कोहरा साफ दिखायी देने लगा और कोहरे की परत को चीरता हुआ खून! खिड़की में से ओंरसुवय से पुता एक औरत का चेहरा झांका। उसने देखने की चेष्टा की। उसी क्षण श्मशानी मौन को तोड़ा—सिपाही के नालदार जूतों की खट-खट और थरमराहट ने। उसे देखते ही वह औरत घबरा गयी और उसकी घबराहट ने खिडकी से कूदकर लम्बे-लम्बे सोये तारों पर से होती हुई खम्भों के सहारे जमीन पर उतरकर बीड़ी सुलगाते हुए सिपाही के सारे चेहरे को अपने में हड़प लिया।

सिपाही में ऊब-जनित जड़ता आ गयी। यह खूनियों की सड़क, एक और भयानक ठंड!… काश उसे कोई दूसरी नौकरी मिल जाती। पर अनपढ़ लोगों को कहां अच्छी नौकरी मिलती है? वह तो अब भी अंगूठा लगाकर तनखा लेता है। उसकी बीड़ी बुझ गयी थी अतः वह उसे जलाने लगा। बीबी की आवाज के साथ उसका ध्यान चीलों के घोंसलों की ओर गया। दुर्ज के नीचे था घोंसला। उसे अपनी पत्नी की याद हो आयी। तीन बच्चों की मां उसकी अपनी पत्नी। उसने अब भी ठंड को मारने की गर्माहट है।…वह बीड़ी जोर-जोर से कश खींच रहा था और उसे थोड़ी गर्माहट महसूस हो रही थी ? पत्नी उसके पास हो।

शायद वह इस तरह सोचते-सोचते ऊब गया था। इसलिए उसने निस्तब्ध मौन पर पांव पटका, मौन चीख उठा।… एक भयावह-सी गूंज हुई। फि

ल्दी बीड़ी पीकर सड़क पर चक्कर काटने लगा, उस सड़क पर जो
ा टूट गयी थी। चूंकि यह सड़क, एक पीड़ित सड़क थी, जहां प्राये
कोई हत्या होती थी, इसलिए इसके जख्मों पर मरहम पट्टी नहीं की
ः धब्बों को नहीं मिटाया गया।

तेज हवा तीर-सी चली। प्रोवर कोट में भी सिपाही कांप गया।
नक ठंड। वह दुबक कर एक कोने में चौकोनुमा पत्थर पर बैठ
ः का अग्रभाग उस, अंधेरे में उसके अस्तित्व की रक्षा कर रहा था।
सोचा कि कहीं मट्टी अचानक आ धमके तो? उस निर्दयी ने एक
ने पहले ही मार डाला है!""और एक इंस्पेक्टर का एक हाथ काट
ह घबरा गया और उसे अंधेरा कपाने लगा। उसने अपनी बंदूक
र भी भय से मुक्त नहीं हो सका। उसने अपनी बीड़ी को बुझा दिया,
ा दिया कि कहीं मट्टी बीड़ी के उजाले को देखकर यकायक हमला न
ह अपने को नितान्त असुरक्षित समझने लगा और वह अपनी ड्यूटी
ं की सोचने लगा।

ं हुआ अंधेरा सड़क की बायीं ओर बने मकानों के अगले भागों को
ढे की ओर उतर गया। और चांद के उजाले ने उसे थोड़ा साहस
नने सोचा, 'अब मैं कम-से-कम किसी को थोड़ी दूर से आता हुआ तो
।'

जल्दी-जल्दी उसके भय को कम करने के लिए ऊपर चढ़ रहा था।
देखने लगा। देखते-देखते ही उसकी नजर उस खून पर पसर गयी
इस बेचारी सड़क पर फैला था।

की घरघराहट हुई। वह मुस्तैदी से पहरा लगाने लगा। जीप पुलिस
अपनी ड्यूटी पर सजगता से खड़े सिपाही को देखकर रुकी। सिपाही
कर सैल्यूट मारा। डी.एस.पी. ने पूछा, मट्टी तो नहीं आया?'
।'

का कोई आदमी?'

नहीं साहब।'

चल पड़ी। चंद ही मिनटों में जीप की घरघराहट शून्यता में विलीन

अब आकाश के बीचोबीच था। जख्मों से भरी सड़क साफ नजर आ
ः उतने ही साफ नजर आ रहे थे—खून के धब्बे।
फिर जरा तेज हुई। सिपाही के मुंह से सीत्कार निकल गयी। उसने
कोट के कालर को ऊंचा किया। कानों को बन्द किया।

""वह काँप रही थी। उसकी आँखों की दहक और सहक और स्पष्ट हो गयी थी। वह शांत और स्थिर बैठा था। दरअसल उसकी अचलता अधिक जड़ता में जम गई थी। उसके अंगों का पथरीलापन बढ़ गया था।

उसने अपने शरीर को इस तरह मचमचाया, मानो वह किसी बाहों के घेरे में मचल रही हो। फिर वह विघलित स्वर में बोली, 'वह मन की अजीब स्थिति थी। शायद मेरे भीतर एक भावुक और प्यासी औरत वर्षों से कसमसा रही थी। मैं प्यार की भूखी थी। मुझे पति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के प्रेम की तीव्र लालसा थी। यह भी संभव है कि मेरे अन्तर के कोने में कोई दूसरी स्त्री छुपी हुई हो जो तुम्हारे कारण प्रकट हो गई। नंगी हो गई लेकिन मैं सच कहती हूं कि मुझे वासना से घृणा है। वासना के नाम से मुझमें दहशत जाग जाती है और तुम ऐसे हो कि बिना वासना के रह ही नहीं सकते। तुम्हे तो हर समय शरीर चाहिए। सचमुच इस दृष्टि से तुम घृणित हो। तुम से और तुम्हारी उपस्थिति से मुझे डर लगने लगता है। मैं सच कहती हूं कि मैंने तुमसे संबंध जोड़कर गलत कदम उठाया था।"" मैं झूठ नहीं बोलती। तुमसे एकबार मिलने के बाद मुझ में अजीब-सा कुछ कुलबुलाता रहता है। लगता है कि शरीर में कुछ नये कीड़े-मकोड़े जन्म आए हैं। मैं अपवित्रता के घेरों में बंद हो गई हूं। दागों से घिर गई हूं। पर तुम हो कि मुझ पर जरा भी दया नहीं करते ?'

वह उठ गया। उसने अंगड़ाई ली। फिर उस मर्द ने अपनी बाहें उसकी ओर बढ़ा दी।

वह औरत तीव्र विरोध के साथ बोली, 'यह अन्याय है। मैं ऐसा कदापि नहीं होने दूंगी। देखो, अच्छा नहीं रहेगा। ओह ! मैं क्यों कीचड़ में पड़ी। यह प्रेम सुख का जगल नहीं, पीड़ा का दलदल है।""तुम मुझे अधिक तंग करोगे तो मैं एक दिन अपने पति को सब कुछ बता दूंगी और एकदम निडर हो जाऊंगी। तुम्हें कसम खाकर कहती हूं कि मरने के पहले अपने पति से अपने संबंधों के बारे में सब कुछ अवश्य बताऊंगी""उसके प्रति छल करके मैंने अच्छा नहीं किया' मैं कितनी पापिन हूं, नीच हूं"" अरे तुम क्या कर रहे हो !'

उसने उसे अपने हाथों में उठा लिया। वह छटपटाने लगी। उसकी बाहों को उसने हल्के से काट लिया। पर वह मर्द उस औरत को अपनी बलिष्ठ बाहों मे उठाकर पलग के पास लाया धीरे-धीरे इतने धीरे की आवाज किवाड़ों को न लांघे वैसे वह चीख रही थी, 'तुम प्रेम के नाम पर कलंक हो, वासना के कीड़े हो।'

पर वह पुरुष महसूस कर रहा था कि उस स्त्री के गोरे चेहरे पर काले सांप रेंग रहे हैं। उसके होंठ सूख गये हैं और उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में एक उत्तेजक आमंत्रण है, उसके विरोधी शब्दों में सकसाने की चेष्टा है। अभी उसे

ठण्डी नदी की तरह जमना चाहिए या पर वह तो अंगारों को अपने अंगों में दहका रही है। उसे लगा कि उसके जिस्म की मांसलता सदा की तरह छटपटा रही है। सारे शब्द हरकतें और अवरोध पुनरावृत्तियों की तरह लग रहे हैं। रूटीन। बिल्कुल रूटीन। सदा की तरह।

'नहीं-नहीं।' वह घुटी-घुटी बोली। उसने हाँ-हाँ सुना फिर वह उस पर झुकता गया और दबाव देता गया। वह पल-पल अपने जिस्म को मरोड़ती गई। शरीर को छुपाती रही। पांवों को पटकती रही। पर बाद में वह महसूस करता है कि उस कमरे की छत नीचे झुक आई है और वे और धंस गये हैं।

सांसों के तीव्र आन्दोलन के साथ नीचे बहुत नीचे गहरी अंधेरी गुफाओं में।

क्षण उदास-उदास से सरके। वह शांत और निश्चल खड़ी थी। वह उसके पास गया। बोला, 'अच्छा डार्लिंग चलता हूं। कहीं तुम्हारे वह न आ जायें? अरी, तुम नाराज मत हुआ करो। मैं तुम्हें हृदय से प्रेम करता हू और करता रहूँगा। इन पलों को तुरन्त भूल जाओ। याद रखो अपने प्रेम को। फिर प्रेम-पूर्वक मिलेंगे। अच्छा बाई-बाई। गुडलक।'

और उसके हाथ अनायास उठ गये। जब वह गली के पार हुआ तब उसने मुड़कर देखा कि वह दरवाजे के बीच खड़ी थी। क्रोध, घृणा, ग्लानि की मिली-जुली भावनाओं से भरी-भरी! उसकी पीठ में वह छुरा भोंकना चाहती थी, भोंका भी पर केवल सोच में! फिर वह अपने को अपराधिनी समझ बैठी कि कहीं उसकी ना-ना में कोई स्वीकृति न हो?

कसमकस के बाद उसने तय किया कि वह अपने पति को सब कुछ बता देगी। फिर वह सामान्य होकर पति का इन्तजार करने लगी।

□

पोस्टकार्ड

सड़क का यह हिस्सा गहरे सन्नाटे और उदासी में डूब गया जो इस समय कई विभिन्न आवाजों के कोलाहल में डूबा रहता था। यह अनाम सड़क गुण्डों की वजह से बदनाम थी और कोई भी भला आदमी सांझ के धुएं लिपटे मटमैले अंधेरे के उतरते ही उधर से नहीं गुजरता था और यह सुनसान सड़क नगर के नृशस गुण्डे मद्दी के चेले-चांटियों से भर जाती थी। पर आज यहां सन्नाटा है, कोहरे से सतप्त सन्नाटा।

अंधेरे के साथ कोहरा भी सब जगह रेंगता गया। सड़क के दोनों ओर के मकानों, उनकी खिड़कियों और बिजली के तारों और सड़क पर। तभी एक मकान की खिड़की खुली। बदहवास-सा चौकोर रोशनी का वृत्त झपटकर सड़क पर पसर गया। कोहरा साफ दिखायी देने लगा और कोहरे की परत को चीरता हुआ खून! खिड़की में से ग्रौरसुक्य से पुता एक औरत का चेहरा झांका। उसने देखने की चेष्टा की। उसी क्षण श्मशानी मौन को तोड़ा—सिपाही के नालदार जूतों की खट-खट और चरमराहट ने। उसे देखते ही वह औरत घबरा गयी और उसकी घबराहट ने खिड़की से कूदकर लम्बे-लम्बे सोये तारों पर से होती हुई खम्भों के सहारे जमीन पर उतरकर बीड़ी सुलगाते हुए सिपाही के सारे चेहरे को अपने में हड़प लिया।

सिपाही में ऊब-जनित जड़ता आ गयी। यह खूनियों की सड़क, एकांत और भयानक ठंड! ... काश उसे कोई दूसरी नौकरी मिल जाती। पर अनपढ़ लोगों को कहां अच्छी नौकरी मिलती है? वह तो अब भी अंगूठा लगाकर तनखा लेता है। उसकी बीड़ी बुझ गयी थी अतः वह उसे जलाने लगा। चीं-चीं की आवाज के साथ उसका ध्यान चीलों के घोंसलों की ओर गया। छज्जे के नीचे था घोंसला। उसे अपनी पत्नी की याद हो आयी। तीन बच्चों की मां उसकी अपनी पत्नी। उसमें अब भी ठंड को मारने की गर्माहट है।...वह बीड़ी का जोर-जोर से कश खींच रहा था और उसे थोड़ी गर्माहट महसूस हो रही थी जैसे उसकी पत्नी उसके पास हो।

शायद वह इस तरह सोचते-सोचते ऊब गया था। इसलिए उसने निरुद्देश्य जमीन पर पांव पटका, मौन चीख उठा! ... एक भयावह-सी गूंज हुई। फिर

वह जल्दी-जल्दी बीड़ी पीकर सड़क पर चक्कर काटने लगा, उस सड़क पर जो कई जगहों से टूट गयी थी। चूंकि यह सड़क, एक पीड़ित सड़क थी, जहां प्रायः हर दिन कोई न कोई हत्या होती थी, इसलिए इसके ज़ख्मों पर मरहम पट्टी नहीं की गयी, खून के धब्बों को नहीं मिटाया गया।

बड़ी तेज हवा तीर-सी चली। ओवर कोट में भी सिपाही कांप गया। कितनी भयानक ठंड। वह दुबक कर एक कोने में चौकोनुमा पत्थर पर बैठ गया। बीड़ी का अग्रभाग उस, अंधेरे में उसके अस्तित्व की रक्षा कर रहा था।

उसने सोचा कि कहीं वही अचानक आ धमके तो? उस निर्दयी ने एक पुलिसवाले को पहले ही मार डाला है!"""और एक इंस्पेक्टर का एक हाथ काट दिया है। वह घबरा गया और उसे अंधेरा कपाने लगा। उसने अपनी बंदूक सम्भाली फिर भी भय से मुक्त नहीं हो सका। उसने अपनी बीड़ी को बुझा दिया, इसलिए बुझा दिया कि कहीं वही बीड़ी के उजाले को देखकर यकायक हमला न कर दे।""वह अपने को नितान्त असुरक्षित समझने लगा और वह अपनी ड्यूटी से भाग जाने की सोचने लगा।

अच्छा हुआ अंधेरा सड़क की बायीं ओर बने मकानों के अगले भागों को दबोचता पीछे की ओर उतर गया। और चांद के उजाले ने उसे थोड़ा साहस बंधाया। उसने सोचा, 'अब मैं कम-से-कम किसी को थोड़ी दूर से आता हुआ तो देख सकूंगा।'

चांद जल्दी-जल्दी उसके भय को कम करने के लिए ऊपर चढ़ रहा था। वह चांद को देखने लगा। देखते-देखते ही उसकी नजर उस खून पर पसर गयी जो आज ही इस बेचारी सड़क पर फैला था।

जीप की घरघराहट हुई। वह मुस्तैदी से पहरा लगाने लगा। जीप पुलिस की ही थी। अपनी ड्यूटी पर सजगता से खड़े सिपाही को देखकर रुकी। सिपाही ने सजग होकर सैल्यूट मारा। डी.एस.पी. ने पूछा, 'वही तो नहीं आया?'

'नहीं।'

'वही या कोई आदमी?'

'जी नहीं साहब।'

जीप चल पड़ी। चंद ही मिनटों में जीप की घरघराहट शून्यता में विलीन हो गयी।

चांद अब आकाश के बीचोबीच था। जख्मों से भरी सड़क साफ नजर आ रही थी और उतने ही साफ नजर आ रहे थे—खून के धब्बे।

हवा फिर जरा तेज हुई। सिपाही के मुंह से सीत्कार निकल गयी। उसने अपने ओवरकोट के कालर को ऊंचा किया। कानों को बन्द किया।

तभी उसे किसी के कदमों की आहट का भान हुआ। एक व्यक्ति को अपनी ओर आते देखकर वह सहसा घबरा गया। क्या खूंखार मद्दी आ रहा है। उसने अपनी बंदूक संभाली, 'साले को गोली से भून दूंगा। हत्यारा कहीं का! कितने ही सीधे लोगों की जान ले लेता है! आज भी एक जवान गांव वाले को मार डाला। कसाई कहीं का।

हालांकि वह अपने को अशक्त महसूस कर रहा था, फिर भी उसने 'कड़कने' जैसी आवाज में पूछा 'कौन इधर आ रहा है?' और वह अंधेरे में छिप गया। उसे अचानक गर्माहट-सी महसूस हुई।

'मैं, सरकार, मैं फुटपाथी…।'

उसने एक भद्दी गाली देकर कहा, 'उम्र कैद जाना है, साले, जो इधर आ मरा है। दुम दबाकर भाग जा …जल्दी से भाग वर्ना मैं…'

जो आया था, वह चला गया। उसने मन-ही-मन गहरा संतोष पाया। 'चलो अच्छा हुआ कि भाग गया। वर्ना हमारे अफसर तो…?' उसने अरुचि से अपने होंठ सिकोड़े, घृणा से थूककर अपने आपसे कहा, 'वर्ना अफसर मद्दी की जगह किसी चद्दी, फद्दी और लद्दी को पकड़कर अपनी कर्त्तव्यपरायणता का इनाम पाते। बाद में टाय टांय फिस…'

वह मूक हंसी हंस पड़ा। सड़क पर चांदनी में नहाया मौन सो गया। सिपाही बीड़ी सुलगाकर पीने लगा। ठंड चांदनी का मादक स्पर्श पाकर सुखीली हो गयी। खून के धब्बे अधिक साफ हो गये। सिपाही उकता कर पुनः चौकीनुमा पत्थर पर आकर बैठ गया।

'कितना भयानक आदमी है यह मद्दी? अगले जन्म में जरूर कोई आदमखोर रहा होगा! किसी की परवाह ही नहीं करता। खुले आम जुआ खेलता है, काला-बाजार करता है, शराब-अफीम बेचता है, हत्याएं कराता है। यही सड़क, यही सन्नाटा, यहीं उसकी चंडाल चौकड़ी जमती है। कोई पुलिसवाला इधर नहीं आता। और आये भी क्यों? थोड़े से रुपयों के लिए मरा तो नहीं जाता।……मुझे ही देखो न, यहां कई बार पहरा लगाता हूं और मद्दी मुझे एक कीड़ा समझकर मेरे सामने जुआ खेलता रहता है।'

□ □ □

और आज……

दोपहर ढल रही थी। सूर्य सड़क के उस ओर जाने लगा था। मद्दी की चंडाल-चौकड़ी जमी थी।

जोर की हंसी!

'उस्ताद! इस शराब में पानी है।'

मद्दी जोर से हंसा। सोमा की पीठ पर धौल जमाता हुआ, सिगरेट का धुंआ छोड़कर बोला—'कहां से लाया है ? उसकी आंखों से प्रश्न निकल कर सोमा की नाक पर टंग गया।

'मोहन के यहां से।'

मद्दी जोरों से हंसा, 'ओ गये उसे तो हम ही शराब सप्लाई करते हैं। उसमें तो पानी रहता ही है।'

सब अवाक्।

'सोमा, दस रुपये की।' पठान ने कहा।

'आठ, नौ, दस !'

'रंग ! इक्का, बादशाह, बेगम।'

'आज पठान के सितारे बुलंदी पर हैं।'

सोमा एकदम निराश हो गया, कदाचित उसकी जेब खाली हो गयी।

मद्दी उनके नजदीक आया। लुंगी की गांठ को ठीक किया। चार मीनार और 'व्यभिचार' नामक पुस्तक को अपने पास तिसका कर बोला, 'हट साले ! उसने सोमा को हटाया, 'ताश के ये चिकने पत्ते भी अच्छे हाथों के आशिक होते हैं।'……'ये हाथ'…'।' उसने अपने हाथों को घूमकर हवा में उड़ाया। उसके गोरे-चिट्टे आकर्षक चेहरे पर गर्व भरी रेखाएं उभरी और वह एकाएक बोला, 'ये हाथ हजारों रुपयों का इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट कर चुके हैं।'…'बस मुझे ताश फेंटने दे।'

वह इत्मीनान से बैठकर पत्ते बांटने लगा ! फ्लश ! बोलो ! ब्लाइंड पाँच की'…। ब्लाइंड चालें बढ़ी। देखते-देखते वहां पर रुपये ही रुपये नजर आने लगे। 'शो !'—पठान दाढ़ी सहलाता हुआ बोला—'रंग !' पठान अब तुम्हारा लक नहीं चलेगा। दिल थाम ले।'… एक बेगम'… दूसरी बेगम'… तीसरी बे'…!' दंभ आकर मद्दी की खूंखार आंखों में बैठ गया। पठान की स्थिति ऐसी हो गयी जैसे उसे लकवा मार गया हो।

'बोतल खोल,' मद्दी ने कहा। सड़क ! 'वे' आठ-दस इन्सान। सारा नगर इनकी गुण्डागर्दी से थर्राता है।

उस्ताद ने कहा, 'आज मेरा सितारा सातवें आसमान पर है।'… मेरी शराब पकड़ी गयी, पर मैं बेदाग छूट गया। सिर्फ सौ रुपयों में काम पट गया।'… यह साला कानून और इंसाफ ? थू है इन पर'…'मद्दी शराब पीता गया और अपनी बहादुरी के कई किस्से सुनाता गया।

सांझ ! महानगर की मुंदी हुई सांझ आकर सब जगह बैठ गयी। किसी विज्ञापन कम्पनी के नियोनलाइट के शब्द जल-बुझ रहे थे। एक कोलाहल की

उस्ताद को धक्का दिया और कहा, 'नहीं मैं नहीं दूंगा, इसमें से एक भी नहीं ंगा। ये…'

फिर भी वह गांव वाला था। उस्ताद पर झपटा और उस्ताद ने अत्यन्त ीघ्रता से पठान से छुरा लेकर उसके पेट में घोंप दिया। आंतड़ियां बाहर आ यीं। छोकरा बेहोश हो गया। खून बिखर गया… कई रुपये थे। सब भाग गये। उसकी जेब में क्या था, उसे भी ले गये। खून… खून… खून। पुलिस आयी। प्रेस फोटोग्राफर आये। जनता आयी।

एक भोले लड़के की हत्या!

जीप की फिर आवाज आयी। पुलिस वाला सजग हो गया। मन-ही-मन बोला, 'मुझे बंदूक तानकर खड़ा रहना चाहिए, यह मद्दी कभी भी हमला कर सकता है मुझ पर।' वह भय से घिर गया। यह कोई और ही जीप थी जिसकी आवाज धीरे-धीरे शून्यता में खो गयी।

हवा एक बार रुक कर फिर तेज हुई। सिपाही को लगा कि किसी ने उसे तीर मारा है—सीने में। उसने बीड़ी निकाली। आंतरिक भय से वह कई बार चाहकर भी बीड़ी नहीं सुलगा सका। फिर माचिस के उजाले में खून के धब्बों के चमकते ही वह आतंकित हो गया, 'मेरा भी खून इसी तरह बह सकता है!' और उसके शरीर में प्रसन्नता भर गयी।……'थू‌ह मद्दी……यह साला मद्दी…… राक्षस …… आदमखोर ?…' और उसने घृणा से थूक दिया। सड़क, बेचारी उन खून के धब्बों की तरह उस घृणा भरे थूक को सह गयी।…… सिपाही एक हाथ में बीड़ी और दूसरे हाथ में बंदूक लिये पहरा लगाने लगा। उसके जूतों की खटखट सन्नाटे में गूंज रही थी।…… गूंज रहे सन्नाटे में तीसरी रात इसी जगह-पहरा देते हुए उसी सिपाही ने भय से मुक्त होते हुए सोचा, 'मद्दी ने आत्महत्या करली!…… खुद को मौत के हवाले कर दिया। साला अजीब आदमी था! शायद उसको आखिर उसके पाप ने ही मार डाला!…' जिस लड़के को मारा था, उसकी जेब में नोटों की जगह पोस्टकार्ड निकले……एक बड़े भाई के लिखे छोटे भाई को खत…… और खतों को भेजने वाले का नाम था मोहन……। पुलिस का कहना है कि यह लड़का उसी गांव का रहने वाला था जिस गांव का मद्दी।…… मुझे क्या लेना-देना मद्दी और उस छोकरे से? हूर्रे! अब मैं यहां मस्ती से पहरा दूंगा क्योंकि आदमखोर मद्दी मर गया।……वह कुछ देर तक खामोश सा बैठा रहा फिर घृणा से थूककर अचानक बोला, 'अच्छा हुआ कि वह हरामी, नीच हत्यारा मर गया। यदि नोट होते तो वह आत्महत्या नहीं करता, पर इन पोस्ट कार्डों ने उसकी हत्या कर दी।' संभव हो कि इन पोस्ट कार्डों में उसकी मृत्यु का रहस्य हो, क्योंकि मद्दी के दोस्तों का कहना है कि इसके भी एक भाई था। हो तो साला हो, मुझे क्या लेना-देना? और पुलिस वाला सड़क पर जोर-जोर से चक्कर निकालने लगा।

वह बहुत खुश था। बेहद खुश था।

☐

मकान

कुछ भी हो, मिस वनिता के यहां आने-जाने वाली महिलाओं का तांता-सा लगा रहता है। सुबह हो या शाम, वह जैसे ही स्कूल से लौटती है, उसके यहां उसकी सहेलियों का आवागमन शुरू हो जाता है और यह सिलसिला रात के आठ-नौ बजे तक चलता रहता है। इसके पश्चात् यह अकेला मकान सन्नाटे में डूब जाता है व अंधेरी रात में यह भयानक सा लगता है। अंधेरा और उसमें कांपे पत्ते सा यह मकान। उसमें रहती है मिस वनिता और उसकी बूढ़ी नौकरानी।

शहर जहां खत्म होता है, वहां यह मकान है। अभी-अभी नये प्लाट बिके थे। पर वनिता ने तुरन्त अपना मकान बना लिया था और तब गृहप्रवेश पर भव्य आयोजन किया था, जिसमें उसके 'इन्स्पेक्टर ऑफ स्कूल्स' भी आये थे।

नये घर के प्रति उसके मन में आरम्भ में तीव्र उत्साह रहा। पर बाद में उसे यह महसूस होने लगा कि इसमें और किराये के मकान में जरा भी अन्तर नहीं है। वही निर्जीव दीवारें, खुली खिड़कियां और खामोश छतें। उसे कभी-कभी यह विचार भी कचोटता था कि उसने व्यर्थ ही सरकारी कर्ज लेकर यह मकान बनाया। और तो और, इस मकान की जब से नींव खुदी तब से उसके और उसके परिवार के बीच वैमनस्य की विषाक्त लहरें उत्पन्न हो गयी हैं जो क्षण-क्षण के अन्तर पश्चात् उसे उदासी की खामोश घाटियों में डुबो देती हैं।

तब उसकी मां ने उसे एक विस्तृत पत्र लिखा था। उस पत्र में उसने अपनी साहसी और कर्त्तव्यनिष्ठ बेटी की खूब प्रशंसा की थी और बाद में विनम्र शब्दों में लिखा था कि उसके छोटे भाई के तीसरा बच्चा होने वाला है और उसका टिड्डीमार विभाग भी टूटने वाला है। सो, वह मकान के चक्कर में न पड़कर अधिक से अधिक रुपये भेजने की चेष्टा करे, ताकि समस्त घरेलू समस्याओं को सुलझाया जा सके। पर जब उसने मकान के बारे में अपना मत परिवर्तित नहीं किया तब उसकी मां ने उसके विरुद्ध बगावत का झंडा खड़ा कर दिया और वह उससे वैसा ही व्यवहार करने लगी जैसा अक्सर एक मां छोटे बेटे के बजाय बड़े बेटे के प्रति करती है। उसने लिखा था कि 'तुम जो अपने भाई-बहनों में सबसे बड़ी हो और भाई-बहन तुम्हें सदा अपने पिता की जगह मानते आये हैं, उनके दुःख-दर्दों को भूल कर तुम ऐसा सौतेला व्यवहार करोगी—मैं नहीं जानती थी। म मकान बनाने जा रही हो और यहां सारा का सारा परिवार रोजमर्रा की रूरतों के लिए मुंह जोहता फिरता है। मैं एक बार तुम्हें फिर कहती हूं कि

तुम मकान-वकान के झगड़े में मत पड़ो।' और अन्त में उसने अत्यन्त ही कटु होकर लिखा था कि 'पता नहीं तुम किसके लिए यह मकान बनाने जा रही हो। घर में एक बहन है जो तीन-चार वर्ष में विवाह के योग्य हो जायेगी। मैं समझती हूं कि तुम्हारे लिए यह कदम उठाना जिसमें कई हजारों की जमापूंजी खर्च हो जायेगी, न्यायसंगत नहीं है। फिर तुम्हारे कौन से बाल-बच्चे हैं?'

उस पत्र के इस अन्तिम वाक्य ने उसके मस्तिष्क में एक नये सत्य को जन्म दिया और उसे लगा कि वह जिन्हें आज तक अपनी सन्तान समझती आयी है, वह क्या उसकी अपनी सन्तान नहीं हैं? वह गम्भीर विचारों में डूब गयी और उसका मन इतना व्यथित हो गया कि वह फूट-फूट कर रो पड़ी। रोने से उसका जी हल्का हुआ तो वह बड़ी देर तक स्नान करती रही व साबुन के झागों से खेलती रही। उसने झागों के द्वारा एक बच्चे की तस्वीर बनाने की असफल चेष्टा की और वह मां के पत्र को दुबारा पढ़ने लगी—'तुम्हारे कौन से बाल-बच्चे हैं?' तब उसे वह मकान इतना निर्जीव लगा कि वह भयभीत हो गयी और उसने गुन-गुनाना शुरू कर दिया।

सुबह ही वह चाय पीकर चल पड़ी। नौकरानी ने पूछा, 'बीबी जी, आज इतनी जल्दी?' वनिता ने गम्भीर होकर उत्तर दिया, 'एक जरूरी काम से जा रही हूं।'

वह वहां से सीधी तांगे में बैठकर जनार्दन के घर आयी। जनार्दन उसे सुबह-सुबह अपने यहां देखकर फूल की तरह खिल उठा। उसकी आंखों में अजीब-सी चमक और जिज्ञासा दीप्त हो उठी। अपने को गम्भीर बनाता हुआ वह बोला, 'क्या बात है, आज.....?'

'कुछ नहीं.....।' उसके चेहरे पर संकोच का कोहरा-सा छा गया।

'कुछ जरूर है वनिता, वरना तुम इतनी सुबह कभी नहीं आतीं।'

उसने एक कुर्सी अपने पास खिसका ली। वनिता उस पर गम्भीर मुद्रा बनाकर बैठ गयी। उसका हाथ कुर्सी के हैंडिल पर बड़ी बेचैनी से चल रहा था। उसकी दोनों टांगें यंत्रवत् हिल रही थीं। उन दोनों के बीच कुछेक क्षण मुर्दा सन्नाटा पैदा हो गये थे। अचानक वनिता ने ही पूछा, 'जनार्दन! संसार में अपना कौन होता है?'

वह मुस्करा पड़ा। कुर्सी के हत्थे पर उंगलियों से हल्की-हल्की खट्खट् करता हुआ बोला, 'तुमने प्रश्न बड़ा ही दार्शनिक कर लिया है। जरा स्पष्ट रूप से बताओ तो उत्तर देने का प्रयत्न कर सकता हूं।'

'क्या मेरा अपने घर के प्रति किया हुआ त्याग निष्फल जायेगा?' और उसने मां का वह पत्र जनार्दन के सामने रख दिया। जनार्दन ने उस पत्र को बड़ी आतुरता से उठाया, फिर पढ़कर उसने लम्बी ठंडी-ठंडी सांसें लीं।

'क्या ख्याल है ?' वनिता ने भौहें तानकर पूछा ।

जनार्दन अनमने भाव से उठा । उसने खिड़की खोली । सामने आकाश साफ और नीला था—उजाले से नहाया-सा । वह चंद क्षण उसे निहारता रहा । बाद में कुर्सी पर पुनः बैठते हुए बोला, 'तुम्हारी मां को ऐसा नहीं लिखना चाहिये । इसमें गन्दे स्वार्थ की बू आती है । आखिर तुम्हें भी तो अपने जीवन में सिक्योरिटी चाहिए ही ना ! तुम्हारे अपने बाल-बच्चे नहीं हैं । फिर तुम्हारा बुढ़ापा ? तो यह खयाल है कि तुम्हें मकान बना ही लेना चाहिए ।'

'तुमको यह बात एकदम जंच गयी ना ?'

'हां, बिल्कुल ठीक । तुम्हारा अपना मकान होना चाहिये ।'

'फिर मैं मकान बनाती हूं ।'

'कह दिया ना, बना लो । भविष्य सुधर जायेगा ।'

'लेकिन एक शर्त पर !'

'वह कौन सी ?' वह चौंक पड़ा ।

'तुम्हें अपनी देख-रेख में, अपनी पसन्द का मकान बनवाना पड़ेगा,' उसके स्वर में बड़ी आत्मीयता थी । जनार्दन ने भी उसे भरपूर दृष्टि से देखा । वनिता की आंखों में लपटें थीं—प्यास और अतृप्तियों की अजीब लपटें । बस, उसने 'हां' भर ली ।

कॉलेज से लौटते हुए जनार्दन सीधा वनिता के पास आता । मकान के बने हुए हिस्सों का साथ-साथ अवलोकन होता; उन पर टीका टिप्पणी होती और फिर वे अधबनी दीवारों पर बैठकर मकान की सजावट पर भी चर्चा करते ।

मकान की ईंटों पर चूना लगाया जाने लगा ।

जनार्दन ने कहा, 'चूने की जगह सीमेंट होता तो और अच्छा होता । कुछ रुपये मैं दे दूंगा ?'

'तुम ?' उसकी आंखें स्थिर हो गयीं ।

'हां, मैं ! मैं कोई गैर थोड़े ही हूं ।'

उसने सहज स्वर में कहा, 'तुम हजार-दो हजार के लिए कभी चिंता न करना । तुम्हारे लिये क्या मैं इतना भी नहीं कर सकता ?'

पहली बार वनिता को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सच्चे अर्थ में उसका कोई अपना भी है । उसने आत्मीयतावश जनार्दन के हाथ को मजबूती से पकड़ लिया और कांपते हुए स्वर में कहा, 'तुम…!' वह आगे कुछ नहीं बोल पायी । उसका गला अवरुद्ध हो गया और वह बिना कुछ बोले ही चली आयी ।

मकान बन गया । गृहप्रवेश का दिन भी आ गया । दुल्हन सी बनी हुई

आदमी नहीं आया था। छोटी बहन सुनीता की एक दिन पहले चिट्ठी आयी थी। उसमें उसने अपनी विवशता बताते हुए लिखा था—'जीजी मेरी बहुत इच्छा है कि मैं तुम्हारा नया मकान देखने आऊं। पर यहां सारे घरवाले तुम्हारे खिलाफ हैं और न जाने वे तुम्हें किन-किन अपशब्दों से कोसते हैं। लेकिन मेरी अच्छी जीजी! मेरी शुभकामनाएं सदा तुम्हारे साथ हैं।''' और हां बुरा न मानो तो एक बात कहूं। मैं इस घर से ऊब गयी हूं। सभी तुम्हें सोने का अंडा देने वाली मुर्गी समझते हैं।'''अच्छा, एक बात तुम्हें मिलने पर बताऊंगी।'''' और मां का आया हुआ लिफाफा उसने आज खोला ही नहीं। वह जानती थी कि उसमें क्या लिखा होगा।

मेहमान चले गये। घर की बूढ़ी नौकरानी कमर को दाबती हुई सो गयी। वह उठी और सीधी छत पर चली आयी। दूधिया चांदनी में उसने दूर-दूर तक देखा-इक्के-दुक्के वृक्षों को गोद में लिए हुए गूंगा जंगल। उसने झुककर अपने मकान के अग्रभाग को देखा। लिखा था—'वनिता भवन'। उसने उंगली से उस नाम को काटा और उस पर लिखा—'वनिता-जनार्दन कॉटेज'। फिर वह अपनी इस हरकत पर खुद ही मुस्करा पड़ी। न उंगली से नाम काटा जा सकता है और न ही लिखा जा सकता है। किन्तु एक जलता और मर्मभरा प्रश्न उसके मस्तिष्क में कौंधा कि वह जनार्दन को इस मकान में सदा के लिए ला सकती है। वह उसे प्यार करता है। उसे हृदय से चाहता है। उसने उसके लिए क्या-क्या नहीं सहा? इस लोकचर्चा को भी वह पी गया कि वनिता का उसके साथ अनुचित सम्बन्ध है। तब उसके मानस पर अपने इस मकान को लेकर एक नया ही चित्र उभरा—वनिता दुल्हन बन गयी है। जनार्दन से उसका विवाह हो गया है। उसके बच्चे होते हैं। सात वर्षों में चार''''। वह बच्चों की देखभाल करते-करते थक जाती है, परेशान हो जाती है, ऊब जाती है। पर अब उसके मकान में वह निष्प्राणता नहीं रहती है जो इस वक्त मौजूद है। वनिता का हृदय खुशियों से भर जाता है। उसकी रग-रग में उत्साह और उमंग की लहरें दौड़ जाती हैं। लेकिन यह कल्पना बूढ़ी नौकरानी की आवाज पर टूट गयी और वह अपने कमरे में सोने आ गयी। सामने मां की चिट्ठी पड़ी थी। उस चिट्ठी में उसे बहुत ही भला-बुरा कहा गया था—'मैं जानती हूं''' यहां बैठी हुई सब जानती हूं कि तू उस प्रोफेसर के बच्चे से प्रेम करने लग गयी है। वह तेरे साथ हर घड़ी रहता है। लेकिन मैं जीते जी यह शादी नहीं होने दूंगी। वह कायस्थ है और हम ब्राह्मण। मैंने अपने जासूस लगा रखे हैं तुम्हारे पीछे। आगे कुछ ऐसी-वैसी बातें सुनी तो मेरे मकान से अपना सिर फोड़कर जान दे दूंगी। मैं तुझे ऐसी कमजोर नहीं समझती थी कि तू इस तरह हम सब लोगों से अपना मुंह फेर लेगी और

इस तरह हमें रुपया भेजना बन्द कर देगी । पता नहीं उस कायस्थ के बच्चे ने तुम्हें कैसे वरगला लिया है, राम ही जानें । पर मैं तुम्हारे मन की पूरी नहीं होने दूंगी ।'

वनिता ने उस खत की भी कोई परवाह नहीं की । वह सो गयी । सुबह उठी । चाह कर भी वह जनार्दन के पास नहीं जा सकी । उसने संदेश भिजवा दिया । संदेश पाते ही जनार्दन आ गया । आते ही उसने व्यग्रता से पूछा, 'क्या बात है ? सब कुशल तो है ना ?'

'आप घबराइए नहीं श्रीमान् जी,' उसने नितान्त नाटकीय स्वर में कहा, 'आप जरा इत्मीनान से विराजिए, फिर मैं आपको सभी कुछ बताये देती हूं,' उसने हाथ पकड़कर जनार्दन को बिठा दिया और खुद उठती हुई बोली, 'मैं जब तक चाय बनाकर लाती हूं तब तक आप इस खत को पढ़िए ।'

वह भीतर चली गयी । जनार्दन ने उस खत को पढ़ा । कुछ उत्तेजित भाव-लहरियां उसके चेहरे पर दौड़ पड़ीं । वह विचारों में खोया सा जड़वत् बैठा रहा सोचने लगा कि लोग अभी तक कितने आदिम अंधेरे में रह रहे हैं । जातीयता की बातचीत ? छिः! किन्तु उसे तुरन्त यह खयाल आया कि यह सब विरोध मूलभूत रूप से धन के लिए है । घरवाले सोचते हैं कि सोने की चिड़िया हाथ से निकली । और वह उसके घरवालों की इस कमीनी दुष्प्रवृत्ति पर झुंझला उठा ।

तभी वनिता चाय लेकर आयी । उसने चाय टेबल पर रखी और पूछ बैठी, 'क्या सोच रहे हो ? तुम तो एकदम गम्भीर हो गये ?'

'कुछ नहीं,' और वह चाय बनाने लगा ।

'अरे श्रीमान्जी ! चाय बनाना तो मेरा काम है ।' उसने जनार्दन का हाथ पकड़कर दूर कर दिया । जनार्दन ने देखा, प्रसन्नता के हजारों सूरज एक साथ वनिता के मुख पर चमक आये हैं ।

'चिट्ठी पढ़ ली.?'

'हां,'

'क्या सोचा ?' चाय का घूंट लिया वनिता ने ।

जनार्दन ने उसकी ओर देखा नहीं । उसने यन्त्रवत् अपनी जेब से एक पत्र निकाला और वनिता के सामने रख दिया ।

वनिता ने जल्दी-जल्दी पत्र को पढ़ा । उसका चेहरा स्याह हो गया और आंखों में सजलता चमक उठी ।

'तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया ना ?'

'लेकिन—'

'बात यह है वनिता कि हर इन्सान अपनी कुछ ऐसी मजबूरियों में बंधा हुआ होता है कि वह चाह कर भी अपनी इच्छा को पूरी नहीं कर सकता ।'

'पर तुम मुझे प्यार करते हो ! जानते हो कि अपने सभी परिचितों में यह चर्चा ...'

'लेकिन तुम्हारे घरवाले, मेरे घरवाले और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मां ने सगाई की तारीख भी लिख दी है।'

वनिता की आंखें भर आयीं। उसे लगा कि हम सब बहुत कमजोर हैं।

'मैं चाहता हूं कि हम दोनों को प्यार के लिए त्याग करना चाहिए। और फिर तुम मुझसे पांच वर्ष बड़ी हो उम्र में।'

'नहीं तो ?'

'तुम्हारी उम्र क्या है ?'

उसने सफेद झूठ बोला, 'बत्तीस।'

जनार्दन एकदम उठ गया। वह इस तरह खड़ा था जैसे फौजी अपने अफसर के सामने। और वह एकदम पलट कर चला गया। उसके जाते ही वनिता ने हाथ के प्याले को दीवार से टकराकर तोड़ दिया। प्याला कई छोटे-बड़े टुकड़ों में टूटकर बिखर गया। उसने शेष कॉकरी की ओर भी हिंसक दृष्टि से देखा, पर नुकसान के खयाल ने उसके विवेक को जगा दिया और वह आंगन में बावली-सी चक्कर लगाने लगी। उसे अपनी बेवकूफी पर बहुत गुस्सा आया। बड़ों ने ठीक ही कहा है कि औरत को अपनी असली उम्र कभी भी नहीं बतानी चाहिए। उसने एक दिन जनार्दन को यह बता दिया था कि उसकी उम्र 35 वर्ष की है, क्योंकि जनार्दन ने उसे अपनी उम्र 36 वर्ष की बतायी थी, जबकि उसकी वास्तविक उम्र 30 वर्ष की थी। तो फिर वह उसके पास क्यों आता था ? क्यों उसके हुक्म मानता था ? क्यों उसके लिए बड़ी लगन से मकान बनवाता था ? यह सब सोचते-सोचते वह थक गयी। उसके अंग-अंग में टूटन व्याप्त हो गयी। वह अपने बिस्तर पर निढाल-सी पड़ गयी। बिसूरती रही, सुबकती रही, करवटें बदलती रही। पुरुष को विपरीत संवेग के प्रति तीव्र सम्मोह होता है। सहवास-सुख भी प्रेम की एक तीव्र अलौकिक अनुभूति है और जनार्दन सिर्फ यही चाहता था। किन्तु उसकी मां उसे कैसे जीवित रहने देगी ? वह ताने दे देकर उसके हृदय को छलनी न कर देगी ! उसकी सहेलियां व्यंग्य से उसे परेशान कर देंगी। यदि अनीता ने पूछ लिया कि जनार्दन ने तुमसे विवाह क्यों नहीं किया, तो ?

जब उन्हें मालूम होगा कि वह उससे पांच वर्ष बड़ी है तब वे जरूर अट्टहास करेंगी और उसके भाग्य पर उन्हें अवश्य तरस आयेगा। उसने साड़ी बदली, मुंह धोया अपने नये मकान को उसने व्यथापूरित दृष्टि से देखा। दीवारें जैसे बोल उठीं—'अब तुम्हारे आंगन में दो नन्हे नन्हे पांव नहीं नाचेंगे। अब इसकी खिड़कियों की सलाखों को पकड़कर कोई भी शैतान बच्चा खड़ा नहीं होगा और

न ही वह सुहाग की मेंहदी लगा पायेगी।' उसे अपना जीवन निस्सार लगा। उसे अनुभूति हुई कि उसने अपने यौवन का गला घोंट दिया है। वह दर्पण के सम्मुख खड़ी हुई और उसने गौर से दर्पण को देखा—'सचमुच मैं बूढ़ी हो गयी हूं। देखो ना, मेरे चेहरे पर कितनी गहरी झुर्रियां हैं! आंखों के नीचे स्याह दाग भी हैं।' उफ! वह कितनी बदल गयी है। उसने आज से पहले कभी अपको इतने गौर से क्यों नहीं देखा? और उसके मानसलोक में एक नया ही दृश्य पैदा हुआ कि वह मादा बिच्छू है और उसे उसके ही बच्चे खा-खाकर मरणासन्न कर रहे हैं। ये बच्चे हैं—उसके भाई, मां, छोटे-छोटे भाई-बहन! तब उसको अपने आप से रोष, घृणा और विरक्ति हो गयी। कई तरह के अर्थ-युक्त विचार उसके मन में उठते रहे और वह घर से बाहर निकल पड़ी। उसने निश्चय कर लिया कि वह इस तरह जिंदा नहीं रह सकती। एक दिन ऐसा आयेगा कि लोग उसे अपनी बातों से जीवित नहीं रहने देंगे। वह [illegible] और सहेलियों को कैसे मुंह दिखायेगी! उसके विषाद-भरे हृदय से दबी सी आवाज उठी कि उसे मर जाना चाहिये। यह आवाज जब उसकी जबान पर आयी तब जबान भी दृढ़ता से मौन स्वर में चिल्लायी—'मैं आत्महत्या करूंगी।' और वह बड़ी देर तक आत्महत्या के बारे में सोचती रही। उसके मन में दया, त्याग, श्रम, कर्त्तव्य और परिवार के प्रति घृणा भर उठी और वह वकील के घर की ओर चल पड़ी। चलने में पहले उसने एक बार अपने मकान को देखा। उसकी आंखें भर आयीं। उसने निश्चय किया कि वह यह मकान अपनी छोटी बहन के नाम कर देगी और इस शर्त पर करेगी कि शादी के बाद ही उसे दिया [illegible] ताकि उसका अपना जीवन सुखी हो जाये।

प्रवीण चन्द्र वकील उसके साथ बी. ए. में पढ़ता था। वह सीधी उसके घर की ओर पैदल चल पड़ी। मरने के पूर्व वह एक बार सभी चीजों को [illegible] अपनत्व से देखना चाहती थी, क्योंकि कल सुबह उसके बिस्तर पर उसकी लाश होगी और उसकी [illegible] प्यारी बुढ़िया [illegible] दहाड़ें मारकर रोयेगी। उसने तुरन्त यह निश्चय किया कि वह अपने प्राविडेंट फंड में से [illegible] बुढ़िया को जरूर दे देगी, फिर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

देखती रही और देखते-देखते विह्वल हो उठी। फिर उस पत्र को पुनः पढ़ने लगी—'जीवन सहज हो गया। मैंने समझा कि मैं वकील बन कर अपने जीवन के उन दुख:भरे क्षणों को भूल जाऊंगा। पर मैं ऐसा नहीं कर सका। निरन्तर प्रयास जारी रहे, पर मेरी इनकम चार-पांच सौ रुपये से आगे बढ़ी ही नहीं। मैंने इस बीच नौकरी की फिर तलाश की, पर वह भी नहीं मिली। और इधर मैं तीन माह से बीमार हूं। हाथों और पांवों में दर्द और सुन्नता रहती है। दवा के लिए दो सौ रुपये चाहिए और मेरी हालत इतनी गिर गयी है कि मेरा कचहरी जाने वाला काला कोट भी फट गया है। ऐसी स्थिति में जीने से क्या लाभ? जिन्दगी का नाम यही है तो मैं कहता हूं कि हमें छला गया है। यह दुर्वह यन्त्रणा है जो घोर नरक से भी भयानक और हृदय-विदारक है। इसलिए मैं आत्महत्या कर रहा हूं। मुझे विश्वास है कि मुझे कोई देखने नहीं आयेगा। आर्थिक अभाव ने मुझमें गहरी हीनता को जन्म दे दिया है और इस हीनता ने मुझे सबसे अलग-सा कर दिया है। लेकिन जब मेरी लाश सड़ने लगेगी तब उसकी बदबू से घबराकर कोई पड़ोसी अवश्य इसे पुलिस को सौंप देगा जहां इसका पोस्टमार्टम होगा और मौत के कारण को ढूंढा जायेगा। मैं चारों ओर से हताश होकर मर रहा हूं। मैंने अफीम खायी है""बस!'

तांगा आ गया। वनिता ने पत्र को छुपा लिया और वकील साहब को तुरन्त अस्पताल ले जाया गया। डॉक्टरों के सम्मिलित प्रयासों ने उसे बचा लिया। वनिता रात-भर उसके पास बैठी रही। पूरे चौबीस घंटे के बाद वकील साहब की दशा साधारण हो पायी।

वनिता ने विनम्र होकर कहा, 'अब मैं जाती हूं। मेरी नौकरानी मेरे लिए चिंता करती होगी।'

'लेकिन आप मेरे पास क्यों आयी थीं?'

'यह मैं आपको फिर कभी बताऊंगी। आपकी यह दशा देखकर मैं तो सिर्फ आपको मौत के मुंह से छीनने में लग गयी थी। आपने समझदार होकर ऐसा कदम उठाया—लज्जा की बात है।'

'लेकिन कोर्ट में भी आपको मुझे बचाना होगा।'

'वह कैसे?'

'मेरे कहे अनुसार बयान देकर।'

'बचा लूंगी,' वनिता ने जब यह कहा तब उसके अधरों पर मुस्कान थी—जीवन और जीवन से सम्मोहित एक पवित्र मुस्कान। उसने अस्पताल के बाहर

निरखते हुए आषाढ़ के पहले बादलों से भरे आकाश को देखा और सोचा—'मैं अब आत्महत्या नहीं करूंगी।' और उसके मस्तिष्क में वकील साहब छा गये। उसे लगा जैसे उसके जीवन में चारों ओर फूल ही फूल खिल आये हों।

जब वह अपने मकान के सामने पहुंची तब उसे छत पर दौड़ते हुए कुछ अदम्य पाव दिखायी पड़े और वह अपनी परेशान बुढ़िया नौकरानी मां को बाहों में भींचकर चूमने लगी। बुढ़िया की आंखें बरस रही थीं। वह कुछ बोलना चाहती थी, पर बोल नहीं पायी।

और तब से उसके मकान में स्थाई चहल-पहल दिखायी पड़ने लगी है। अब वो अकेली जो नहीं रही।

☐

जूते

वह ट्रेन मे ग्रत्यन्त ग्राश्वस्त होकर बैठ गया। उस समय उस डिब्बे में कोई नही था। ग्रपने ग्रापको ग्रकेला पाकर वह खुश ही हुग्रा, ग्रौर ग्रपने को ग्रधिक सुरक्षित समझने लगा था। लेकिन धीरे-धीरे डिब्बे में यात्री ग्राते जाते रहे ग्रौर उसे लगता रहा कि वह भयभीत हो गया है। हालांकि उसे कोई भी नही पहचान रहा था, फिर भी वह एक ग्रजीब भयजनक स्थिति में ग्रपने ग्रापको पा रहा था। एक ग्रामीण उससे इस तरह सटकर बैठा कि वह विहुंक उठा ग्रौर उसन उस ग्रामीण को ग्रपने पास से हटा दिया। ग्रामीण हटता-हटता यह कहता गया, 'मैं कोई विना टिकट नही बैठा हूं, टिकट लिया है, बाबू साहब। रेलगाड़ी ग्रापकी ग्रकेले की नही है।'

वह कुछ नहीं बोला। उसने ग्रपनी ग्रटैची में से एक मासिक पत्र निकाला ग्रौर उसमे खो गया। पर उसका मन पढ़ने में जरा भी नहीं लगा, बल्कि यह कहना ग्रधिक न्याय-सगत होगा कि पत्रिका ही उसके चेहरे मे चिपक गयी थी। उसे गुस्सा ग्राया ग्रपने बॉस पर, जिसने कितनी लापरवाही से कहा था, 'डरते क्यों हो सोमेश्वर, इस काम मे कोई रिस्क नही है। हीरे ऐसी जगह पर हैं, जहां ग्राज की पुलिस क्या, उसकी सात पीढ़ी तक वहां नही पहुंच सकती। तुम जरा ग्रपनी ग्रटैची को ज्यादा ग्रौर जूतों को कम देखना। बस।'

वह स्वीकृति-सूचक सिर हिलाता गया। बाद में उसने जूते पहने, नया शूट पहना। चलने लगा तो उसे ग्रपने पांव भारी लगे। क्या हीरे, छोटे-छोटे हीरे इतने भारी होते हैं? वह ग्रपने कमरे में ग्राकर जूतों को फिर देखने लगा खोलकर, हाथ में उठाकर देखा, उतने ही हल्के थे। फिर पांव में भारी क्यों ल रहे थे? वह सोचने लगा कि ग्रजीब स्थिति है। क्या इन जूतों में जादू ०. नहीं है?

उसने देखा कि ग्रब दो पुलिसवाले डिब्बे में घुस ग्राये हैं। वह उन्हें देखकर पसीना-पसीना हो गया। बॉस के लाख कहने के बावजूद भी उसकी नजर ग्रपने जूतों की ग्रोर चली गयी। उसकी इच्छा सीटी बजाने की हुई ताकि वह मौजूदा परिस्थिति में ग्रपने ग्रापको ग्रच्छी तरह संभाल सके पर उसने महसूस किया कि ऐसा करना ग्रावारागर्दी का सूचक समझा जायेगा। फिर भी उसने तय किया कि उसे कुछ बेपरवाही बरतनी चाहिए, ग्रौर वह भी जूतों के प्रति, इसलिए वह जूतों

को खोलने लगा। उसने जूते खोलकर लापरवाही से उन्हें सीट के नीचे खिसका दिये। पुलिसवाले अब उसके बहुत पास आ गये थे। वे गांववालों की गट्ठरियां, थैले, माके तलाश रहे थे जिनमें अक्सर वे तस्करी की चीजें अफीम, गांजा व सोना ले जाया करते थे। यह संयोग ही था कि उस दिन किसी के पास कुछ नहीं मिला। पुलिस वालों ने राहत की सांस ली और वे वहीं पर जम गये। उसने मन ही मन कहा, 'मर गये। लेकिन मेरे बॉस ने कहा है कि तुम्हें अटैची की ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।' वह अपने आतंरिक भय से भागने के लिए स्वयं ही अटैची को खोलने लगा। खोलकर उसने एक पत्रिका भीतर रखी और दूसरी निकाल ली।'फिर उसने एक खामखाह बनावटी जम्हाई ली और आँखें मूंदकर सोने का उपक्रम करने लगा।

गाड़ी किसी स्टेशन पर रुकी। वह चौंककर उठा। पुलिस वाले चले गये गये थे, उसने झट से देखा। जूते गायब थे। वह लपककर बाहर भागा। उसने देखा कि एक ग्रामीण आदमी उसके जूते लेकर भाग रहा था। वह जोर से चिल्लाया, 'चोर-चोर-चोर, मेरे जूते, पुलिस पुलिस।'

पुलिस वालों ने लपककर उस व्यक्ति को पकड़ा। उन्होंने उस व्यक्ति को पहचान लिया कि वह जरायमपेशा है। चोरी करना इनकी आदत है।""उन्होंने उसे जूते वापस लौटकर कहा, 'ये जरायमपेशा लोग हैं, चोरी किये बिना इन्हें नींद नहीं आती है। सभालिए अपने जूते।'

उसने जूतों को गौर से देखा। फिर सभालकर उन्हें इस बार अटैची पर रख लिया। वह सोचने लगा कि बॉस ने उसे आज खूब फसाया। माना कि इस तरह बॉस ने कई बार बड़ी सुरक्षा से अपने हीरे भेजे है, और वह पुलिस को धोखा देने में कामयाब भी हो गया है, पर वह ऐसा काम सदा नहीं कर सकेगा। उसने झट ही सोने का पुनः उपक्रम किया। सोच रहा था कि यह कैसे सम्भव है कि मैं जूतों की ओर नहीं देखूं? उसमें लाखों रुपयों के हीरे हैं। अटैची में कुछ नहीं है। बॉस कहता है कि सिर्फ अटैची की ओर देखो, सिर्फ नार्मल रहो, पर यह मेरे लिए सम्भव नहीं। मेरा मन जूतों से अलग हो ही नहीं सकता। उसमें इतने कीमती हीरे हैं! वह बॉस को कह देगा कि वह भविष्य में हीरे ले जाने-वाले का काम नहीं करेगा। उसकी आखें सचमुच झपक गयीं। वह पल भर के लिए नींद की गहरी लपेट में आ गया। सहसा वह जगा तो उसने पाया अटैची पर से जूते फिर गायब हैं और उसके आसपास के लोग मस्ती में सोये हुए हैं। उसने नीचे ऊपर देखा, कुछ नहीं था। जूते क्या, जूते के फीते भी वहीं नजर नहीं आ रहे थे। उफ्! अब वह क्या करे! बॉस ने कहा था—घबराना नहीं चाहिए, चेहरे की घबराहट से पुलिस वाले दिल की बातें जान लेते हैं। पर उसने

घबराहट व भय के मारे अपने आसपास वाले सभी यात्रियों को जगा दिया। सारा डिब्बा कोलाहल से भर गया। वह पागल की तरह असंयत होकर चिल्लाने लगा—'मेरे जूते, मेरे कीमती जूते। जरा सोचिए, यह कोई रेलवे की सुरक्षा है? क्या शरीफ अच्छी व चिन्तारहित यात्रा कर सकता है? 'मैं जंजीर खींचकर गाड़ी रोकूंगा।'

सहयात्री विस्मय से भर गये। एक ने कहा, 'जनाब! जूतों का इतना ही फिक्र था तो उन्हें अटैची में बन्द करके रखते।'

वह रोष से भर आया। उसकी इच्छा हुई कि वह इस आदमी का मुंह नोच ले, पर उसी पल उसे अपने बॉस के वे शब्द याद आये—'भय और घबराहट से बचना। ये पुलिस—!'

वह चुपचाप बैठ गया। उसने संदिग्ध दृष्टि से अपने आसपास के लोगों को देखा। लोग पुनः खर्राटे मारने लग गये थे, जैसे उन्हें उसके जूतों की जरा भी परवाह नहीं थी। पर वह कैसे सोये? उसे बॉस पर फिर झुंझलाहट आयी कि लाख मना करने के बाद भी उसे आखिर यह काम सौंप ही दिया।

कोई स्टेशन आया। वह भागकर दरवाजे पर आया। रात सन्नाटे में डूबी हुई थी। इस बार वह एक नये भय से घिरा हुआ था। बॉस उसे जान से मार देगा। यह क्रूर और राक्षसी प्रवृत्ति वाला बॉस""तभी उसकी ओर भागा-भागा एक आदमी आया। उसे ठेलता हुआ वह भीतर घुस गया। वह गुस्से में भर गया। बोल उठा, 'कितने बदतमीज""""?' तभी उसकी दृष्टि अपने जूतों पर गयी। वह उन पर झपट पड़ा, 'मेरे जूते, मेरे जूते, मैं आपका बहुत आभारी हूं मेरे जूते दे दीजिए।'

गाड़ी चल पड़ी।

आगन्तुक ने अपने आपको सम्भालते हुए कहा, 'भाई, आपके जूतों के लिए मुझे भारी संघर्ष करना पड़ा है। क्या ये जूते आपके ही हैं?'

'हां हां, आपको धन्यवाद। मैनी-मैनी थैंक्स।'

'सोच लीजिए, मेरे ख्याल मे ये जूते आपके नहीं हैं।' उसने गम्भीर होकर कहा।

उसने जूतों का निरीक्षण किया। अच्छी तरह से किया। अचानक उसे अपने बॉस के उपदेश याद आये और वह उन जूतों को लापरवाही से फेंकता हुआ बोला, 'वैसे श्रीमानजी, ये जूते साधारण हैं पर मुझे इसकी डिजाइन बहुत ही पसन्द है, बड़े अरमान से बनवाया था इन्हें। फिर-?""फिर भाई, एक मिडिल क्लास के व्यक्ति के लिए साठ रुपये बहुत होते हैं।' उसने जूते पहन लिए और वह अपनी जगह पर आकर बैठ गया।

उसके ठीक तीसरे स्टेशन पर उसे पुलिस ने पकड़ लिया। वह शराफत की डींग मारता रहा, 'इस तरह ग्राम व्यक्तियों को तंग किया जाता है, अपमानित किया जाता है। आपके पास वारंट है, आप मुझे क्यों पकड़ते हैं ?' पर ज्यों ही उसने उस आदमी को देखा जो दूसरी बार उसके जूते लाया था, तो वह पत्थर की तरह चुप हो गया। उसके सोचने की शक्ति पथराने लगी।

भीड़ मे हल्का-सा शोरगुल उठा। पुलिस उसे अपने साथ ले गयी। तो भी वह बार-बार अपने जूतों की ओर देख लेता था, बहुत ही चोरी से, जैसे वह मूर्ख अब भी सोच रहा था कि शायद पुलिस मेरे जूतों के रहस्य से अनभिज्ञ है। ▣

एक सही स्वीकृति

मैं मिसेज गोपिका सेठिया सब कुछ होने के बाद अपने आपको बहुत हलका और खाली समझने लगी हूं। थोड़ी देर पहले जो बवंडर सीढ़ियों के पास गुजरा था, उसके प्र त अब भी मैं आश्वस्त नहीं हो रही हूं। शायद यह मेरे मन का भ्रम हो कि कोई मेरे जिस्म को तोड़नेवाला बवंडर ऐसे पीड़ादायक क्षणों में बिना किसी आशंका से या पूर्वाभास से आ सकता है। 'तूफान नहीं आया।' मैं फिर दोहराती हूं। कई बार दोहराती हूं। और दोहराकर मैं अपने पेटीकोट को अपनी टांगों के बीच बहुत जोर से दबाती हूं। एक लिजलिजा-सा अहसास। तूफान आया है, जरूर आया है। यह लिजलिजापन इसका प्रमाण है। और मैं चारों ओर देखती हू। हल्की ग्रीन दीवारें और उन पर टंगी ईश्वर की तस्वीरें! भगवान श्री कृष्ण, विष्णु और हनुमान! मैं एक बार उन तस्वीरों को गौर से देखती हूं। आंखों को मिचमिचाती हूं। तस्वीरें अब भी तस्वीरें ही हैं। पर तूफान के समय उन पर काला रंग कैसे पुत गया था! वे सब तब काली-काली प्लेटों के रूप में बदल गयी थीं। मैं बहुत देर तक पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रहती हूं। मेरे चेहरे पर सिर्फ एक रंग है, कुछ न कुछ करने का एक रंग। शायद जड़ता का रंग, शायद तटस्थता का रंग!

सीढ़ियों पर से धूप तेजी से फिसलकर नीचे उतर रही है।

"आह!" एक अथाह दर्द में डूबी आवाज धूप की तरह सीढ़ियों पर से रेंगती मेरे पास आकर खड़ी हो जाती है, मुझे झकझोरने लगती है। मैं विचलित हो जाती हूं। मेरी जड़ता टूटकर कई टुकड़ों में बिखर जाती है।

"हरे राम!" वही दर्द में डूबी हुई आवाज। मैं जल्दी से सीढ़ियों पर की धूप को अपने पावों से रौंदती ऊपर चढ़ती हूं। देखती हूं, मेरा पति अपने हाथ से अपने हृदय को पकड़े हुए तड़प रहा है।

मैं खड़ी रहती हूं। कुछ देर तक निस्पंद एक प्रश्न की तरह। देखती रहती हूं अपने पति को। दुबला, बूढ़ा और एक दम गोरा! सदा की तरह मेरे मस्तिष्क में यही तीन बातें आती हैं। फिर मैं आंखें मूंदे अपने पति को देखने लगती हूं। मेरा पति, पति परमेश्वर!

"कदाचित् दर्द दब गया है या —।"

मैं सिहर उठती हूं।

"या कि वह मर गया है।"

मैं पसीने से भीग जाती हूँ। मैं अपना मुंह अपने पति के नाक के पास ले जाती हूं। *सांस चल रही है। मुझे बहुत ही सकून मिलता है।*

मैं चादर से अपने पति को ढँक देती हूं। एक बार सम्पूर्ण कमरे को दृष्टि में भरती हूं। फिर कुर्सी खिसकाकर सोये हुए पति के पास बैठ जाती हूं—एक कर्तव्यनिष्ठ पत्नी की तरह।

कई दिनों से पति के हृदय रोग ने दौरा कर रखा है। और मेरा जीवन सिकुड़-सिमटकर इस कमरे में बन्द हो गया है।

इसी कमरे में, हां इसी कमरे में पहली बार मैंने टांगों के बीच के लिजलिजेपन का अहसास किया था। तब मैं चौदह वर्ष की थी। पति 35 वर्ष का। पति की पहली पत्नी! शुरू में पति गरीब था अतः उसे बेटी नहीं मिली, बाद में पंचों के साथ मेरा हाथ इसके हाथ में दे दिया गया। यह भी चर्चा है कि कुछ गुप्त रूप से लेन-देन भी हुई थी।

पहली रात से लेकर आज की रात तक मैं एक अजीब अतृप्ति से पीड़ित रही हूं। दोनों के सम्बन्धों के बीच एक ऐसा भी सम्बन्ध है जो सम्बन्धों के अस्तित्व को नकारता है। मुझे यदाकदा सभी सम्बन्धों से अलग कर देता है।

नीचे दरवाजा खुलता है। कदमों की आहट मेरी तरफ आ रही है। आहट के साथ एक पुकार, "बहू, ओ बहू!"

रिश्ते की बुआ सासू है। जब आती है, अपनी उबा देने वाली रटीरटाई शब्दावली से मुझे बोर कर जाती है। पैंतालीस वर्ष की है। सफेद से कोसनी है। कमरे में घुसती हुई गर्दन को झटका देकर आज फिर बोलती है, "क्यों री बहू, कैसे रही तबीयत महेश की? कोई नया मर्ज तो नहीं उठा? सच कहती हूं। इसकी वजह से रात को नींद नहीं आती है।"

"सी ऽऽऽ।" होठ पर उँगली रखकर मैं उसे चुप करती हूं और संकेत से बताती हूं कि इनकी आंख लग चुकी है। मेरी बुआ सासू उदास हो जाती है। सहसा उसका चेहरा निराशा के रंग से पुत जाता है। मैं अपने आप लज्जित हो जाती हूं गोया मुझे बुआ सासू का इस वक्त आना रुचिकर न लगा हो। बुआ इस मौन को नहीं सह सकती है। उसी गर्दन के झटके से उठकर चली जाती है, "फिर आऊँगी" कहकर।

उसके जाते ही मैं वापस उठती हूं। जहां सीढ़ियां शुरू होती हैं, उस दरवाजे के बीच में खड़ी होकर मैं सीढ़ियों की ढलान को देखने लगती हूं। सीढ़ियां गिनने लगती हूं। सोलह सीढ़ियां। इस घर में आये मुझे पन्द्रह वर्ष! एक वर्ष और, और ये सीढ़ियां खत्म! और मैं निर्जीव-सी खड़ी रहती हूं। मुझे अचानक

है कि मैं व्यर्थ ही खड़ी हूँ। मुझे शीघ्र ही नीचे चलकर अपनी टांगों के बीच के लिजलिजेपन को साफ कर लेना चाहिए। मेरी कोई सहेली भी आ सकती है। फिर मोहिनी ? छि: कितनी गन्दी है वह ? सीधा हाथ डालती है, बेशर्म कहीं की ! बालों की चर्चा ही उसकी विशेष चर्चा होती है।

मैं सिहर उठती हूँ साथ ही भय मुझे कुछ विचलित भी कर देता है।

मैं एक-एक सीढ़ियाँ इस तरह उतर रही हूँ जैसे मैं अपना एक-एक वर्ष, जो इस घर में गुजारा है उसे याद कर रही हूं। एक-एक वर्ष मैंने इस तरह जिया है जैसे मैं नहीं मेरे भीतर कोई और ही जी रहा है। एक मांसपिंड की, एक ठंडे गोश्त की चलती-फिरती मूर्ति की तरह हूं मैं। मुझे बार-बार यह क्यों लगता है कि एक और औरत मेरे भीतर बैठी है। ऐसी औरत जो मेरे इस अस्तित्व को कभी-कभी स्वीकारती ही नहीं। जो हजारों बार भोगी जाकर भी अभोगी है। जो एक अजानी-अदीठी भूख से तड़प रही है। जो नारीत्व और सतीत्व के बीच की एक ऐसी रेखा है जो इस परिवेश में कट-कटकर जुड़ जाती है।

मैं बहुत ही धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतर रही हूँ। किसी ने दरवाजे को धक्का दिया है। मैं सावधान हो जाती हूं और शेष बरसों को पांवों की आहट में लीन करती हुई नीचे उतर जाती हूं। दरवाजा खोलते समय मेरे चेहरे पर शंकाओं का सागर बैठ जाता है। एक भय दौड़ जाता है कि कहीं मोहिनी....

पर वहाँ सिर्फ एक कुत्ता मिलता है। कभी-कभी यह कुत्ता भी चटखनी न लगे रहने पर आ जाता है। यह कुत्ता है तो बेचारा गली का, पर न जाने इसमे किस नस्ल का असर है कि लगता है रीछ जैसा ! कम से कम घने बालों के कारण ! एकदम भूरा रीछ !

मैं दरवाजा वापस बन्द करती हूँ। आकर जल्दी-जल्दी पेटीकोट धोने लगती हूँ। इस बीच मैं बार-बार डर रही हूं कि कहीं कोई आ न जाय और असमय पेटीकोट धोने के गहरे अनुमानों में न डूब जाय। यह तो अच्छा है कि मेरा पति अभी उठकर नीचे नहीं आ सकता है। लाख प्रयत्न करने के बाद भी नहीं उठ सकता है। उठ क्या, हिल भी नहीं सकता है। मुझको इस विचार से काफी सुख-संतोष मिलता है। मैं पेटीकोट धोकर एकदम आश्वस्त हो जाती हूँ और दरवाजा खोलकर अन्तिम सीढ़ी पर बैठ जाती हूं। फिर मैं दरवाजे की ओर एकटक अर्थ भरी दृष्टि से देखने लगती हूं। मैंने दरवाजा क्यों खोला, मैं इस पर गम्भीरता से सोचती हूँ। फिर मेरी दृष्टि दरवाजे के पास की दीवार से फिसलती हुई सत्यवान और सावित्री के कलेण्डर पर अटक जाती है। मैं 'सावित्री को' देखती रहती हूँ। मेरे पति को यह कलेण्डर विशेष रूप से पसन्द है और मुझे जरा भी नहीं।

इसी जगह पर थोड़ी देर पहले जो हुआ था, इससे मैं पूर्ण आश्वस्त क्यों नही हो रही हूँ ? 'परमु' आया था । जब कभी उसे अवसर मिलता है, वह इसी तरह आता है और मुझे हड़पकर चला जाता है । लेकिन आज उसकी मुझे हड़पने की इच्छा मर गई थी । जब वह आया था तब उसने मुझे हड़पने का संकेत किया था, पर वह जैसे ही सेठ जी से मिला, उसकी वासना का रंग करुणा के रंग में घुलता गया और थोड़ी देर में वह उदास हो उठा । उसने मृत्यु से भयभीत सेठजी को बार-बार यही कहा, 'आप अच्छे हो जायेंगे, आपको कुछ नहीं होगा ।' मुझे याद है, मैं उस समय बार-बार कमरे में आती थी और उसे संकेत करती थी कि जल्दी से नीचे चलो,....लेकिन वह सेठजी को आश्वासन देता रहा । धीरे-धीरे सेठजी की आंख लग गई । वह उठा । मैंने उसे सीढ़ियों के बीच ही दबोच लिया । वह परेशान-सा मुझे हलका धक्का देता हुआ बोला, 'यह क्या करती हो, आज नहीं ।'

'क्यों ?'

'मैं आज कुछ भी नही करूंगा । सेठजी को देखने के बाद मेरा मन मर गया है ।'

'तुम मूर्ख हो ?'

'नहीं । तुमने उनके चेहरे को देखा है ! उनके तड़पने को सुना है ! उनके चेहरे के भय को समझा है ।'

'मैं हर रोज देखती हूँ ।'

'मुझे लगता है अब वे अधिक जिन्दा नही रह सकते !....आज मुझे जाने दो ।'

मैंने उसे सीढ़ियों के बीच पकड़ लिया, 'मैं फिर कहती हूँ, तुम मूर्ख हो । यह एक अच्छा चांस है, मैं यह चांस नहीं खो सकती ।'

वह नितान्त दुःखी होकर बोला, 'सचमुच तुम पागल हो, यह कैसे सम्भव हो, सेठजी मर भी सकते हैं ।''

मैं थोड़ा-सा मुसकरायी । सच यह सब स्वीकारते मुझे भय नही है, पर मैंने उसे समझाया....'हालांकि परमु जो शब्द तुम्हारे सामने उन्होंने बोले हैं, वे प्रायः सभी के सामने भी बोलते हैं ।....चलो, जल्दी से नीचे चलो, जब तक उनकी आंख लगी हुई है तब तक खेल खत्म कर लें । उनको कुछ नहीं होगा । यह सब मैं खूब जानती हूँ ।'

परमु यंत्र चालित-सा मेरे साथ चला । मैं उससे लिपट गयी । उसके अंग अंग को चूम लिया । वह जिस इरादे से आया था, वह इरादा मर भी गया था, पर मेरे उत्तेजित स्पर्शों से दुबारा जगने लगा ।....और मुझे महसूस हुआ कि मैं

अपने सभी सम्बन्धों से मुक्त हूँ। सभी परिवेशों से कट गयी हूँ। एक ऐसी व्यर्थता मेरे चारों ओर सजीव हो गयी है जो मुझे सबसे अलग-थलग कर चुकी है। मैं अभी हूँ, वह पहले नहीं थी और जो पहले थी, वह अब नहीं हूँ।

उसने जाते हुए मुझसे कहा था, 'तुम यह अच्छा नहीं कर रही हो। जरा सोचो, ऊपर कुछ हो गया हो तो?'

मैं मुसकराने लगी। एक अत्यन्त ही बुझी-बुझी मुसकान! रूखी और निर्ममता में रंगी मुसकान! जैसे मुझमें एक विद्रोह था, एक अस्पष्ट-सा विद्रोह। अपने से और अपने आसपास के सभी सम्बन्धों से बगावत। वह चला गया।

मैं थोड़ी देर अपने पेटीकोट को टांगों के बीच दबा कर बैठ गई। पूरे चार माह के बाद यह चांस मिला था! ---परमु को मेरे घर आने का कोई बहाना नहीं। और आज! सेठजी मर---। मैं पल भर के लिए ऊपर गयी और सेठजी को देखा, वही गत दिनों वाली नींद! मुझे वह स्थिति असह्य हो गयी थी। मैं वापस आकर खड़ी हो गयी।

समय रेंगता रहता है। अपने आपको व्यर्थता में डुबाने वाली मैं, धीरे-धीरे अपने पति की आवाज से नया परिवेश पहनने लगती हूँ। और मुझे जो कुछ लगता है वह स्वप्न व सत्य की तरह महसूस होता है।

एक कड़वी-सी आवाज आती है, 'अरे सुनती नहीं मैं चीख-चीख कर थक गया हूँ।'

मैं नहीं जानती हूं कि वे कब से मुझे आवाज दे रहे हैं। मैं जल्दी-जल्दी उनके पास जाती हूँ। उनका चेहरा तमतमा उठता है। मुझे देखते ही वे चीखन के स्वर में कहते हैं, "कहां मर गयी थी? चीखते-चीखते मेरा गला सूख गया!" और फिर वह मुझे सदा की तरह भद्दी-भद्दी गालियां देते हैं। ये गालियां प्रायः परमु को घर में देखने या कहीं और देखने पर इनकी जबान पर आ बैठती हैं। हालांकि इनके पास कोई ऐसा ठोस प्रमाण नहीं है कि वे मेरे पास परमु के शारीरिक सम्बन्धों को प्रमाणित रूप से बताते, क्योंकि मैं एक सती की तरह अपने पति की सेवा अभिनय करती हूँ। पाठ पूजा करती हूँ, मन्दिर जाती हूँ और अपने पति की सेवा में जरा भी कमी नहीं आने देती हूं। किन्तु परमु के समीप आते ही न जाने मुझमें कौन सी बगावत होती है, कौन-सा अलगाव होता है, यह मैं नहीं जानती। लगभग तीन बरस हो गये हैं और इन तीन बरसों में मुझे गिनती के अव-मिले हैं, उससे मिलने के। पर जब भी मिला है तब मैं सहसा भूल जाती हूँ कि मैं एक ऊबी हुई औरत हूं, मैं अपने जीवन से तंग हूँ। मुझे प्रतीत होता है कि मैं तरोताजा हूं, औरत हूं, सिर्फ औरत! जवान हूं,--- फिर वही जीवन हो जाता है। सामान्य और एकरसता में डूबा हुआ! यह सिलसिला दो-चार बार चलते

के बाद सहसा मुझमें एक भयजनित विरक्ति जागती है और तब मैं मन्दिर जाती हूं, कथा-भागवत सुनती हूं, तब मुझे ग्लानि होती है अपने आप पर, कुलटा के पापों के दण्ड के रूप में नारकीय यंत्रणाओं को पढ़कर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मैं कसम खाती हूं कि ऐसा नहीं होगा, मैं अपने पति के अतिरिक्त किसी की बांहों में नहीं जाऊंगी, पर जैसे ही परमु कोई बहाना करके आता है तब मैं कुछ क्षणों के लिए उससे नाराज रहती हूं। वह चुपचाप बैठ जाता है। मेरी ओर देखता रहता है और फिर मैं, मैं न रहकर कोई और हो जाती हूं... मेरा सबसे सम्बन्ध टूट जाता है। कभी-कभी वह बाहर से ही चला जाता है नाराज होकर, फिर वह मुझे बहुत ही उपेक्षा से देखता है, तब मैं उसके लिए विकल हो जाती हूं।

मैं नहीं जानती हूं—इतना उलझा-उलझा, इतना विरोधाभासों से भरा, इतनी पीड़ादायक स्थितियों में व्यर्थता का बोझ उठाये जीना, कैसे सम्भव हो रहा है? क्या विश्लेषण हो सकता है? जो स्वीकृतियां मैंने की हैं, वह सत्य है, इसमें झूठ नहीं।... मुझे जो सिर्फ झूठ लगता है तो अपना यह परिवेश! अपना यह जीवन!

इन बीमार क्षणों में खांसिया-जीवन जीते रहना कहां तक सम्भव है! यह सम्मोह की कौन-सी कड़ी है कि किसी का सम्मोह नहीं मरता! सब बुझा-बुझा सा, सब टूटा-टूटा-सा!

"तुम्हें हो क्या गया है!" सेठजी मेरे ध्यान को तोड़ते हैं। मैं सकपका जाती हूं।

"अरे तुम्हारी आंखों में आंसू?...सुन मेरे पास बैठ, बैठ न!" मैं उनके अत्यन्त ही नजदीक बैठ जाती हूं। वे मेरे हाथ को पकड़कर सहलाते हैं। अनुराग-भरे स्वर में कहते हैं, "क्यों रोती है, पगली है! मैं अभी मरने वाला नहीं हूं। यदि मैं मर भी गया तो क्या हुआ? तू भूखों तो नहीं मरेगी? ब्याज में रोटियां खायेगी।... चिंता न कर, रो मत, अरे मैं तो अपने चिड़चिड़े स्वभाव के कारण तुझे भला-बुरा कह देता हूं! अच्छा माफ कर दे... सुन, मुझसे तुम्हारा रोना नहीं देखा जाता है, ले मैं तुम्हें हाथ जोड़ता हूं।"

सेठजी सचमुच हाथ जोड़ देते हैं। उनके दोनों हाथ कांप रहे हैं। मैं उनके जुड़े हुए हाथों को देखती हूं और फिर उन्हें पकड़कर भीतर ही भीतर सिमट जाती हूं। पता नहीं क्यों, मेरी इच्छा होती है कि मैं फिर उतरकर सबसे निचली सीढ़ी पर बैठ जाऊं। जैसे सदा ऐसी स्थिति में बैठती हूं।

एक अलग किस्म का आदमी

वह एक अजीब किस्म का आदमी है। इतना अजीब कि उसे आप न सरलता से समझ सकते हैं और न कठिनता से। दरअसल वह आदमी और यन्त्र की एक दोगली सन्तान है। कभी वह आपके साथ ऐसा व्यवहार करेगा जैसे वह आपका अपना आत्मीय हो, कभी वह आपको पहचानेगा तक नहीं।

उसका नाम 'क' से शुरू होता है और 'ल' पर खत्म हो जाता है। लेकिन वह अपने आपको 'क' ही कहलाना ज्यादा अच्छा समझता है।

वह सभी कामों व व्यक्तियों के प्रति लापरवाह लगता है, पर एक चीज के प्रति वह अत्यन्त सचेत रहता है। वह चीज है—पैसा!

जहां पैसा मिलने का सवाल होता है, वहां वह अत्यन्त ही व्यावहारिक आदमी बन जाता है। वह आपके आसपास ऐसे मंडराता है जैसे भँवरा फूल के चारों ओर मँडराता है।

तब वह सगर्व लोगों से कहेगा, "मिस्टर प्रीतम? अरे भाई! उनसे तो मेरा फैमिली रिलेशन है! वे मेरा काम अपना काम समझ कर करते हैं।" यदि प्रीतम ने उसका काम कर दिया तो वह बाद में नाक-भौं सिकोड़कर कहेगा "उन्हें जानता हूं भाई। कभी वह मेरे परिचित रहे थे। आदमी जरा ठीक नहीं हैं। बहुत बातूनी हैं, बोलते समय यह ध्यान भी नहीं रखते कि उनके आसपास स्त्रियां भी बैठी हैं।"

यदि आपने उसे टोका, "अरे 'क'! तुम तो उस दिन कह रहे थे कि प्रीतम साहब से तो मेरे फैमिली रिलेशन हैं।" तो वह बड़ी बेशर्मी से हँसकर कहेगा, "मैंने तो ऐसा नहीं कहा।"

"सफेद झूठ बोल रहे हो तुम?"

"मैं झूठ बोलता ही नहीं।" वह सहसा तनिक चौंककर, अपने गेहुंए रंग के भद्दे होंठों पर मुस्कान लाकर कहेगा, "ओह! अब याद आया। अरे भाई, मैंने उस दिन प्रीतम साहब को नहीं, गोपाल बाबू के बारे में कहा था। हां भाई, उनसे तो मेरा फैमिली रिलेशन है ही। हमारे घर नियमित रूप से आते हैं। बस, उन्हें आप घर का सदस्य ही समझिए।"

इसका मतलब साफ होता है कि आजकल उसका कोई काम गोपाल बाबू से है।

इस तरह उसका अपने परिचितों को अपरिचित बनाने का सिलसिला चलता रहता है।

उस सांझ आकाश में कुछ बादल घिर आये थे। सावन का महीना था। हवा में एक ठंडक थी।

'क' की पत्नी अपनी बेटी को नहला रही थी। वह सुबह की शिफ्ट में काम करती थी, टीचर थी। वह लम्बे कद की एक आकर्षक युवती थी। तीखे नाक-नक्श। सांचे में ढले-ढले अंग-प्रत्यंग।

सबसे आकर्षक उसकी आंखें थी। बड़ी-बड़ी दो कामुक आंखें। उन आंखों में अजीब-सा सम्मोहन था। वैसी ही एक यौनिक परत लिए हुए उसके अधर थे।

वह एक भावुक युवती थी। संवेदनाओं भरे क्षणों व भावनामय जीवन को जीना चाहती थी। लेकिन 'क' के कारण वह एक यांत्रिक युवती बनकर रह गई थी। उसने अपनी 'असल औरत' को मारकर अपने भीतर एक नयी औरत को जन्म दे दिया था। हालांकि 'क' की तनख्वाह साढ़े चार सौ रुपये थी और परिवार में एक पत्नी और बेटी। असहाय और पावों से अपंग मां बेचारी गांव में अकेली रहती थी जिसे वह बीस रुपया महीना भेजता था और यदि वह उससे कभी एक रुपया और ले लेती या कोई चीज मंगवा लेती, तो वह उतना पैसा हिसाब में काट लेता था। यहां तक कि एक बार उसने अपनी मां को दो कचौरियां खिलायी थीं, महावारी पैसा देते समय उन कचौरियों के पचास पैसे काट लिए थे।

उसकी मां तब उसके यहां आयी हुई थी।

उसने साढ़े उन्नीस रुपये देखे तो वह चौंकी। एक प्रश्न उसकी आंखों से निकलकर उसके चेहरे पर लटक गया।

वह दीवार पर लगे क्रॉस पर नजर जमाकर बोला, "ऐसे क्यों घूर रही है? हिसाब बिलकुल ठीक है, दो कचौरियां नहीं खायी थी तूने?"

मां का चेहरा करुणा से भर आया।

उसकी बीवी को हालांकि यह कुछ भी ठीक नहीं लगा, पर एक अजानी दहशत से घिरी हुई खामोश बैठी रही।

वह उठा, उसने कमीज पहनी। फिर वह भीतर के कमरे में जाकर अपने बालों को संवारने लगा। हालांकि उसके पीछे पंज-सूर्य चमक रहा था।

उसने अपने आपको गौर से देखा। फिर आवाज लगायी, "सरोज! जरा इधर आना तो!"

सरोज आटा गूंदती ˙ ˏ ˙ ˜ आयी। उसकी पंज पर दृष्टि जमाकर पूछ बैठी, "क्या"

"मैं ईश्वरी बाबू के पास जा रहा हूं।" वे शाम को छह बजे अपने घर आयेंगे।

वह चौंक पड़ी। बोली, "ईश्वरी बाबू ?"

उसने पलटकर अपनी पत्नी को घूरा। उस तीखी नजर पर भयानकता थी। स्वर में लम्बापन आ गया, "तुम तो ऐसे चौंकी हो जैसे ईश्वरी बाबू कोई शेर हैं।"

"शेर तो है ही।"

"क्या मतलब ?"

"सुना है, वे लगोट के बहुत कच्चे हैं। उन्होंने कितनी ही मास्टरनियों के साथ...।"

वह बिगड़कर बोला, "साले लोग बकते हैं! हर अच्छे अफसर के बारे में भ्रष्ट लोग ऐसी ही चर्चा करते हैं।

"तिल का ही ताड़ होता है।"

"तुम भी औरों की तरह बकवास करने लगीं!" वह नाराजगी-भरे स्वर में बोला, "वह एक शानदार आदमी है। इतना बड़ा अधिकारी हमारे घर आ रहा है, तुम्हें तो खुश होना चाहिए। वह तुम्हें बड़ी स्कूल की हैडमिस्ट्रेस बना सकता है. इससे हमारी इनकम तीन-चार सौ बढ़ जायेगी। हर आर्डर में कमीशन....!"

लेकिन मैं तो स्वयं सरला के यहां जाऊंगी।" उसने अपनी नजर दीवार पर लगी अपनी तस्वीर पर जमाकर कहा।

'बकवास बन्द! जो मैंने कह दिया, वह होना चाहिए, समझीं!"

'क' का चेहरा एकदम कोमल से क्रूर हो गया। उसकी आंखों में पैशाचिकता दहक उठी। आकृति पर तनाव ही तनाव फैल गया।

"यह...यह...।"

उसकी निगाहों की भूख बढ़ गयी। वह बोला, "तुम तो कभी-कभी पागल हो जाती हो। हर काम में मेरा विरोध करती हो। यह नहीं सोचती कि मैं यह सब कुछ तुम्हारी भलाई और उन्नति के लिए कर रहा हूं।"

वह भड़ककर बोली, "मुझे ऐसी भलाई नहीं चाहिए। आपको मैंने बताया था कि मिस्टर रणजीत ने मुझे दबोच लिया था और मेरा किस...।"

वह गम्भीर स्वर में बोला, "लेकिन वह...वह तो उसने नशे की मदहोशी में किया। फिर उसने मुझसे माफी मांगी। खैर, छोड़ो इन फालतू बातों को। ईश्वरी बाबू आयेंगे...तुम उन्हें एण्टरटेन करना। मैं जरा लेट आऊंगा।"

"आप उनके साथ क्यों नहीं आते ?"

"मुझे चौधरी के पास ब्याज लेने जाना है...उसने आज देने का वायदा किया है।"

और वह जाने के पहले अपनी मां के पास गया। उससे अजनबी की तरह
ना, "मां! तुम खाना खाकर आज ही गांव चली जाना।"

"क्यों?"

"क्यों क्या होता है? बस तुम्हें कह दिया और तुम चली जाना। इसमें
नी न हो।"

वह तीर की तरह चला गया। उसकी मां की आंखें भर-भर आयीं। फिर
ह सुबक पड़ी।

सरोज अपनी सास के पास आई। स्नेहपूरित स्वर में बोली, "माताजी!
आप दुख मत कीजिए, गांव चली ही जाइए। आपका बेटा पता नहीं किस मिट्टी
का बना है?...पैसा...पैसा...पैसा...! पैसे के पीछे यह पागल है। दस से
लेकर पच्चीस प्रतिशत ब्याज लेता है। मैंने एक दिन कहा था, 'सुनिए, इतना
अधिक ब्याज बरकत नहीं करता। अपना बेटा इसीलिए मर गया....!'

'फिर वही पागलपन!' आपका बेटा झल्लाकर बोला, 'सब अपनी मौत
मरते हैं।'

"इसी तरह मेरा दूसरा बेटा भी मरा। वह मासूम सात-आठ महीने का
था। आपको खुद भी पता ही है कि वह कितना प्यारा बच्चा था? मेरी नयी
नयी नौकरी लगी थी। वह भी बाहर। मैं बाहर नहीं जाना चाहती थी और यह
मुझे किसी कीमत पर यहां रखना नहीं चाहते थे। बार-बार एक वाक्य उन्माद-
ग्रस्त प्राणी की तरह दोहराते थे... 'पूरे चार सौ रुपये... पूरे चार सौ रुपये।' मैं
अपनी ममता की हत्या करके अपने मासूम बच्चे को उनकी एक तथाकथित
रिश्तेदार को सौंपकर चली गयी। उसका लिवर खराब हो गया। मां के बिना
बच्चा अनमना हो गया और फिर...." सरोज सुबक पड़ी। मां ने उसे सांत्वना
दी। उनकी आंखें भी भर आयीं।

उसे याद आया : एक बार 'क' के बड़े भाई की कर्णपुर में मृत्यु हो गयी
थी और इसने वहां जाने के पहले बड़ी तटस्थता से खीर खायी थी।

ओह! यह कैसा इन्सान है!

किस मिट्टी का बना है!

ऐसा आदमी तो हमारी सात पीढ़ियों में नहीं था!

मां को अपनी कोख पर संदेह होने लगा और अपने दूध पर लाज आने लगी।

वह दोपहर को ही गांव चली गयी। उसे यह अच्छी तरह मालूम था कि
इस पत्थर के आदमी को जरा भी दया नहीं आयेगी और वह उस पर गांव न
जाने पर बिगड़ेगा।

ईश्वरी बाबू के आने का समय हो रहा था।

सरोज बेमन जरा सजी-सँवरी। उसका दुखी मन समन्दर में लोहे के टुकड़े

की तरह डूबा हुआ था। सच, वह भी इस पत्थर के आदमी को सहती आ रही है। क्यों सहती आ रही है ? यह आदमी जो उसका पति कहलाता है, जिसके साथ उसने सात फेरे खाये हैं, कुछ वचन दिये हैं · · 'क्या उसके जीवन, उसकी भावनाओं व इच्छाओं से महान है ? वह उससे अलग क्यों नहीं हो जाती ? इन बन्धनों को तोड़ क्यों नहीं डालती ? इन रूढ़ियों, परम्पराओं और सम्बन्धों को तोड़ क्यों नहीं डालती ?

प्रश्न पर प्रश्न !

'वह भीतर ही भीतर पिघल गयी। सोचने लगी''''यह उसका पति उसका उपयोग केवल यौन-तृप्ति और पैसा कमाने के लिए करता है। पैसों के सामने तो वह सब कुछ गौण समझने लगता है। दमड़ी के सामने चमड़ी का कोई महत्व नहीं।

एक बार उसने उससे पूछा था, 'अजी, यदि मैं किसी से प्रेम कर लूं तो ?'

'कर लो।'

'मेरा उससे शारीरिक सम्बन्ध हो जाय तो ?'

'तो क्या हुआ ?' वह अत्यन्त ही सहज स्वर में बोला, 'लेकिन मुझे अपनी आंख के सामने कुछ भी सहन नहीं होता। पीठ-पीछे तुम जो चाहो सो करो, पर एक 'बात' का ख्याल रखो कि उससे अपने को फायदा होना चाहिए।' वह खुशी में चटकता हुआ बोला, 'जैसा अपन ने मिस्टर गुलाटी के संदर्भ में किया था। वह अपने घर दो-चार बार आया तो उसने मुझे साधारण क्लर्क से एकाउण्ट क्लर्क बना दिया। अरे वह वनमाली बाबू ने तो झूठे-सच्चे कागज बनवाकर तुम्हारी बदली यहां करवा दी।''''और ईश्वरी बाबू तुम्हें आसमान में पहुंचा देंगे। सीनियर्टी का गला घोंटकर तुम्हें''''हमारी कितनी इनरम बढ़ जायेगी।''''फिर हम पैसे वाले''''

तब सरोज को बाहों में भरता हुआ उसका पति एक दलाल लगा, एक मरी गैरत का का-पुरुष ! उसे घिन्न-सी हुई और उसे उसके रोम-रोम से बदबू-सी आती हुई लगी।

पर वह भी इतनी 'का-नारी' थी कि उससे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकती। अपने अन्तस् के विद्रोह को वह चाहकर भी प्रकट नहीं कर सकती। कहीं कोई प्रबल दुर्बलता उसमे छुपी हुई थी। यदि ऐसा नहीं था तो वह फिर क्यों उसके कठोर व खलनायकी हुक्म के सामने समर्पित हो जाती है ?

वह अपना आत्म-विश्लेषण करती रही। उसकी छह वर्षीय लड़की कब आकर उससे रोटी मांगने लगी, उसे नहीं मालूम !

जब उसने उसे झिंझोड़ा तब वह चौंकी और उसने अपनी बेटी को साग-रोटी दी। वह छत की सीढ़ियों पर बैठकर खाने लगी।

उसने घड़ी की ओर देखा।

छह बजने वाले थे। उसने यन्त्रवत् कमरे की एक एक चीज को व्यवस्थित किया। पलंग के चादर को बदला। फिर वह एक उपन्यास 'अलग-अलग आकृतियां' लेकर पढ़ने लगी।

चंद पल सरक गये।

एकाएक दरवाजा खटखटाने की आवाज हुई।

उसने अपनी साड़ी को व्यवस्थित करके दरवाजा खोला। ईश्वरी बाबू था। सफेद पैंट शर्ट में, आंखों पर चश्मा, अजीब-सी आकृति।

जनानिया आवाज में बोला, 'मिस्टर 'क' हैं!'

'जी नहीं।'

'कब तक आयेंगे?'

'पता नहीं।'

एक चुप-चुप ठहराव!

ईश्वरी बाबू सीढ़ियों के नीचे खड़ा था और वह दरवाजे के बीच थमी हुई थी।

ईश्वरी ने अपने ललाट पर बल डालते हुए कहा, 'वे कुछ कह नहीं गये?'

सब कुछ जानते हुए भी सरोज अनजान बनी रही। वह नहीं जानती कि उसके भीतर कौन आज बगावत कर रहा है! कौन सबला जन्म गयी है जो स्थितियों के विरुद्ध चल रही है!

'नहीं तो!' उसने बहुत छोटा-सा उत्तर दिया।

'ओह! उन्हें कहना कि ईश्वरी बाबू आये थे।'

सरोज ने देखा कि ईश्वरी बाबू को पसीना आ गया है। उसे प्रसन्नता का अनुभव हुआ। वह मन ही मन दुष्टता से मुसकरायी थी।

ईश्वरी चला गया।

उसने दरवाजा बंद कर लिया।

कुछ अन्तराल के बाद फिर दरवाजा खटखटाया गया। उसने खोला, 'क' था। उसने व्यग्रता से पूछा, 'ईश्वरी बाबू नहीं आये?'

'आये थे।'

'रुके नहीं?'

'नहीं।'

'क्यों?'

'मैंने उन्हें आपकी अनुपस्थिति में रोकना ठीक नहीं समझा। वे उदास-उदास से लौट गये।'

'क्या बकती हो ? तुमने उन्हें रोका नहीं।' 'क' एकदम जोर से चीखा। उसकी आंखें जल्लाद की तरह हिंसक हो गयीं। उसके मुंह की एक आवाज निकली ''तत्-तत् तत् !'

सरोज भयभीत हो गयी।

वह आहिस्ता-आहिस्ता आंगन की ओर सरकती हुई कमरे की ओर आ गयी।

वह फिर भड़का, 'तुम जानबूझकर मेरा अपमान कराना चाहती हो। मेरे किये-कराये पर पानी फेरना चाहती हो।'

सरोज भय के मारे बोल नहीं पायी।

बड़ी कठिनता से 'थूक' निगलती हुई वह बोली, 'मैंने अच्छा नहीं समझा। उनकी नीयत....'

'नीयत ' क्या वह तुम्हें खा जाते ? तुम्हे जान से मार डालते ?'

'लेकिन मैं यह सब अब बर्दाश्त नही कर सकती। मैं भी इन्सान हूं, कठपुतली नहीं।'

'कठपुतली की बच्ची !'

वह हत्यारे की तरह आगे बढ़ा। उसकी आकृति क्रूर हो गयी थी, आंखें अंगारे।

'मुझे....मुझे....।'

एक चांटा !

'साली, मुझे 'अपमानित' करना चाहती है ! मेरी स्कीम फेल कराना चाहती है !... पूरे चार सौ रुपयों का महावारी घाटा !'

और उसने तड़ातड़ तीन-चार चांटे मार दिये। वह हतप्रभ-सी उसे देखती रही।

वह कांप रहा था।

सरोज को लगा कि वह अजीब व अपरिचित आदमी हो गया है !

उसकी मासूम बच्ची चुपचाप कहीं सिमट गयी।

क्षणिक मौन !

'तुमने मेरे हुक्म को क्यों नहीं माना, आखिर मैं तुम्हारा पति हूं।' वह पश्चात्ताप करता हुआ बोला, 'खुद अपनी सहेलियों के खसमों के साथ सिनेमा देखती रहती हो, उनकी गैर-हाजिरी में घंटों उनके पतियों से गप्पें लड़ाती रहती हो और मेरे मेहमान को...!'

'मैं किस सहेली के पति के साथ सिनेमा गयी ?' उसने रोते हुए कहा।

'इस महावीर के बच्चे के साथ · ? क्या मैं झूठ बोलता हूं ! तुम जा
हो कि मैं अपने चारों ओर देखता नहीं हूं?'

'वह तो मेरा भाई समान····!'

वह बीच में ही बोला, 'अरे रहने भी दो यह नाटक ! आज के भाई-
को कौन नही जानता ?····सब साले एक्टर हैं। वह अपनी सगी बहन को
नही सिनेमा ले जाता ? बोल····'

सरोज बोली नही, वह पलंग पर पडी-पड़ी रोने लगी।

वह छत की ओर देखकर बोला, 'तुम कहां-कहां मरती हो, मेरी बला
मैंने तो तुम्हें पहले ही कह दिया था कि मेरे पीठ-पीछे तुम चाहे जो करो।'

वह रोती रही।

अचानक 'क' बदल गया। एकदम सहज हो गया जैसे किसी ने उ
जादू की डण्डी फिरा दी हो।

वह सरोज के पास आया। उसके सिर पर हाथ फेरकर बोला, 'अब
भी अपने इस गुस्से को।··· लो तुमसे माफी मागता हूं।'····वह रोती
उसने उसके आंसू पोछकर पुनः कहा, 'लो तुम्हारे पाव पकड़ता हूं····।' सरो
पांव नही छूने दिये।

वह रिरियाता हुआ बोला, 'सुनो सरोज, अब मुझे माफ कर दो; अ
हाथ मुंह धोकर तैयार हो जाओ। मैं ईश्वरी बाबू को बुलाकर लाता हूं।
सारा मामला तय है। मैं किसी भी तरह उन्हें ले आऊंगा !'··· पुच····
उसने उसे बच्चे की तरह पुचकारा। स्वयं उठता हुआ बोला, 'बड़ी अच
न ! बस तैयार हो जाओ, मैं अभी आया।....प्लीज !'

सरोज न देखा। उसे लगा कि उसके सामने उसका पति नहीं, एक द
फरोश खड़ा है जिसके चेहरे पर एक दलाल के पल-पल बदलने वाले भाव हैं

वह घर से निकलता-निकलता फिर बोला, 'मैं अभी आया। ब
तैयार हो जाना··· जरा ठाट से।'

उसने उसे आंख मारी और वह घर से निकल गया।

विश्वामित्र की खोज

पन्द्रह अगस्त का दोपहर का समय था, लाल किले के तोरण द्वार पर सृष्टि सचालक ब्रह्मा, विष्णु और महेश व्याकुलता से प्रतीक्षारत नेत्रों से दूर सड़क पर देख रहे थे।

धूप तेज थी। महेश ने विष्णु भगवान के दुपट्टे का परदा कर लिया था, पर धूप का ताप उस झीने दुपट्टे से नहीं रुक रहा था। सब परेशान थे, सब चिंतित थे, दुखित थे।

अन्त में झल्ला कर ब्रह्माजी ने कहा, 'यह विश्वामित्र महान जड़ऋषि है। भगवान जाने बिना कहे-सुने कहां गायब हो जाता है! और उधर महात्माजी समस्त साधुओं का संगठन करके स्वर्ग में मांग कर रहे हैं कि हमें हमारा विश्वामित्र चाहिए। अलौकिक हैं ये परेशान करने वाले आधुनिक सिद्धान्त। यह न करें तो हड़ताल, वह न करें तो सत्याग्रह। कमबख्तों ने नाकों-दम कर रखा है।'

तभी बैंड बजने की आवाज आई : 'जन गण मन अधिनायक जय हे····'

विष्णु ने तुरन्त एक डोरी में अंकुश बांध कर नीचे लटका दिया। उनका कहना था कि वह होली में बच्चों की तरह इस अंकुश से प्रधान मन्त्री की टोपी ऊपर खींच लेंगे। जब वह यह चमत्कार देखेंगे तो तुरन्त ऊपर आएंगे। तब उनसे मांग की जाएगी कि हमें हमारा विश्वामित्र दो, स्वर्ग से भाग कर मृत्यु लोक में छिपा बैठा है, वरना आगामी चुनाव में आपकी पराजय निश्चित है।

तभी 'नारायण! नारायण!' की ध्वनि अलापते नारदजी पधारे।

आज उनका रंग ही बदला हुआ था। हवाई शर्ट, रेशमी पैंट, पम्प शू और गले में इंगलैंड की बनी हुई टाई। हाथ में वीणा की जगह वायलन। केवल उनका सिर मुंडन ही पहले जैसा था, वरना इस कलिकाल में उन्हें पहचानना अत्यन्त कठिन हो जाता, क्योंकि एक चेहरे के कई आदमी देखने को जो मिलते हैं।

त्रिदेवों ने एक साथ शीघ्रता से पूछा : 'क्यों नारद, विश्वामित्र का पता चला?'

"चल गया, महाराज, चल गया।"

"कहां पर?"

"बता रहा हूं, बता रहा हूं जरा सुस्ताने तो दीजिए।" कह कर नारदजी ... सांस लेने लग गए।

'अति शुभ समाचार! अति आनन्द! नारद को कोटिशः धन्यवाद।" वह

कर भगवान शंकर ने अपनी चिलम निकालकर अभिमान से कहा, "इस प्रसन्नता की बात पर दो दम गांजे के लग जायें।"

नारदजी ने तुरन्त शंकर की ओर मुंह से देखा—"आप इस पुरानी चिलम के पीछे क्यों पड़े हुए हैं! लीजिए, यह सिगरेट पीजिए।" नारद जी अंग्रेजी में बोले।

"हरे! हरे! हरे! यह क्या उठा लाया है तू? यह तो म्लेच्छों की चीज है। इसे छूना भी महापाप है। इसे हमसे दूर रख। और तू विदेशियों की भाषा बोलता है? तेरे जैसे व्यक्ति ही राष्ट्रभाषा के उत्थान में रोड़ा अटका रहे हैं।" भगवान शंकर ने अपना मुंह दूसरी ओर घुमा लिया।

नारदजी ने अपनी सफाई पेश की: "वर्तमान युग में जातिभेद मानने वाला शैतान कहलाता है, उसे लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं। और फिर आप तो समदृष्टि रखने वाले हैं।"

"सो तो है ही!" शंकरजी गुर्रा उठे। "पर सब पर नहीं, केवल अपनों पर। समझे? हमारी चिलम ही अच्छी, हम तो गांजा ही पियेंगे।"

भगवान ने नारदजी को समझाया: "व्यर्थ में समय नष्ट करना हम जैसे देवों के लिए श्रेयस्कर नहीं है, नारदजी। आप विश्वामित्र के बारे में अपनी विस्तृत समाचार प्रस्तुत करें।"

नारदजी सिगरेट का कश शान से खींचते हुए बोले, "मेरे आदरणीय देवों, सर्वप्रथम मैं शपथ ग्रहण करता हूं कि जो कहूंगा वह सत्य ही कहूंगा।"

"हमें तुम्हारा विश्वास है।" ब्रह्माजी ने कहा।

"मैं विश्वामित्र को ढूंढते-ढूंढते बीकानेर शहर में पहुंचा," नारदजी ने कथा प्रारम्भ की। "यह शहर रेगिस्तान में स्थित है और बड़ा ही शुष्क है। भांति-भांति के लोग वहां निवास करते हैं और भांति-भांति के धन्धों में लोग मस्त हैं। मैं भी भ्रमण करता करता कदोई बाजार में पहुंचा। देखता हूं कि शहर में एकाएक अद्भुत हलचल मच गई है। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कहीं से अत्यन्त शुभ समाचार मिला है।"

शंकर ने अपने गले के सांप का मदहोशी की अवस्था में चुंबन लेकर कहा, "अरे नारद, समाचार क्या होगा—किसी राजा के लड़का हुआ होगा।"

"नहीं।"

"नहीं, तो किसी रानी के हुआ होगा।"

"नहीं।"

"तो किसी राजकुमार के हुआ होगा।"

"नहीं, नहीं, नहीं!" नारदजी झल्ला पड़े।

'फिर हमारी समझ में किसी दासी के हुआ होगा। क्यों ब्रह्माजी ?"

"सत्य वचन है, शिवशम्भु।" ब्रह्माजी की आंखें सिगरेट पर जमी हुई थीं।

"सत्य वही है जो मैं कह रहा हूं", नारदजी ने अपने गले की टाई को कुछ ढीला करके कहा, "मैं हलचल का कारण ढूंढ़ने लगा कि मेरी नासिका के रध्रों में भुजिया सेव की भीनी-भीनी नमकीन सुगंध आई। भुजिया क्या थे—उसे मेवा ही जानिए। मेरे मुंह में तो पानी भर गया।"

भगवान शंकर खिलखिला कर हँस पड़े—"पानी भर आया तो खरीद क्यों नहीं लिया ?"

"बजट समाप्त हो चुका था। यह लक्ष्मी मां तो भगवान विष्णु के घर में ही तो है। हमारे मन की तो मन में ही रह गई। उस कमबख्त दुकानदार ने मेरा सूटबूट देखकर मेरे मन के भाव को तुरन्त ताड़ लिया कि इन साहब के पास ठनठन-गोपाल है और फुदक फुदक कर गर्दभ स्वर में अलापने लगा :

"बाबूजी की शान निराली,

दिल भी खाली, जेब भी खाली।

फिर भी अकड़ दिखाए

हो बाबूजी समझ न आए।

लारे लप्पा लारे लप्पा लाई रखदा"

नारदजी झूम-झूम कर गा रहे थे। उन्होंने जैसे ही गाना बन्द किया वैसे ही त्रिदेव चिल्ला पड़े : "वाह, वाह, वाह ! ऐसा नग्न सुन्दर गीत हमने किसी युग में नहीं सुना। सरल शब्दावली, स्पष्ट भाव और छलकती हुई तान। वाह, वाह !"

"भाई नारद," तांडवकारी शिव झूमते हुए बोले, "यह गीत तो हमें भी सिखा दो। पार्वती सुन कर मस्त हो जाएगी।"

शंकर की जनानी आवाज़ पर ब्रह्मा, विष्णु और नारदजी मुस्करा पड़े। शंकर उन्हें देख कर झेंप गए।

"झेंपने की कोई आवश्यकता नहीं है," नारदजी ने कहा। "यह गीत ही ऐसा है। इसमें जनता जनार्दन के मनोभाव है। यहां के फिल्म निर्माता का कहना है कि इससे भारतवर्ष के बच्चों का नैतिक पतन कभी भी नहीं हो सकता। हां, तो मैं उस दुकानदार की बात कह रहा था। उसी समय एक व्यक्ति ने आकर उस दुकानदार से कहा, 'सुना, गोगिया, गोगे दरवाजे के बाहर एक महान योगी आया हुआ है। वह नौ दिन से समाधि लगाए है। उसके दोनों हाथों में जुआर उग आया है। चलो, हम भी दर्शन कर आयें।

"जरूर जरूर। ऐसे महात्माओं के दर्शन इस कलिकाल में कहां होते हैं ! मैं अभी दुकान बन्द करके तुम्हारे साथ चलता हूं।"

ब्रह्माजी ने व्यंग्य किया—"इस बार फिर असुर बनने की इच्छा थी क्या?"

नारदजी भांप गए, पर यह सोच कर कि पुरानी बातें पुनः खुल न पा पावें उन्होंने कहना जारी किया "वह युवती अत्यन्त आकर्षण से योगीराज के दर्शन करते-करते उसने ज्यों ही उसके पांव छुए त्यों ही योगी ने अपनी आंखें खोल दीं।"

"आश्चर्य!" त्रिदेव नारदजी की ओर फटी हुई आंखों से देखकर साथ बोले। "पातकी कहीं का!"

"यह आरोप उस पर मत लगाइए। यह तो उसके जन्मजात संस्कारों का प्रभाव है।"

"कैसे?" विष्णु ने पूछा।

"पहले पूरी घटना तो सुनिए।" नारदजी आश्वस्त होकर बोले। "उस समय गुफा में कोई अन्य प्राणी नहीं था। युवती उस अलौकिक आत्मा के चरणों को दबाती रही। तब साधु ने साधुवादी स्वर में कहा, 'देवी! मैं ब्रह्मज्ञानी हूं, साक्षात ईश्वर हूं। अभी मेरा मन स्वर्ग में विचरण कर रहा था, पर तुम्हारे हृदय की कामना ने हमारी समाधि को भंग कर दिया है, तुम्हें क्या दुःख है?'

'फिर हमारी समझ में किसी दासी के हुआ होगा। क्यों ब्रह्माजी ?"

"सत्य वचन है, शिवशंभु।" ब्रह्माजी की आंखें सिगरेट पर जमी हुई थी।

"सत्य वही है जो मैं कह रहा हूं", नारदजी ने अपने गले की टाई को कुछ ढीला करके कहा, "मैं हलचल का कारण ढूंढने लगा कि मेरी नासिका के रध्रों में मुजिया सेव की भीनी-भीनी नमकीन सुगंध आई। मुजिया क्या थे—उसे मेवा ही जानिए। मेरे मुंह में तो पानी आ गया।"

भगवान शंकर खिलखिला कर हँस पड़े—"पानी भर आया तो खरीद क्यों नहीं लिया ?"

"बजट समाप्त हो चुका था। यह लक्ष्मी भी तो भगवान विष्णु के घर में ही तो है। हमारे मन की तो मन में ही रह गई। उस कमबख्त दुकानदार ने मेरा सूटबूट देखकर मेरे मन के भाव को तुरन्त ताड़ लिया कि इन साहब के पास ठनठन-गोपाल है और फुदक फुदक कर गर्दभ स्वर में अलापने लगा :

"बाबूजी की शान निराली,

दिल भी खाली, जेब भी खाली।

फिर भी अकड़ दिखाए

हो बाबूजी समझ न आए।

लारे लप्पा लारे लप्पा लाई रखदा"

नारदजी झूम-झूम कर गा रहे थे। उन्होंने जैसे ही गाना बन्द किया वैसे ही त्रिदेव चिल्ला पड़े : "वाह, वाह, वाह ! ऐसा नग्न सुन्दर गीत हमने किसी युग में नहीं सुना। सरल शब्दावली, स्पष्ट भाव और छलकती हुई तान। वाह, वाह !"

"भाई नारद," तांडवकारी शिव झूमते हुए बोले, "यह गीत तो हमें भी सिखा दो। पार्वती सुन कर मस्त हो जाएगी।"

शंकर की जनानी आवाज पर ब्रह्मा, विष्णु और नारदजी मुस्करा पड़े। शंकर उन्हें देख कर झेंप गए।

"झेंपने की कोई आवश्यकता नहीं है," नारदजी ने कहा। "यह गीत ही ऐसा है। इसमें जनता जनार्दन के मनोभाव हैं। यहां के फिल्म निर्माता का कहना है कि इससे भारतवर्ष के बच्चों का नैतिक पतन कभी भी नहीं हो सकता। हां, तो मैं उस दुकानदार की बात कह रहा था। उसी समय एक व्यक्ति ने आकर उस दुकानदार से कहा, 'सुना, गोगिया, गोगे दरवाजे के बाहर एक महान योगी आया हुआ है। वह तो दिन से समाधि लगाए है। उसके दोनों हाथों में जुआर उग आया है। चलो, हम भी दर्शन कर आयें।

"जरूर जरूर। ऐसे महात्माओं के दर्शन इस कलिकाल में कहां हैं ! मैं अभी दुकान बन्द करके तुम्हारे साथ चलता हूं।"

नारदजी ने कहा, "मेरी भी जिज्ञासा जाग्रत हुई। मैं भी उस ओर शीघ्रता से चरण उठाता हुआ चल पड़ा।"

"गोगे दरवाजे के बाहर एक बगीची थी, जहां मुख्य रूप से लोग सुबह शाम शौचादि से निवृत्त होने जाते हैं। वहां एक गुफा में महात्मा ने डेरा जमा रखा था। उसके हाथ में बारह वर्ष से जुआर उग आया था। एक आले में दीया जल रहा था, उसका प्रकाश सीधे महात्मा के भाल पर पड़ रहा था। चमकता हुआ भाल उसके तप की महिमा गा रहा था। उसकी समाधिस्थ काया के सम्मुख माया को एकत्रित करने के हेतु एक बड़ी थाली रखी हुई थी, जिसमें माया चमक रही थी।

"उस गुफा में दो दो व्यक्ति घूमने थे और शीघ्र ही उन्हें वापस लौट आना पड़ता था। मैं उस महान आत्मा की लीला का अधिक काल तक पुण्य उठाना चाहता था। इसलिए मैंने शिवजी की दी हुई चमत्कारी अंगूठी मुंह में रख ली। अब मैं किसी को नहीं दीख रहा था और मुझे सब दिखाई पड़ रहे थे।

"थोड़ी देर बाद मेरी दृष्टि एक अत्यन्त रूपवती, गजगामिनी, मन भावनी पर पड़ी, उसने रेशमी पीत वस्त्र पहन रखे थे, उन पीत वस्त्रों में उसका पीत रंग इस भांति मिल गया था जैसे नीर में क्षीर। उसके पांवों के नूपुरों से मधुर संगीत लहरी उत्पन्न हो रही थी, खंजन से नयनों में रति के लोचनों-सी मादकता, नाखूनों पर अरुणिमा का लेपन, क्या कहूं, महाराज, देखकर अपना मन भी पाप में पड़ गया।"

ब्रह्माजी ने व्यंग्य किया—"इस बार फिर लंगूर बनने की इच्छा थी क्या?"

नारदजी झेंप गए, पर यह सोच कर कि पुरानी बातें पुनः तूल न पा पायें उन्होंने कहना जारी किया "वह युवती अत्यन्त भावभक्ति से योगीराज के दर्शन करते-करते उसने ज्यों ही उसके पांव छुए त्यों ही योगी ने अपनी आंखें खोल दीं।"

"आश्चर्य!" त्रिदेव नारदजी की ओर फटी हुई आंखों से देखकर साथ बोले। "पाखण्डी कहीं का!"

"यह आरोप उस पर मत लगाइए। यह तो उसके जन्मजात संस्कारों का प्रभाव है।"

"कैसे?" विष्णु ने पूछा।

"पहले पूरी घटना तो सुनिए।" नारदजी आश्वस्त होकर बोले। "उस समय गुफा में कोई अन्य प्राणी नहीं था। युवती उस अलौकिक आत्मा के चरणों को दबाती रही। तब साधु ने साधुवादी स्वर में कहा, 'देवी! मैं ब्रह्मज्ञानी हूं, साक्षात ईश्वर हूं। अभी मेरा मन स्वर्ग में विचरण कर रहा था, पर तुम्हारे हृदय की कामना ने हमारी समाधि को भंग कर दिया है, तुम्हें क्या दुःख है?'

"फिर हमारी समझ में किसी दासी के हुआ होगा। क्यों ब्रह्माजी ?"

"सत्य वचन है, शिवशभु।" ब्रह्माजी की आंखें सिगरेट पर जमी हुई थीं।

"सत्य वही है जो मैं कह रहा हूं", नारदजी ने अपने गले की टाई को कुछ ढीला करके कहा, "मैं हलचल का कारण ढूंढने लगा कि मेरी नासिका के रंध्रों में भुजिया सेव की भीनी-भीनी नमकीन सुगंध आई। भुजिया क्या थे—उसे मेवा ही जानिए। मेरे मुंह में तो पानी आ गया।"

भगवान शंकर खिलखिला कर हँस पड़े—"पानी भर आया तो खरीद क्यों नहीं लिया ?"

"बजट समाप्त हो चुका था। यह लक्ष्मी भी तो भगवान विष्णु के घर में ही तो है। हमारे मन की तो मन में ही रह गई। उस कमबख्त दुकानदार ने मेरा सूटबूट देखकर मेरे मन के भाव को तुरन्त ताड़ लिया कि इन साहब के पास ठनठन-गोपाल है और फुदक फुदक कर गर्दभ स्वर में अलापने लगा :

"बाबूजी की शान निराली,
दिल भी खाली, जेब भी खाली।
फिर भी अकड़ दिखाए
हो बाबूजी समझ न आए।
लारे लप्पा लारे लप्पा लाई रखदा"

नारदजी झूम-झूम कर गा रहे थे। उन्होंने जैसे ही गाना बन्द किया वैसे ही त्रिदेव चिल्ला पड़े : "वाह, वाह, वाह ! ऐसा नग्न सुन्दर गीत हमने किसी युग में नहीं सुना। सरल शब्दावली, स्पष्ट भाव और छलकती हुई तान। वाह, वाह !"

"भाई नारद," तांडवकारी शिव झूमते हुए बोले, "यह गीत तो हमें भी सिखा दो। पार्वती सुन कर मस्त हो जाएगी।"

शंकर की जनानी आवाज पर ब्रह्मा, विष्णु और नारदजी मुस्करा पड़े। शंकर उन्हें देख कर झेंप गए।

"झेंपने की कोई आवश्यकता नहीं है," नारदजी ने कहा। "यह गीत ही ऐसा है। इसमें जनता जनार्दन के मनोभाव हैं। यहां के फिल्म निर्माता का कहना है कि इससे भारतवर्ष के बच्चों का नैतिक पतन कभी भी नहीं हो सकता। हां, तो मैं उस दुकानदार की बात कह रहा था। तभी समय एक व्यक्ति ने आकर उस दुकानदार से कहा, 'सुना, गोपिया, गांव दरवाजे के बाहर एक महान योगी आया हुआ है। वह नौ दिन से समाधि लगाए है। उसके दोनों हाथों में जुआर उग आया है। चलो, हम भी दर्शन कर आवें।

"जरूर जरूर। ऐसे महात्माओं के दर्शन इस कलियुग में कहां होते हैं ! मैं अभी दुकान बन्द करके तुम्हारे साथ चलता हूं।"

'उस गुफा के द्वार पर एक [illegible] युवक के और [illegible] ही उन्हें वन्दन और ध्यान करता था। मैं उस महान आत्मा की भीतर का दर्शन [illegible] पूर्ण उठाना चाहता था। [illegible] दिन [illegible] की ही हुई [illegible] [illegible] [illegible] थी। पर मैं किसी को नहीं दीख रहा था और मुझे सब दिखाई पड़ रहे थे।

'वाह! हर बार मेरी दृष्टि उस अत्यन्त रूपवती लावण्यमयी, मन भावनी पर पड़ी, उसके केशों की [illegible] [illegible] [illegible] थे, उन दीर्घ केशों में उसका [illegible] इस प्रकार छिप गया था जैसे मेघ में चाँद। उसके गालों के अधरों से मधुर संगीत लहरी प्रस्फुट हो रही थी, रक्तिम कपोलों में रति के सौन्दर्य-सी मादकता, आंखों पर कालिमा का मिलन, क्या कहूं, महाराज, ईश्वर अथवा मन की बात में पड़ गया।"

ब्रह्माजी ने व्यंग्य किया–"इस बार फिर मयूर बनने की इच्छा थी क्या?"

नारदजी झेंप गए, पर यह सोच कर कि पुरानी बातें पुनः शुरू न हो पायें उन्होंने कहना जारी किया "वह युवती अत्यन्त भावभक्ति से योगीराज के दर्शन करते-करते उनके ज्यों ही उनके पांव छुए त्यों ही योगी ने अपनी आंखें खोल दीं।"

"आश्चर्य!" त्रिदेव नारदजी की ओर फटी हुई आंखों से देखकर साथ बोले। "पाखण्डी नहीं था!"

"यह आरोप उस पर मत लगाइए। यह तो उसके जन्मजात संस्कारों का प्रभाव है।"

"कैसे?" विष्णु ने पूछा।

"पहले पूरी घटना तो सुनिए।" नारदजी आश्वस्त होकर बोले। "उस समय गुफा में कोई अन्य प्राणी नहीं था। युवती उस अलौकिक आत्मा के चरणों को दबाती रही। तब साधु ने साधुवादी स्वर में कहा, 'देवी! मैं ब्रह्मज्ञानी हूं, साक्षात ईश्वर हूं। अभी मेरा मन स्वर्ग में विचरण कर रहा था, पर तुम्हारे हृदय की कामना ने हमारी समाधि को भंग कर दिया है, तुम्हें क्या दुःख है?'

युवती का अंग-प्रत्यंग पुलकित हो उठा । अधरों पर मन्द मुसकान लाती हुई वह धीरे से बोली, "प्रभु, मैं एक लखपती की अत्यन्त लाडली बहू हूं । जीवन का हर सुख मुझे है, पर न जाने किस पर के कारण मैं बांझ हूं । भगवान, मैं पुत्र का मुंह देखना चाहती हू । उसके बिना मेरा जीवन नरक के समान है ।"

"आश्चर्य !" योगी ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखें फाड़ कर फटे स्वर में कहा "तुम जैसी सती नारी के सन्तान न होना महान आश्चर्य की बात है । देवी, मैं अपने ब्रह्म-तेज से दुराचारिणी के भी सन्तान उत्पन्न करा सकता हूं ।"

"महाराज, यदि मेरे सन्तान हो गई तो मैं आपको मालामाल कर दूंगी । अपने पुत्र का नाम आपके नाम पर साधू ही रखूंगी ।" कह कर युवती साधू के चरण जोर से दबाने लगी । साधू को रोमांच हो रहा था । उसे गुदगुदी सी हो रही थी ।

"जरा और जोर से दबाओ, तुम्हारा कल्याण होगा" कल्याण होगा । दबाती जाओ ।" उत्तेजना के मारे योगी की आवाज कांप रही थी, युवती उसे विचित्र-दृष्टि से देख रही थी, बड़ी मुश्किल से योगी ने अपने को सम्भाला, 'जरा हट जाओ, हाँ, अब ध्यान देकर सुनो, मैं वह प्रचण्ड तेज वाला ऋषि हू, जिसने एक अप्सरा को, एक ऐसी पुत्री का वरदान दिया जिसका बेटा चक्रवर्ती सम्राट बना ।'

'सारी पृथ्वी का राजा !' युवती की आंखें आश्चर्य से स्थिर हो गयीं ।

'हाँ ।'

'वह अप्सरा कौन थी, महाराज ?'

"योगी ने अहं से कहा, 'वह अप्सरा मेनका थी,—इन्द्र की अप्सरा । उसी के लड़के भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा, देवी ।"

शंकर ने कहा, "पहचान गए, नारद, पहचान गए उस निठल्ले को ।"

ब्रह्मा ने तेज स्वर में कहा, "मैं तो पहले ही जानता था कि वह किसी सुन्दरी के चक्र मे होगा ।"

नारदजी ने उन दोनों को चुप करके कहा, "विश्वामित्र ने कहा, 'हे सुन्दरी, आज रात को जब समस्त भक्त यहां आना बन्द कर दें, तो तुम आना । हां, एक बात का ध्यान रखना कि विश्वामित्र की कथा को गम्भीरतापूर्वक पढ़कर आना ।' इसके बाद विश्वामित्र ने उसे चेतावनी दी : 'यदि तुमने किसी से भी यह कह दिया कि योगीराज ने मुझसे वार्ता की है तो हम तुम्हें भयकर शाप दे देंगे जिससे तुम्हारे कभी भी सन्तान नहीं होगी ।'

'युवती ने एक बार फिर उनके पैर दबाए और चली गई ।"

इस कथा मे सबको आनन्द आ रहा था, अतः त्रिदेव अपने मन के अन्दर

को रोके कथा सुन रहे थे, नारदजी सिगरेट खतम कर चुके थे, उसे बुझाते हुए उन्होंने पुनः कहना प्रारम्भ किया :

'मैं अपने हृदय के बवंडर को नहीं रोक सका। मैंने उस अंगूठी को मुंह से बाहर निकाला और विश्वामित्र का कंधा पकड़ कर प्यार से पूछा, महामुनि, इस सेवक को पहचाना?" चौंक कर विश्वामित्र बोले, "कौन—नारद भाई! तुम यहां कैसे?"

"भाई, तुम्हें खोजने। चुपके से कहां लोप हो गये थे?"

"लोप! मैं तो जहां सौन्दर्य देखता हूं, वहां सर्वस्व विस्मृत करके भाग उठता हूं, तुम तो जानते हो, बंधु—राजा हूं न, अपने संस्कारों को शीघ्र नहीं त्याग सकता।"

"पर, भैया, तुम यह कैसे जान जाते हो कि आने वाली युवती सुन्दर है या नहीं?" मैंने उत्सुकता से पूछा। "तुम्हारी तो आंखें बन्द थीं।"

"विश्वामित्र ने विहंस कर कहा, "मेरी पद्मपालकी के नीचे एक रस्सी बंधी हुई है। उस रस्सी को बाहर मेरा चेला जब दो बार खींचता है तो मैं इस रहस्य को जान जाता हूं।"

"वाह, भाई, वाह! क्या ठाठ हैं तुम्हारे!"

"तभी तीन युवकों ने गुफा में प्रवेश किया। मैंने तुरन्त अंगूठी अपने मुंह में रखी और लोप हो गया। विश्वामित्र ने तुरन्त समाधि लगाई। ये लड़के बड़े उद्दंड और आवारा जान पड़ते थे। पहले उन तीनों ने योगीराज को पाखण्डी, घूर्त, बदमाश, ढोंगी की उपमायें प्रदान कीं और अन्त में उन्होंने तय किया कि इस की दाढ़ी में आग लगा देनी चाहिए।"

"यह सुनकर मैं तो सिर से पांव तक कांप गया—आज योगीराज की खैर नहीं।"

"विश्वामित्र और जड़ बनकर बैठ गए। लड़के धर्म-विरुद्ध चर्चा कर रहे थे। एक लड़के ने बढ़ कर थाली में से दस-दस के पांच नोट उठाकर अपनी जेब में रख लिए। फिर बोला, 'आज तफरीह जरा प्रेम से करेंगे।"

"तभी दूसरे ने इधर-उधर ताक कर विश्वामित्र की दाढ़ी को माचिस दिखा दी, बस, फिर क्या था! जुधार फेंककर साधू बाबा भागे, लोगों ने समझा कि यह कोई साधू बाबा का चमत्कार है, इसलिए वे आग बुझाने की चिन्ता छोड़, हाथ जोड़कर उनकी विनती करने लगे, पर थोड़ी देर तक जब योगीराज का रोना चीखना बन्द नहीं [illegible] I, त [illegible] ोग सत्य के तथ्य से परिचित हुए।"

नारदजी ने त्रि [illegible] अपने गालों पर पूरु लगाकर दामुओ का प्रदर्शन [illegible] कहा है कि अब साधुजी की दाढ़ी

में बीच-बीच में गड्ढे रहेंगे, यह सुनकर विश्वामित्र बच्चे की तरह बिलख पड़े।"

"रोने दो, रोने दो, जैसा कर्म करेंगे, वैसा ही फल पायेंगे।"

"यह कितनी हेय बात है कि जहां नारी देखो, वहां जप-तप भूलकर पापाचार करने उतर पड़े। हे राम!" ब्रह्मा ने पश्चाताप प्रकट किया।

विष्णु ने कुछ कहने के लिए अपना मुंह खोला ही था कि नीचे से जोर की आवाजें आईं। "पन्द्रह अगस्त जिंदाबाद!" "महात्मा गांधी जी की जय!" 'हमारे नेता जिंदाबाद!'

विष्णु भगवान गांधीजी की जय सुनकर पांव पटक कर बोले, 'हमारा अपमान! हमारे होते हुए पृथ्वी के प्राणी की जय-जयकार! हम गांधीजी पर मानहानि का मामला स्वर्ग में चलायेंगे कि देवताओं के होते हुए भी उनकी जयजयकार क्यों?'

नारदजी ने वायलन के तारों को झनझना कर निवेदन किया, 'अब युग बदल चुका है, अब उसकी जयकार होगी जो जनता-जनार्दन में लम्बे भाषण देना जानता है, सुन्दर योजनायें बनाना जानता है, शहीदों के नाम की दुहाई देकर अपना उल्लू सीधा करना जानता है, यह अपना भारत वर्ष है, जहां हाथ में जुआर उगाकर ढोंगी सब को चकमा दे सकता है, वहां जय-जयकार कराना बिल्कुल सरल बात है। अच्छा, बन्दे को आज्ञा दीजिए, अबेर हो रही है, प्रणाम!" नारदजी वायलन पर 'ऐ मेरे दिल कहीं और चल, गम की दुनियां से दिल भर गया....' की धुन बजाते-बजाते बिड़ला मन्दिर की ओर प्रस्थान कर गए।

□

दुर्वासा का पहला वरदान

स्टेशन रोड पर स्थित छोटू-मोटू जोशी की दुकान पर गेरुआ वस्त्र पहने हुए एक साधु महाराज ने अपनी भोंपू जैसी आवाज़ में कहा 'क्यों भक्त ! बारह बज गए ?'

सरदार जी बारह का नाम सुनते ही इस तरह भड़के जैसे लाल कपड़े से बैल भड़कता है । तुनक कर बोले, 'ऐ साधु महाराज ! तू अपनी जबान के लगाम लगायेगा या…।'

साधु महाराज अपनी छोटी-छोटी आंखों को विचित्र ढंग से मिच-मिचाते हुए लम्बे स्वर में बोले 'वत्स ! लाल-पीला क्यों हो रहा है ? हमने कौनसा अप-राध किया ? अरे भाई बस, इतना ही पूछा कि बारह बज गए ।'

'अबे मैं कहता हूं अपनी जबान के लगाम लगा, नहीं तो सत्त श्री की मेहर-बानी से एक झापड़ में मुंह तोड़ दूंगा ।'

सरदार जी बिकराल से हो उठे । मुक्का तन गया । दूकानदार ने बिगड़ कर साधु बाबा को डांटा—'ऐ फक्कड़ का बेटा, भाग यहां से नहीं तो भक्ति का सारा नशा उतार दूंगा ।' फिर वह सरदार जी की ओर मुखातिब होकर बोला, 'क्या करें साहब, ये साधु तो कुत्तों से भी गए गुजरे हो गए हैं । काटते रहते हैं सब को ।'

और बाबा कमण्डल हिलाते हुए कहते जा रहे थे, 'ऐसा जीव इस भूमण्डल मे नहीं देखा । जी चाहता है कि श्राप देकर इसे पत्थर बना दूं, पर…।' क्रोध के मारे उनकी मूंछें कत्थक नृत्य कर रही थीं । आंखें लाल हो उठी थीं, लेकिन क्या रहस्य था कि वे अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाए ?

दोपहर, चिलचिलाती धूप । आग-सी लू और हमारे महाराज भंग पिए शिवजी के बैल की भांति उन्मत्त घूम रहे थे, शहर की गलियों में । बांग लगा रहे थे, 'है कोई भक्त जो इस भूखी-प्यासी आत्मा के दो सवाल पूरा कर दे ।'

तभी बाबा ने सुना कि एक लड़का धीरे-धीरे एक गीत गुनगुनाता जा रहा है—ना जाने किस भेष मे बाबा मिल जाये भगवान रे ।

बाबा ने सुना, विचारा—आदमी भक्त-हृदय का जान पड़ता है । बाबा ने पास जाकर पुकारा, 'बच्चा, ए बच्चा ।'

बाबा जी रुक गए। हाथ जोड़कर विनम्र स्वर में सिर झुकाते हुए बोले, 'कहिए बाबा जी, हम बच्चे को क्या आज्ञा है।'

'साधु दो रोज से भूखा है।'

'तो किसी होटल में जाइये। वहां बहुत खाना पड़ा है। चावल से लेकर कबाब तक।'

'पर पैसा!'

'पैसा! पैसा बैंक में, कहो तो कंगाल बैंक का चैक काट दूं?' इतना कह लड़का इतने जोर से हंसा कि बाबा झेंप गए और वहां से टरक गए। बार-बार कह रहे थे, कलियुग घोर कलियुग...।'

तंग गली सड़ांध से भरी हुई थी। भूख और प्यास के मारे बाबा जी के पेट में चूहे एक एक हाथ ऊंची छलांगें मार रहे थे। अचानक फिल्म संसार की प्रसिद्ध प्लेबैक गायिका लतामंगेशकर की धुन की तरह किसी युवती का स्वर उन्हें सुनाई पड़ा, —'साधू महाराज, साधू महाराज।'

साधू महाराज ने पीछे की ओर देखा तो सन्न। मन में तूफान उठा और खोपड़ी में एक शब्द गूंज उठा—शकुन्तला, साक्षात शकुन्तला, वही रूप, वही आंखें, वही तोते सी नाक, वही चांद सा गोरा चेहरा। दुर्वासा वह तेरी शकुन्तला है!

और बाबा अर्थात् दुर्वासा जी अकड़ गए। भारी कदम उठाते हुए उसके समीप गये। ऊंचे स्वर में बोले, 'कहो बेटी।'

'महाराज आटा...।'

'क्या कहा, आटा?' आंखों को एकदम बदलते हुए दुर्वासा बोले 'हम क्या ऐरे नत्थू खेरे खोर साधू हैं, मंगते हैं या भिखारी? बेटी, यह तुम हमारा अपमान कर रही हो। हम ब्रह्माण्ड को जानने वाले परम ज्ञानी, योगी, महाऋषि दुर्वासा हैं। कल्याण चाहती हो तो भोजन कराओ। खाली आटा तो स्त्रियों के लिए है। हम छूतछात को छोड़कर, मन को मन से जोड़ते हैं।

'क्षमा कर दीजिए महाराज...।'

'क्षमा, तो ले देख...।'

दुर्वासा ने अपनी झोली में से सोने का ढेर निकालकर रख दिया और कहा, 'यह सतयुगी सोना है। सन्दूक में बन्द कर रख देगी, और तीन दिन के बाद खोलेगी तो वह सन्दूक कभी भी खाली नहीं होगी। कुबेर का खजाना हो जायेगा। ले ले बेटी ले, फिर पछताना न पड़े।'

दुर्वासा ने नेत्र बन्द कर लिए। उनके सूखे होंठ फड़क रहे थे जैसे किसी मन्त्र का जप कर रहे हों।

स्त्री ने अपनी आंखों के सामने स्वर्ण के चमकते ढेर को देखा तो चकाचौंध-

उन्होंने अपनी झोली का मुंह आगे बढ़ाया। स्त्री ने देखा तो सन्न रह गई। झोली सोने की भरी हुई थी। वह भाव विह्वल हो गई। झटपट उसने दुर्वासा महाराज के पांव पकड़ लिए। दुर्वासा रोदन भरे स्वर में धीरे-धीरे बोले—'बेटी हम ठहरे सन्यासी, त्यागी, योगी, हमें लक्ष्मी से क्या काम? हम यदि चन्द्र मस्तक हैं, तो यह राहु की जीभ, और हम यदि उत्थान हैं, तो यह पतन। इसलिए बेटी हम तुम्हें यह स्वर्ण-दान कर रहे हैं। तुम सोचोगी कि हम अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं? नहीं नहीं, हम तो जगत का कल्याण कर अपने पिछले जन्म का प्रायश्चित कर रहे हैं। उठ बेटी और ध्यान से देख मेरी ओर.....।' स्त्री ने अपनी दृष्टि दुर्वासा पर टिका दी। उसने ध्यान से देखा कि दुर्वासा की दाढ़ी तो सफेद है और बाल काले-काले। वह उन्हें बड़े ध्यान से देखने लगी।

'अपने जन्म में मैं अत्यन्त क्रोधी था। ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने अब मुझे इस पृथ्वी पर इसलिए भेजा है कि मैं यहां दुखियों की सेवा कर उनका आशीर्वाद लूं।' इतना कह दुर्वासा महाराज ने आज्ञा दी—'जा बेटी! यह सारा सोना ले जा और इसके बदले हमें सिर्फ दो रोटी और एक छोटा-मोटा जेवर ला दे। क्योंकि परम ब्रह्म परमात्मा का कहना है कि वह जेवर जैसे ही इस झोली में पड़ेगा वैसे ही तेरा सोना दुगुना हो जायेगा। तू मालामाल हो जायेगी।'

'मैं अभी लाई।' स्त्री उत्साह से चली गई पर उसके मस्तिष्क में दुर्वासा की सफेद दाढ़ी और काले बाल कुतूहल बनकर घूमने लगे। ऐसी विचित्रता उसने बहुत ही कम देखी थी कि बाल काले और दाढ़ी सफेद। अतः आते ही वह उत्सुकता में हाथ जोड़ कर बोली—'महाराज अपराध क्षमा हो, आपके बाल काले और दाढ़ी सफेद क्यों?' स्त्री डर गई।

'दाढ़ी, दाढ़ी।' दुर्वासा जी विचलित हो उठे। उनके दोनों हाथ यन्त्र की भांति बार-बार दाढ़ी पर आने लगे। खिसियाते हुए बोले—'यह दाढ़ी? यह दाढ़ी भी तो देवताओं का अभिशाप है। विष्णु भगवान ने मुझे श्राप दिया था—जा क्रोधी, तेरी दाढ़ी सफेद रहेगी। बस सफेद हो गई। पर ये बाल प्रकृति का विरोध नहीं कर सके। मैं अपने बालों को सफेद कर सकता हूं पर देवताओं का श्राप भी तो वरदान होता है इसलिए चुप हूं।'

स्त्री के विश्वास को इससे आस्था नहीं मिली। तब दुर्वासा ऋषि ने अकड़ कर जीवन वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया।

—आज से तेईस साल पहले गांव कोलासा में मेरा जन्म हुआ याने महर्षि दुर्वासा का अवतार हुआ था बेटी।

दुर्वासा के जन्म पर गांव में सनसनी फैल गई। क्योंकि अवतारों के जन्म पर सनसनी पैदा होती ही है। पतञ्जलि का जन्म एक ब्राह्मण की अंजली से हुआ, तो हल्ला। महामुनि अगस्त्य का घोड़े से, महाराज इक्ष्वाकु का जन्म मनुजी के पेट से अर्थात आदमी के पेट से। मतलब यह है कि मनु जी ने छींका और इक्ष्वाकु जी टपके। तो बेटी उनके, जन्म से सारे गाव में हलचल मच गई तो आश्चर्य ही क्या ? फिर मैं भी तो अवतार ही था। लोग काम-धन्धा छोड़-छोड कर उनके घर की ओर भागे चले आ रहे थे। भीड़ में एक ही शब्द गूंज रहा था—विचित्र '' विचित्र'''' विचित्र महाविचित्र।

उनके घर के आगे अपार जन समूह था। आपस में कानाफूसी का बाजार गर्म था। औरतें आपस में बातचीत कर रही थीं।

'ऐसा बच्चा आज तक पैदा नहीं हुआ ?'

'उई मां, दाढ़ी है।'

'सींग तो नही है।'

जोर का अट्टहास गूंज उठा।

'अच्छा ही हुआ चमेली, कि सींग नही है वर्ना औरतजात के राक्षस पैदा हो जाता।'

भीड़ के इस अनर्गल प्रलाप से दुर्वासा ऋषि के पिताजी परेशान हो उठे। वह किस किस की जुबान पकड़ते ? लाचार, उन्होंने गांव के ठाकुर को खबर दी। ठाकुर साहब दो कारिन्दों के साथ पधारे। उनके आते ही भीड़ छिन्न-भिन्न हो गई। ठाकुर ने गम्भीरता से कहा—'मेरे ख्याल से बच्चा अधिक देर तक नहीं जियेगा।'

'क्यों ठाकुर साहब, मेरे तो बुढ़ौती में लड़का हुआ है।'

'भागीरथ ! तू अपनी तपस्या को निष्फल ही समझ। एक बार मैं शहर गया था, वहा डाक्टरों ने ऐसे बच्चों को शीशे के बर्तनों में सजाकर रखा है।'

'हे ईश्वर ! तू मेरे लाल की रक्षा करना। छोटी-सी दाढ़ी मूंछ तो बच्चे के मुख पर बहुत अच्छी लगती है।'

वास्तव में भगवान ने उसकी प्रार्थना सुन ली। दुर्वासा मरे नहीं। मरते भी कैसे ? भगवान के शाप से ही तो पैदा हुए थे। दाढ़ी मूंछ की जो नई बात थी, वह नौ दिन रही और बहुत अधिक उसे याद किया तेरह दिन। जब न तो सींग ही निकले और दाढ़ी ही बढ़ी। तब बात आई गई हो गई।

महापण्डित पोपड़ानन्द जी नामकरण के दिन कीचड़ में फंसे पहिये की

तरह अड़ गए कि वे नामकरण का पूरा सवा रुपया ही लेंगे, सवा पांच आने नहीं।

'लेकिन हमारे पुरखों की रीति सवा पांच आने की ही है।' उनके पिता भागीरथ जी ने दलील पेश की।

'लेकिन आपके पूर्वजों के पैदा होते ही दाढ़ी मूंछ नहीं निकली थी।' पोपड़ानन्द जी अपने चश्मे को नाक पर लाते हुए बोले, "यह चौदह आने तीन पैसे इनकी दाढ़ी मूंछ का टैक्स है।'

भागीरथ जी क्रोध में बड़बड़ा उठे—'भाड़ मे जाय इसकी दाढ़ी मूंछ, जब से पैदा हुआ है तब से खर्चा ही खर्चा।'

अन्त में पोपड़ानन्द जी को सवा रुपया देना ही पड़ा। पोपड़ानन्द जी ने दो चार मन्त्र का जाप करके कहा—'नाम 'द' अक्षर से प्रारम्भ होना चाहिए।'

भागीरथ ने तुरन्त कहा—'देवदास।'

'नहीं, दमड़ी प्रसाद।'

'छि....छि' यह कोई नाम है? देवदास, दमड़ी प्रसाद, दरोगालाल। नाम तो होना चाहिए दुर्वासा। देख नहीं रहे हैं आप कि श्रीमान जी गर्भ से ही दाढ़ी मूंछ लेकर आये हैं।' यह प्रवचन लखमी की मा बैगनी का था।

पोपड़ानन्द जी ने भी अपनी स्वीकृति दे दी।

तभी एक नटखट छोकरा कह उठा—'नाम 'द' अक्षर पर होना चाहिये। हाँ, तब यह नाम बहुत ही ठीक रहेगा—दाढ़ी वाला मुन्ना....।'

और आस पास खड़े सभी बच्चे चिल्ला उठे—दाढ़ी वाला मुन्ना, दाढ़ी वाला मुन्ना। उनकी तालियों से सारा घर गूंज उठा।

कथा सुनाते-सुनाते दुर्वासा जी ने सिगरेट की मांग की। सिगरेट का धुआं आसमान की ओर उड़ाते हुए उन्होंने धैर्य से पुनः कहना शुरू किया—'दुर्वासा कहने लगे। स्कूल से जब वे विद्याध्ययन करके लौटते तब बच्चे जगह-जगह पर उन्हें दाढ़ी वाला मुन्ना कहकर चिढ़ाते। कहने वालों के स्वर में इतना तीखा व्यंग होता था कि कभी-कभी दुर्वासा क्रोध मे तिलमिला उठते थे और बच्चों को पत्थर बन जाने का शाप देने को तैयार हो जाते थे लेकिन फिर वे विष्णु भगवान के भय से अपना इरादा बदल लेते थे। हां, कभी-कभी वे मारपीट कर लेते थे किन्तु रात को स्वप्न में उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश डांटते थे। कहते थे—अरे, अब तो क्रोध को त्याग दो, नहीं तो तुम्हें मृत्यु लोक के कुंभी-पाक में दरबस: धकेल और वे शान्त हो जाते थे। वे दाढ़ी मूंछ को काट देना चाहते थे, लेकिन डर यह था कि शाप के कारण उत्पन्न हुई यह मक्खन-सी मुलायम दाढ़ी कहीं उस्तरे के स्पर्श से घास की तरह बढ़ने लगी तो,....नहीं-नहीं, यह अनु-भरण बरदाश्त से बाहर है।

पर एक दिन अचानक दुर्वासा के कानों में सुनाई पड़ा कि बच्चों ने एक कविता भी उनकी दाढ़ी पर बना ली है। बच्चे देख-देख कर तालियां बजाने लगे और गाने लगे—

मुन्ना दाढ़ी वाला प्यारा
लगता है वह सबसे न्यारा
कौन करेगी शादी इससे
रहेगा वह आजन्म कुंवारा

उस औरत को हंसते हुए देख कर दुर्वासा ऋषि बोले—तुम हंस रही बेटी ? तुम भी सोचती होगी कि अब महर्षि शाप तो नहीं दे सकते, इसलि मुझे भी हसना चाहिए। हसो, खूब जोर से हसो"''बेटी ! घर में दूध है ? दुर्वासा जी वृत्तान्त का अन्त किये बिना ही बोले।

'हां है, लाऊं एक गिलास ? पर'''।'

'पर !' चौक पड़े दुर्वासा जी।

'बात यह है कि वह मिल्क पाउडर है। आप पीना चाहें तो ले आऊं ?'

'जैसी भक्त की मर्जी। जो पिलाओगी, पी लेंगे, हम संतोषी हैं।'

दूध को हलक से घूंट-घूंट उतारते हुए दुर्वासा जी पुनः बोले—'पर दाढ़ी वाला मुन्ना बुद्धि का बड़ा कुशाग्र था। जितने ही श्लोक उसने हीरामन तोते की तरह रट लिए थे। फिर क्या था, उसकी इज्जत सारे गांव में होने लगी।'

एक रोज उन्हें स्वप्न में भगवान ने आज्ञा दी—'ऋषिराज, ठकुरानी की जो युवा बेटी है न, वह कद मे ताड़-वृक्ष सी लम्बी है, इसलिए जाकर आप उसके लिए उचित वर ढूंढ लाईए।

दुर्वासा जी तड़के ही ठाकुर के घर की ओर चले। उस समय उनकी उम्र अठारह साल की थी।

ठाकुर की सुकन्या वास्तव में बहुत ही लम्बी थी। इतनी लम्बी जितना ताड़ का वृक्ष और उसकी दासी इतनी मोटी जितनी ढोल। दुर्वासा जी सीधे जनाना बाग में पहुंचे। उद्यान सौरभ से भरा हुआ था। खिले फूल जीवन में उल्लास भर रहे थे। उन्हें देखते ही सुकन्या मति शील से नत मस्तक होकर बोली—'नमस्कार।' ऐसा मालूम पड़ा कि भगवान ने उसे भी स्वप्न मे बह दिया हो कि कल तुम्हारे यहां मुनियों के मुनि, त्यागियों के त्यागी दुर्वासा जी पधार रहे हैं।

दुर्वासा जी ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया—'कल्याण हो देवी कल्याण मन की आशा पूरी हो।'

'आप हैं कौन ?' उसने तुनक कर पूछा। दुर्वासा जी को अपनी भूल का हुआ कि इसे प्रभु ने स्वप्न में कुछ नहीं कहा है।

'मैं दुर्वासा ऋषि हूं सुकन्या। तू इतनी लम्बी है कि तुझे वर मिलना अत्यन्त दूभर है।'

'आप हैं कौन?' उसने पुनः कड़े स्वर में कहा।

'तेरा वर तो बंगाल का नारियल का पेड़ होना चाहिए अथवा हमारे जैसा ऋद्धि-सिद्धि वाला साधक अन्यथा तुम्हारा उद्धार असम्भव है।'

'आप पागल हैं।' उसने रोष में गुर्रा कर कहा। उसकी विलास में नाचती हुई पुतलियों में स्फुलिंग से भड़क उठे।

'पागल! सुकन्या! सौन्दर्य सम्पत्ति का सम्बन्ध पाकर दंभी हो जाता है, पर प्रभु ने आज्ञा दी कि हम आप को वर...।' दुर्वासा जी ने आगे बढ़ उसका कोमल कर पकड़ लिया।

पर देवी! यह संसार भ्रम जाल में भटका हुआ है। माया डोर में बंधा हुआ है। अच्छे-बुरे की पहचान नहीं है—उस सुकन्या ने ऋषिराज के हाथ से अपने हाथ को मुक्त कराने के लिए चिल्लाने का आश्रय लिया। दुर्वासा जी ने देखा कि चार लठैत आ रहे हैं, अतः वे भी उन्हें पत्थर बनाने को उद्यत हुये कि विष्णु जी का शाप उन्हें स्मरण हो उठा। तत्पश्चात वे प्राण-रक्षा हेतु भागे। बाद में उन्हें मालूम हुआ कि उनके गांव में कदम रखते ही ठाकुर उसे कारागृह में डाल देगा इसलिए वे कभी गांव नहीं लौटे।

तब दुर्वासा यानी मैं नगर-नगर, डगर-डगर घूमता रहा हूं। कोई भक्त हमें पुकारता है, तो हम अच्छी तरह कल्याण कर देते हैं।... हां बेटी! तू लाई वह जेवर?'

'हां महाराज, यह मेरा पन्द्रह सौ रुपयों का हार है।' स्त्री ने हार महात्मा जी को दे दिया। महात्मा जी उसे झोली में डालते हुए कहने लगे—'अब हम भोजन नहीं करेंगे। ठीक तीसरे दिन सन्दूक खोलना, ओ३म शिव हरे, शिव हरे।'

और दुर्वासा जी अपनी सफेद किन्तु कोमल दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए शिवजी के सांड की तरह मस्ती की चाल में चल पड़े ऋषि-मुनियों की अध्यात्म भूमि पर और वह भारतीय ललना श्रद्धा से अभिभूत होकर पीछे से हाथ जोड़ रही थी।

□

भागता हुआ बयान

उसके हाथ में रक्तरंजित हंसिया था, उसकी ओढ़नी पर लगे खून के बेतरतीब धब्बे ऐसे लग रहे थे मानो किसी दीवार पर अचानक लाल छींटे मार दिए गए हों, उसका लहंगा काफी ऊंचा था जिससे उसकी गोरी धूलसनी पिंडलियां दिखायी दे रही थीं। पांवों में वह चांदी की मोटी-मोटी कड़ियां पहने हुए थी पर था वह नंगे पांव।

चेहरा रूखी उदासी के रंग से पुता हुआ था। बड़ी-बड़ी आंखों में करुणा और तटस्थता का अजीब मिश्रण। बिखरे घास की तरह कड़े बाल कानों की बालियों से उलझे हुए थे। वह थकी हारी कोई चंडिका लग रही थी। उसके पीछे शान्त कुतूहल में डूबी भीड़ चल रही थी। भीड़ आतंकित थी क्योंकि कोई भी, उस पर गाली नहीं उछाल रहा था। पथराव नहीं कर रहा था। वह चलती थी तो भीड़ चलती थी। वह रुकती थी तो भीड़ यन्त्रवत रुक जाती थी।

वह थाने की ओर जा रही थी। निशंक और अभीत। भीड़ नहीं समझ पा रही थी कि यह सब माजरा क्या है। उसके हंसिये पर किसका खून लगा है। एक आदमी दबी जबान में बोला, 'इसके घट में कोई देवी आ गई है।'

'अरे सोवन की बीनणी का प्रेत इसमें प्रवेश कर गया है।'

'यह बावली हो गई है।'

पर वह मौन थाने की ओर चली जा रही थी।

गांव का थाना छोटा-सा था। बाहर एक सिपाही टहल रहा था। उसने जैसे ही यह दृश्य देखा, स्तब्ध हो गया—एक पल के लिए। फिर वह थोड़ा आगे आया। अपनी मूंछ पर हाथ फेर कर कड़क कर कहा—रुक जाओ, यह क्या तमाशा है?

वह एक पल थमी। एक क्रूर दृष्टि सिपाही पर फेंकी। उसकी आकृति सूखे चमड़े की तरह हो गई। उसने हंसिये को झटका दिया और बिना बोले ही वह थाने के फाटक में घुस गई।

सिपाही भी लपक कर थाने में घुसा। मिनटों में थानेदार को ले आया, थानेदार शायद आराम के मूड में था अतः बिना पट्टे व टोपी के बाहर आया, आया तो भौंचक्का रह गया। वह उसे पहचान गया। यह तो 'अरजी' है, चौधरी

बिशन की विधवा। एक समझदार एवं संजीदा औरत। तब तक बरजो थानेदार के कमरे में घुस गई। थानेदार ने झुंझला कर कहा—यह क्या पागलपन है, यह चण्डिका रूप क्यों बनाया है ?

थानेदार अपने दफ्तर में आ गया। उसने आहिस्ता से हंसिया मेज पर रख दिया। लम्बी सांस लेकर वह शब्दों को चबा कर बोली, 'मैंने खून कर दिया है थानेदार जी।'

'किसका', थानेदार उछल पड़ा।

'दाताराम का' उसने सपाट स्वर में कहा।

'दाताराम का' थानेदार लगभग चीख पड़ा, उसकी आंखें फट-सी गई। वह जैसे जड़ हो गया। उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था।

दाताराम, चौधरी दाताराम यानी अपने सरपंच जी का, यानी अपने भूत-पूर्व विधायक जी का, उसने सहमे-से स्वर में पूछा।

'जी!—उसी का।'

'क्या बकती है ?'

वह जैसे विक्षिप्त-सी बोली, 'बकती नहीं हूं, मैंने उसे मार डाला है। मैंने इस हंसिए से उसकी गर्दन धड़ से अलग कर दी है। उसे लम्बी नींद सुला दिया है। फिर उसका गला अवरुद्ध हो गया और आंखें नम। वह पीपल के सूखे पत्ते की तरह कांपने लगी। उसके चेहरे की रुक्षता व क्रूरता पर करुणा की परत छा गई।

'कहां है उसकी लाश !'

'स्कूल के पिछले आहाते में।'

थानेदार ने जल्दी से अपना बेल्ट लगाया। टोपी पहनी। दो पुलिस वालों को लेकर वह घटना स्थल की ओर लपक पड़ा। बरजो उसके साथ थी। भीड़ की आकृतियों पर अब दाताराम का नाम चिपक गया था। रेतीली सूखी धरती पर खड़े कीकरी-खेजड़े और जाल के पेड़ों पर से सनसनाती हवा भी अब 'दाताराम का खून हो गया' कहने लगी थी।

गांव के छोटे-छोटे मकान, कच्ची झोंपड़ियों और हवेलियों की दीवारों पर खून-खून ध्वनित हो रहा था।

'बिशन की विधवा ने सरपंच की हत्या कर दी। सनसनी। घृणा। नमक-मिर्च लगी बातें, बहुत से लोगों के दिमागों में अब भी अविश्वास अटका हुआ था, भला इतनी समझदार सयानी औरत ऐसा काम कैसे कर सकती है ?

लेकिन प्रत्यक्ष को प्रमाण की जरूरत नहीं। घटना स्थल पर दाताराम का

शव पड़ा था। धड़ अलग और शरीर अलग। वीभत्स और क्षत-विक्षत। रक्त बहकर सूख कर काला पड़ गया था। आंखें भयानक लग रही थीं।

थानेदार पागल की तरह चिल्लाया– 'तूने सचमुच उन्हें मार डाला चुड़ैल? हत्यारी! तुझे जेल में चक्की पिसवा दूंगा। जिन्दगी भर सड़ती रहेगी वहां।'

थानेदार बाचाल हो गया, सरपंच दाताराम को मारने की हिम्मत यह अदना औरत कैसे कर सकी? उसका धैर्य खत्म हो गया। उसने हाथ उठाने की कोशिश की।

बरजी उसी हंसिये को उठाकर गरज पड़ी, 'खबरदार जो मुझ पर हाथ उठाया?'

उसके चेहरे के रुख देखकर थानेदार डर गया। किसी अपरिचित दहशत से घिर गया। आहिस्ता आहिस्ता वह बरजी की ओर बढ़ा। फिर उसने तुरन्त इन्सपेक्टर को बुलाने के लिए पुलिस वाले को भेजा। तब तक स्कूल के आहाते मे, उसकी चारदीवारी के चारों ओर आसपास के मकानों की छतों पर भीड़ जमा हो गई थी। दाताराम की विधवा और अन्य घरवाले रोते हुए छाती पीटते आ गये थे।

आज बरजी के बयान थे।

शहर की अदालत खचाखच भरी थी।

बाहर भीड़ का सैलाब था। बड़-बड़े नेता सरकारी अफसर और व्यापारी भी दिखाई पड़ रहे थे। पुलिस का कड़ा प्रबन्ध था। कहीं भीड़ दंगा फसाद न कर दे क्योंकि एक दल बरजी के प्रति गहरी संवेदना व हमदर्दी रख रहा था। उन्हें लोग क्रांतिकारी या उग्रपंथी कह रहे थे। पुलिस को आशंका थी कि ये लोग अदालत का घेराव करेंगे। न्यायाधीश को सचेत करेंगे कि वह पैसों एवं सत्ता के प्रभाव में न आए, निष्पक्ष न्याय करे क्योंकि बरजी का जीवन एक संघर्षमयी नारी के प्रतीक के रूप में विख्यात था। उसके जीवन की लम्बी चादर में कोई भी दाग-धब्बा नहीं था। वह स्वयं खेतिहर थी और अपने जीवन-जोबन को उसने मेहनत की कठोर गरिमा में खपा दिया था। ऐसी नारी भला बेवजह इतनी नृशंसता से कैसे किसी की हत्या कर सकती है।

'बयान में देर है। यह वाक्य भीड़ पर तिरा। देखते-देखते भीड़ टुकड़ों में बंट गई। कांग्रेस पार्टी के जिलाध्यक्ष कह रहे थे' इसमें विरोधियों का हाथ है। लगता है, हत्या किसी ने की है और दोष किसी पर लगाया जा रहा है। क्योंकि नारी के प्रति हमारे देश का कानून उदार जो है, कम से कम इसे फांसी तो नहीं होगी। जेल काट कर वापस आजाएगी और विरोधियों का मंतव्य पूरा हो जाएगा।

ठेकेदार कह रहा था—'हमारे बीच में से एक महान कार्यकर्ता उठ गया। इन्होंने अपने गांव में ही नहीं, चारों ओर जागृति की रणभेरी बजा दी थी।'

असन्तुष्ट युवक कह रहा था—'देश के साथ साथ दाताराम ने भी उन्नति प्रगति की। देश की समृद्धि के समानान्तर दाताराम के घर में भी एक पुल बना।'

एक छात्र बीच में बोला, 'पर वह नोटों का पुल था।'

हलकी हंसी छा गई।

किसी ने कहा बयान शुरू हो गए हैं।

लोग अदालत में थम से गए।

घुटन, पसीना और फुसफुसाहट।

बरजी कह रही थी, 'मैंने दाताराम की जानबूझ कर हत्या की है। मैं अपने बचाव में एक शब्द भी नहीं कहना चाहती। मैं इतना ही कहूंगी कि यह हत्या मेरा बदला है। अपने पति की मौत का बदला। जनता के शोषण का बदला। मैं जानती हूं—ये कानून के ठेकेदार न्याय के नाम से क्या बेचते और खरीदते हैं। किन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि अपराधी अपनी गहरी काली चादर में अपने अपराध के सारे गुनाह के धब्बे पचा जाता है और फिर अपने को युधिष्ठिर दर्शाकर एक पद और आगे बढ़ जाता है। मैंने दाताराम की हत्या बहुत सोच समझकर की है। होश-हवाश में। आप सब मुझे राक्षसिनी व पापिन कह सकते हैं। किन्तु वह देश का कलंक था। यदि यह देश एक नारी की सन्देह में अग्नि परीक्षा ले सकता है तो फिर जिन्होंने जितने रोम उतने कलंक अपने शरीर में अंकित कर रखे हैं, उनकी क्यों नहीं अग्नि परीक्षा लेता? 'दाताराम इस क्षेत्र के प्रशासन का मुखिया था, मन्त्री से लेकर न्यायाधीश तक उसके इशारे पर चलते थे। एक साधारण किसान दतिया, जिसके पास कभी इतनी भी जमीन नहीं थी कि वह अपने परिवार का पेट भर सके, आज कई बीघों का स्वामी हो गया था। उसकी ट्रकें और बसें चलती हैं। वह दतिया से दाताराम बन गया था यह सब कहां से आया? मैं बताती हूं—'उस भ्रष्टाचारी नीच ने' इन शब्दों के साथ कुछ लोगों ने अपने कान बन्द कर लिए, वे कह उठे-एक पवित्र आत्मा पर गन्दी गालियां। वे राष्ट्र सेवक थे।'

पर बरजी तपते हुए स्वर में फिर बोली—'उस कमीने ने मेरे पति की हत्या की। मेरी जमीन हड़पी। मेरी अनपढ़ सास को कर्ज दिलाने के बहाने झूठे कागजात तैयार करके उसे बेघर कर दिया ''तुम्हारे''''आपके इस खर्चीले और महंगे न्याय ने मुझ गरीब को अदालत के चौखटे पर नहीं चढ़ने दिया। इन पेशेवर गवाहों तथा धनलोलुप वकीलों ने तर्कों से मेरे सत्य को परास्त कर दिया।

आवाजें गूंजी—शेम शेम।

बरजी ने थूक निगल कर कहा, सत्य मरता गया झूठ जिन्दा होता गया। दाताराम अकाल को भी मदा कर गया। जो गरीब आधे नंगे थे वे नंगे हो गए और दाताराम ने सत्यवादी बनने के लिए एक मन्दिर बनवा दिया। मैं देखती रही।

अकाल, पंचायत विकास और बदमी के नाम पर वह अगस्त्य मुनि की तरह सब अच्छाइयों को पी गया। फिर भी वह हमारा अगुआ बना रहा। वह आदमखोर गांव की एक एक गरीब महिला व एक एक मास्टरनी के जिस्म को खा गया। कल भी उसने एक गरीब मास्टरनी कमला को अजगर की भांति निगलना चाहा। उसको उस दुष्ट ने गन्दी व ओछी धमकियों से पहले ही बांध दिया था। अपने तीन छोटे भाई बहन व एक अपंग मां की जिम्मेदारी से विवश कमला का विद्रोह गूंगा हो गया था।

यह कायर जनता मुट्ठी भर दैत्यों के सामने उसी तरह नतमस्तक है जिस तरह पुराने जमाने में हजारों गुलाम चन्द मालिकों के सामने। ये दैत्य जो बहुत कमजोर और कच्चे पांव वाले हैं, को हर पल मृत्यु से भयभीत है, क्योंकि उन्हें आप लोगों के जग लगे हथियारों से खतरा है, जो आप लोगों को एक पल इज्जत, प्यार और अपनापन देकर सालों तक जलील करते हैं, जो चन्द नोट देकर आपका वोट लेकर आपको गरीबी, भूख और बीमारी दे जाते हैं, आपके कंकालों पर अपने वाहन चलाते हैं। ये कितने निर्दयी हैं, नीच हैं, और आप कितने निर्बल हैं, असहायक हैं। जबकि आपमें वह ज्वालामुखी है जो एक पल में भड़क कर इनको समूल नष्ट कर सकता है""

न्यायाधीश स्तब्ध था, क्योंकि बरजो कटघरे पर सुबक सुबक रो रही थी। जनता भी उत्तेजित थी। न्यायाधीश ने कहा, मुलजिमा बरजी अपना बयान जारी रखे।

बरजी ने अगाध व्यथा से चारों ओर देखा। फिर वह कड़क कर बोली कि मैं इन नामर्द देवताओं की भीड़ से कह रही हूं, कि दाताराम की वासना के सांप से मैंने कमला को बचा लिया। उसे पहले ही शहर भेज दिया था और मैं स्वयं उसके स्थान पर चली गई थी। वहां जहां दाताराम ने अपनी वासना को बुझाने के लिए कमला को बुलाया था। वहां कमला की जगह मैं पहुंची। मुझे देखते ही वह कांपा। भागने लगा। मगर मैंने दाताराम को अनाज की बाल की तरह काट दिया, मुझे फांसी से भय नहीं। मुझे उम्र कैद से डर नहीं। जानवर बनकर जीने से मर जाना बेहतर है। यदि करोड़ देवता जागे तो मुट्ठी भर दैत्य एक पल में खत्म हो सकते हैं। वह एक पल चुप होकर फिर बोली—माननीय

[illegible] के कानून के मुताबिक दण्ड दे सकते हैं। मैं एक बार फिर कहती हूं, मैंने दाताराम की हत्या की है। एक भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोर, व्यभिचारी की हत्या की है। छूट गई तो यह सिलसिला जारी रखूंगी क्योंकि अब सब कुछ बर्दाश्त के बाहर हो रहा है...।

भीड़ में आग भरे शब्द गूंज उठे। न्यायाधीश ने मेज को जोर से पीटा।

'खामोश, साइलैंस ...खामोश।'

और दरजी का बयान चुपचाप अदालत से खिसककर बाहर आ गया था वह भाग रहा था—फैल रहा था...चारों ओर।

◘

ईमानदार

मैं स्टेशन और उन व्यक्तियों के सही नाम नहीं बताऊंगा जो इस कहानी में आए हैं। इसे आप मेरी कमजोरी, बेईमानी और लेखकीय कायरता भले ही कह दें पर मेरा यह सत्य कई परिवारों पर सकट के बादल मण्डरा सकता है।

उस रात मुझे सफर पर जाना था। अगस्त का महीना था। आकाश में भी कभी काले बादल छा जाते थे, कभी हल्की बूंदाबांदी हो जाती थी और कभी आकाश ऐसा नीला निर्मल लगता था जैसे उसे धो दिया हो।

मेरे पास एक छोटा सा ब्रीफकेस और बरसाती थी। मैं स्टेशन पर पहुंचा। आर्थिक परेशानियों के कारण मेरी जेब में सिर्फ किराए के अलावा चाय पीने भर का एक रुपया था। मैं अपने क्लर्क पद से निलम्बित हो गया था। कारण था—मैंने एक नेता के चमचे का कार्य नहीं किया था और उसने मुझे जबरदस्ती रिश्वत काण्ड में फसा कर निलम्बित करवा दिया। उसका कोर्ट केस चल रहा था।

स्टेशन पर खास भीड़ नहीं थी। फिर भी तरह तरह के चेहरे दिखाई पड़ रहे थे। बड़े शेड के नीचे चप्पलों और जूतों के कीचड़ सने निशान थे और फेरी वाले इधर-उधर घूम रहे थे। बुक स्टाल वाला हाथों में नए उपन्यासों व पत्र-पत्रिकाओं का गट्ठर लिए कह रहा था—'मनोज का नया उपन्यास'''विशाल का नया उपन्यास।'''ओमप्रकाश शर्मा का नया उपन्यास''''।'

यह सब नजारा मैं गेट के पास खड़ा-खड़ा देख रहा था। टिकट खिड़की पर बड़ी भीड़ थी इसलिए मैं किसी परिचित चेहरे को खोज रहा था जो मुझे भीतर से टिकट ला दे।

तभी मुझे रेलवे पुलिस का एक आदमी दिखाई पड़ा। लम्बा, तगड़ा, बड़ी बड़ी मूंछें, खाकी वर्दी, हाथ में डडा।

मैंने उसकी ओर प्रार्थना भरी दृष्टि से देखकर याचना भरे स्वर में कहा, 'भाई साहब। गाड़ी में बहुत कम 'टाइम' रह गया है, कृपया मुझे एक टिकट ला दीजिए।' मेहरबानी होगी।

उस आदमी ने मेरी ओर देखा। फिर कहा, 'जाओ। बोगी नम्बर 29353 में बैठ जाओ। टिकट की व्यवस्था हो जाएगी।'''जल्दी चले जाओ। बहुत कम टाइम रह गया है।

मैं लपक कर उस बोगी में बैठ गया। उसमें कई यात्री बैठे थे। उन्होंने मुझे प्रश्न भरी निगाह से देखकर एक अजनबीपन का भाव प्रकट किया।

मैं बोगी की एक खाली सीट पर बैठ गया। थोड़ी देर में गाड़ी चल पड़ी।

सांझ रात में घुस गयी थी। देखते देखते गाड़ी बियाबानों से घिर गई। बीच-बीच में स्टेशन आते रहे। मैं चिंतित होने लगा कि टिकट मेरे पास नहीं है। कहीं कोई टी. टी. आ गया तो ?

मैंने अनुभव किया कि मेरी गर्दन के आसपास से पसीने की लकीरें नीचे की ओर सरकने लगी हैं।

तभी मुझे वह मूछड़ दिखाई दिया। मेरी आंखों में सांत्वना की चमक आ गई। उदासी मिट गई पर कई शंकाओं ने मुझे घेर लिया कि अब यह कैसा बर्ताव करेगा ?

पर उस 'जी.आर.पी.' के मूछड़ ने गहरी आत्मीयता का परिचय देते हुए कहा, 'अब आप आराम से पांव पसार कर सोइए।""श्री मान। आप भी क्या याद रखेंगे कि कोई मिला था।""यहां से 'आपके' गंतव्य स्थान का किराया केवल सोलह रुपए है पर मैं आपको केवल आठ में ले जाऊंगा। 'हाफ' रेट पर।'

'लेकिन कोई टी टी आ गया तो ?'

'तो आप डरिएगा नहीं, मस्त सोते रहिएगा। ज्यादा कहे तो कहिएगा कि मैं मूछड़ का आदमी हूं। इसलिए आठ रुपए।'""और उसने बड़ी ही नाटकीयता से मुसकराकर कहा, 'अब आप ही देखिए""मेरा नाम मूछड़ थोड़े ही है""नाम तो मेरा मिट्ठोमल है पर लोग मुझे मजाक में मूछड़ कहने लगे""बस, मेरा नाम मूछड़ हो गया""बड़ी बड़ी मूछों वाला मूछड़""।' और वह हो हो करके हंसने लगा। उसकी हंसी मुझे बड़ी भद्दी और खोखली लगी। फिर उसके मुंह की तीखी बदबू ने मुझे ग्लानि सी पैदा कर दी।

वह पुनः अपने उसी बिन्दु पर आया, 'निकालिए आठ रुपए। मुझे देर हो रही है।'

मैंने आठ रुपए दे दिए। सोचने लगा रिश्वत भी खुले आम मांग रहे हैं। सचमुच भ्रष्टाचार इस सत्ता व्यवस्था का शिष्टाचार व व्यवहार हो गया है।

उसने चलने के पूर्व फिर उन्हें चूमा, हथेली में मला। मुझसे कहा, 'थैंक्यू।' मैंने कहा,—'नो थैंक्यू""।'

अपने नोटों को चुटकियों में भर कर निचले होंठ के बीच रखा और चल दिया।

वह कब उतरा। मुझे मालूम नहीं। आधी रात को किसी ने 'मुझे'

झिझोड़ कर उठाया। मैं हड़बड़ा कर उठा। देखा तो सामने टी. टी. खड़ा था। मेरी पलकें अब भी नींद से बोझिल थीं। इसलिए पल भर के लिए मुझे यह भ्रम पैदा हुआ कि मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा हूं। पर मेरे भ्रम का निवारण जल्दी ही हो गया।

टी. टी. कह रहा था, 'टिकट प्लीज....।'

मैं उसकी ओर आंखें फाड़ कर देख रहा था। कुछ विस्मय आहत सी स्थिति थी।

'भाई साहब। आप जाग रहे हैं या सो रहे हैं?' टी.टी. ने पलकें नचा-कर पूछा।

'जाग रहा हूं।'

'फिर टिकट दिखाइए।'

मैंने एक बार चारों ओर देखा। सभी यात्री खर्राटे ले रहे थे।

मैंने रुकते रुकते कहा, 'टिकट तो नहीं है।'

'टिकट नहीं।' वह सहसा गिरगिट हो गया। उसका रंग बदल गया। उसकी आकृति की खरगोश की कोमलता, खाल की तरह कठोर हो गई। आंखों में दबोचने जैसे सूक्ष्म भाव थे।

'आप बिना टिकट सफर कर रहे हैं?'

'ऐसा है....।' मैंने बड़ी कठिनता से कहा, 'मैं मूछड़ का आदमी हूं।'

मुझे भीतर ही भीतर अनुभव हो रहा था कि मेरी नैतिकता में तरेड़ें आ गई हैं। चुभन का अहसास हो रहा है। और टी. टी. मुझे अब भी पूर्ववत दृष्टि से देख रहा था। मैंने यह भी अनुभव किया कि उसके शरीर में जड़ता आ गई है।

वह चौंक कर बोला, 'मूछड़....? कौन मूछड़? मैं किसी मूछड़ तूछड़ को नहीं जानता। पैसा निकालो।'

वैसे अब मैं सहसा भय से घिर गया था। शंका सी लगने लगी कि कुछ गड़बड़ होगा। फिर भी मैंने कहा, 'जी. आर. पी. वाले मूछड़ जी।'

टी.टी. ने दो बार आंखें नचाई। फिर तल्ख स्वर में कहा, 'जी....आ.... जी....हूं....मैं कहता हूं....पैसा निकालो वर्ना मुझे पुलिस बुलानी होगी।....यह बैलगाड़ी नहीं है श्रीमान....यह है रेलगाड़ी....ट्रेन....इस में विदाउट टिकट यात्रा करना जुर्म है। हजार रुपए जुर्माना से लेकर जेल की हवा खानी पड़ जाती है। समझे....पैसे निकालो।'

मैं बहुत ही भयभीत हो गया था। जेल के नाम से तो मेरा खून ही जम गया था। मुझे अपने पर भी रोष आया कि मैंने मूछड़ का क्यों विश्वास किया।

मेरा तो एक प्रतिशत भी बिना टिकट सफर करने का विचार नहीं था।"" अचानक मुझे एक झटका सा लगा और मैं स्वयं अपराध भावना से घिर गया कि मैं बिना टिकट क्यों चला ?"" कहीं न कहीं चालाकी और लालच मेरे भीतर भी है।

वह झल्लाया, 'पैसे निकालते हो या मैं कुछ करूं।'

मैंने आहिस्ता से भीतर की जेब में हाथ डाला और कुछ नोट निकाल लिए। ये नोट कुल नौ रुपए थे। उस टी.टी. ने उन नोटों को भूखी निगाहों से देखा मानों वह उन पर बाज की तरह झपट्टा मारना चाहता है पर मेरी गम्भीर मुद्रा से वह सहम गया।

उसने अपने सरकारी कोट की जेब में हाथ डाला और कुछ कहना ही चाह रहा था कि मैंने शांत, सधत स्वर में कहा, 'भाई साहब मेरे पास कुल नौ रुपए हैं।'

'कुल नौ क्या मतलब ?'

'आठ तो वह मुच्छड़ ले गया।'

'आठ""।' उसने आखिर झपट्टा मार लिया और मेरे हाथ से रुपए छीन लिए।

उसी समय इंजिन ने सीटी मारा जिससे मैं कांप गया। मुझे भीतर कुछ गूंजता हुआ सा लगा।

उसने यन्त्रवत रुपए गिने और आठ रुपए अपनी जेब में डालते हुए एक रुपया वापस कर दिया। फिर अत्यंत अपनेपन से बोला, 'मैं ज्यादा लालची नहीं हूं। मनुष्यता के प्रति भी मेरा लगाव है। यह एक रुपया लीजिए" चाय, बस के टिकट के लिए काफी है। और हां, अब आपको कोई पूछे तो कहिएगा मैं शर्मा का आदमी हूं, पूछेगा, कौन शर्मा ""? कहिएगा, श्रीमान जिसके छब्बीस अंगलियां हैं ""हाथ में।'

उसने बड़े इत्मीनान से लम्बा सांस लिया और कहा, 'अब आप बेफिक्र होकर लम्बे हो जाइए। घबराइए नहीं, शर्मा छब्बीस उंगलियों वाला""।' और उसने दाया हाथ का पंजा मेरी ओर ऐसे किया जैसे कोई संतान करता हो। मैंने देखा कि उसके अंगूठे के पास एक और छोटा अंगूठा था।

वह चला गया पर मैं बेफिक्री से सो नहीं सका। बार बार मुझे यही लग रहा था कि यदि अब कोई और आ गया तो ?""मैं बुरी तरह भयभीत हो गया। दुष्कल्पनाएं मुझे घेरती रहीं। मुझे मुच्छड़ पर बड़ा गुस्सा आ रहा था। साला बेईमान""भूठा""कपटी।

रास्ते भर सो नहीं पाया।

झिंझोड़ कर उठाया । मैं हड़बड़ा कर उठा । देखा :
मेरी पलकें अब भी नींद से बोझिल थीं । इसलिए प
पैदा हुआ कि मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा हूं ।
जल्दी ही हो गया ।

टी. टी. कह रहा था, 'टिकट प्लीज...।'

मैं उसकी ओर आंखें फाड़ कर देख रहा था
स्थिति थी ।

'भाई साहब । आप जाग रहे हैं या सो रहे हैं
कर पूछा ।

'जाग रहा हूं ।'

'फिर टिकट दिखाइए ।'

मैंने एक बार चारों ओर देखा । सभी यात्री स

मैंने डरते डरते कहा, 'टिकट तो नहीं है ।'

'टिकट नहीं ।' वह सहसा गिरगिट हो गया ।
उसकी आकृति की खरगोश की कोमलता, खाल की त
में दबोचने जैसे सूक्ष्म भाव थे ।

'आप बिना टिकट सफर कर रहे हैं ?'

'ऐसा है—।' मैंने बड़ी कठिनता से कहा, 'मैं मू

मुझे भीतर ही भीतर अनुभव हो रहा था कि मे
गई है । घुटन का अहसास हो रहा है । और टी. टी.
से देख रहा था । मैंने यह भी अनुभव किया कि उस
गई है ।

वह चीख कर बोला, 'मूछड़—? कौन मूछड़ ? ।
नहीं जानता । पैसा निकालो ।'

जैसे अब मैं सहसा भय से घिर गया था । शरीर में
धड़कन होने । फिर भी मैंने कहा, 'जी. आर. पी. वाले ।

टी.टी. ने दो बार आंखें नचाईं । फिर तुरन्त [illegible],
जी—हूं—मैं कहता हूं—पैसा निकालो वर्ना मुझे पुलिस
[illegible] नहीं है [illegible]—वह है [illegible]—
[illegible] करना मुझे है । [illegible]
[illegible] है । [illegible]

मैं [illegible]

[illegible] । मुझे [illegible]

हमने एक रुपया दे दिया। तभी शर्मा और मूछड़ आ गए। उसे देखते ही वह बारूद की तरह फट पड़ा। 'देखिए...' उसने मूछड़ के नजदीक आकर कहा, 'आपके नाम लेने के बाद भी इस छब्बीस उंगलियों वाले शर्मा ने मुझसे आठ रुपए ऐंठ लिए और एक रुपया इस साहब ने।'

मूछड़ की आकृति एकदम से क्रोध से भर गई। उसके जबड़े खिंच गये। नसें उभर आईं। वह कड़क कर बोला, 'तुम दोनों ने मेरे आदमी को तंग किया? इसका नतीजा जानते हो? हर रोज के इस हंगामें।...सोच लो। कपड़ों में सब नंगे हैं।'

शायद उन्होंने मेरे सामने बातचीत करना ठीक नहीं समझा हो अतः वे थोड़ी दूर जाकर बातचीत करने लगे। वे इतना धीमा बोल रहे थे कि मैं उनकी बातें नहीं सुन सका पर उनकी आकृतियों पर आने जाने वाले क्रोध, ईर्ष्या, द्वेषता याचना, प्रेम-दोस्ती, सामेदारी, समझौता, धमकी, चेतावनी के मिले जुले भाव निरन्तर आ रहे थे जिन्हें मैं देख समझ रहा था।

अंत में शर्मा ने अपनी जेब में हाथ डाला और रुपए दिए। मूछड़ ने आकर मुझे वे रुपए देते हुए कहा, 'माफ करना भाई, तुम्हें परेशानी और असुविधा हुई। मुझे उतरने में थोड़ी देर हो गई और तुम इस आफत में फंस गए वैसे यहां बेईमानी का काम नहीं है, सौदा तय होने के बाद ईमानदारी ही बरतते हैं। रही एक रुपए की बात... यह कयूम छिपकली है। आप जानते हैं कि छिपकली बिच्छू तक निगल जाती है और आपका एक रुपया तो उसके लिए मच्छर समान है। उसे अब वह नहीं उगलेगा। हां, कम से कम आप जीवन में यह तो याद रखेंगे कि एक ईमानदार आदमी से मेरा पाला पड़ा था।'

वह खरामा खरामा चला गया।

मेरे चारों ओर ईमानदार शब्द चक्रवात की तरह घूमने लगा।

□

पैसेंजर ट्रेन खटारा गाड़ी की तरह चल रही थी।

सुबह मैं अपने गंतव्य स्थल पर पहुंच गया। उतर कर मैंने उस मूछड़ व छब्बीस उंगलीवाले शर्मा को खोजा। पर वे तो प्रेतात्मा की तरह गायब थे। दिल कांपने लगा। घबराहट के कारण मैं पसीना पसीना होने लगा। 'साले कितने लुच्चे और विश्वासघाती हैं। अब किसी ने पकड़ लिया तो ।'

'टिकट''''।'

पलट कर देखा तो कांप उठा। खून जम गया। टी.टी.''''।

'टिकट भाई साहब।'

'टिकट''' टिकट''' टिकट''''।' मुझे जैसे कोई होश ही न हो? मैंने उस शब्द को रटा।

'डब्ल्यू. टी.''' कम्बख्त। मेरी गिद्द दृष्टि से भला कोई बच सकता है! जनाब। पिछले तीस वर्षों से चेहरों को पहचानता हूं। कौन डब्ल्यू. टी है और कौन डब्ल्यू''' टी। मतलब समझे, पहले के डब्ल्यू टी का मतलब है विथ टिकट और दूसरे का मतलब है विदाउट टिकट''''।' वह भेदभरी मुस्कान के साथ पलभर ठक कर बोला, 'और मैं बताऊं। आप कौन से डब्ल्यू टी हैं?' दूसरे नम्बर के विदाउट टी''''बिना टिकट।

'हां सर।'

'सिर''''सिर तो काम देना बन्द कर देगा। जब मैं फाइन के साथ टिकट बनाऊंगा तब?'

मैं मन ही मन मूछड़ और छब्बीस उंगलियों वाले शर्मा को गालियां निकाल रहा था।

'निकालिए पैसे।' वह शब्दों पर जोर देकर बोला।

'पैसे तो नहीं है सर।'

'फिर यात्रा कैसे की?'

'दरअसल सच्ची बात यह है कि मुझसे आठ रुपए जी.आर.पी. के मूछड़ और आठ रुपये आपकी जमात के छब्बीस उंगलियों वाले शर्मा जी ने ले लिए। अब मेरे पास केवल एक रुपया है।'

एक रुपया''''।' चौंक पड़ा वह और उसका चेहरा कठोर खुरदरेपन से भर गया। वह अपने दाएं हिस्से के पीछे दाएं हाथ की उंगलियां नचाने लगा। उसके चेहरे पर तरह तरह के रंग रेंग रहे थे। वह फिर बुदबुदाया, 'एक''' रुपया''''।''''फिर एक पल नेत्र मूंदे और ऐसा बोला जैसे कोई फंसा हुआ बाहर निकला हो, 'लाओ। संकट से तो उबारना ही होगा? समस्या का समाधान निकालना ही होगा।'

इसने एक रुपया दे दिया। तभी शर्मा और मूछड़ आ गए। उसे देखते ही वह बारूद की तरह फट पड़ा। 'देखिए…' उसने मूछड़ के नजदीक आकर कहा, 'आपके नाम लेने के बाद भी इस इक्कीस उंगलियों वाले शर्मा ने मुझसे आठ रुपए ऐंठ लिए और एक रुपया इस साहब ने।'

मूछड़ की आकृति एकदम से क्रोध से भर गई। उसके जबड़े खिंच गये। नसें उभर आईं। वह कड़क कर बोला, 'तुम दोनों ने मेरे आदमी को तंग किया? इसका नतीजा जानते हो? हर रोज के इस हंगामें।…सोच लो। कपड़ों में सब नंगे हैं।'

शायद उन्होंने मेरे सामने बातचीत करना ठीक नहीं समझा हो अतः वे थोड़ी दूर जाकर बातचीत करने लगे। वे इतना धीमा बोल रहे थे कि मैं उनकी बातें नहीं सुन सका पर उनकी आकृतियों पर आने जाने वाले क्रोध, ईर्ष्या, द्वेषता याचना, प्रेम-दोस्ती, साझेदारी, समझौता, धमकी, चेतावनी के मिले जुले भाव निरन्तर आ रहे थे जिन्हें मैं देख समझ रहा था।

अंत में शर्मा ने अपनी जेब में हाथ डाला और रुपए दिए। मूछड़ ने आकर मुझे वे रुपए देते हुए कहा, 'माफ करना भाई, तुम्हें परेशानी और असुविधा हुई। मुझे उतरने में थोड़ी देर हो गई और तुम इस आफत में फंस गए वैसे यहां बेईमानी का काम नहीं है, सौदा तय होने के बाद ईमानदारी ही बरतते हैं। रही एक रुपए की बात… यह कयूम छिपकली है। आप जानते हैं कि छिपकली बिच्छू तक निगल जाती है और आपका एक रुपया तो उसके लिए मच्छर समान है। उसे अब यह नहीं उगलेगा। हां, कम से कम आप जीवन में यह तो याद रखेंगे कि एक ईमानदार आदमी से मेरा पाला पड़ा था।'

वह खरामा खरामा चला गया।

मेरे चारों ओर ईमानदार शब्द चक्रवात की तरह घूमने लगा।

□

गवाह

अदालत के घेरे में आते ही कासी ने उसे पकड़ लिया। वह भी कासी को पहचान गया। फिर भी वह नितान्त अजनबी बनते हुए बोला 'भाई साहब। मैं आपको नहीं जानता। आप कौन हैं? आप मेरा पीछा खामखा क्यों कर रहे हैं?'

वह खामोशी को पीते हुए आगे बढ़ने लगा तो एक हट्टे-कट्टे काले आदमी ने उसका हाथ झटके के साथ पकड़ा।

'आप मेरा हाथ छोड़िये।' वह गुस्से में भर गया।

मगर उस काले तगड़े आदमी ने उसका हाथ नहीं छोड़ा। वह उसे घसीटता हुआ अदालत के एक कोने में ले गया। जहां धूप का बड़ा टुकड़ा पसरा हुआ था। उसमें रमण का आतंकित चेहरा साफ दिखाई दे रहा था। उभरी हड्डियों वाला चेहरा। आंखों में दहशत। शरीर में अजीब-सा कम्पन।

'साले। तू मुझे नहीं जानता। मैं रामपुरी चाकू से तेरी अंतड़ियां बाहर निकाल दूंगा, तब तू मुझे तुरन्त पहचान लेगा?' तगड़े आदमी ने उसे दीवार में धकेलते हुए बहुत ही धीमे स्वर में धमकी देते हुए कहा, 'मेरा नाम तशा है हमने तुझे एक हजार रुपये यहां से भाग जाने के लिए दिए थे? और तू आ भी यहा मौजूद है।' तशा का स्वर नफरत से भरा हुआ था।

रमण ने अपनी आंखें उस पर गड़ा दीं। वह आश्चर्य से कांपते हुए स्व में बोला, 'यह भी कोई बात है कि तुम मुझे जबरदस्ती गवाही दिलाओगे? झूठी गवाही नही देता। मैं आपको नहीं पहचानता। कौन से रुपए?

तशा की आंखों में हिंसा तैर आई। वह विषाक्त स्वर में बोला 'ओ चुगद। लग रहा है कि तू अपने घरवालों से लड़कर आया है। चोट्टे मैं तुझे जिन्दा नहीं छोड़ूंगा। कह तो यहीं तेरा काम तमाम कर सकता हूं।'

रमण ने थूक गटक कर अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरी। और घिघियाता हुआ सा बोला 'मैं झूठी गवाही नहीं दे सकता। मैं कोई पेशेवर गवाही देने वाला थोड़े ही हूं।'

सहसा रमण की निगाह के दायरे में एक सिपाही आ गया। उसे देखते ही उसमें साहस जागा। वह जरा तेज स्वर में बोला 'मैं झूठी गवाही नहीं दूंगा— मैं सही-सही बयान दूंगा कि तुम लोगों ने उस मजदूर नेता की हत्या की है।— कानून की मदद करना हर नागरिक का कर्तव्य है।'

तन्ना खिसक गया। रमण भागकर पुलिसवाले के पास पहुंचा, 'देखिए सिपाही जी यह आदमी मुझसे झूठी गवाही देने के लिए धमका रहा है। अभी मारने तक की धमकी भी दी है।'

'कौन है वह ?' पुलिस वाला अनजान बनता हुआ बोला, जबकि वह तन्ना को पहचानता था।

'भाई साहब वह तन्ना है।'

'''''वो अभी आपको देखकर सांप की तरह सरक गया।'

सिपाही ने उसे बेरुखी से देखा और कहा—'फिर तुम यहां क्यों खड़े हो। जल्दी से तुम भी सरक जाओ। तन्ना फिर आ जाएगा।'

'तो''' तो''' क्या आप मेरी उससे हिफाजत नहीं करेंगे। रमण ने जरा उग्र स्वर में कहा आप तो पुलिस हैं।'

सिपाही ने उसे घूर कर खा जाने की नजर से देखा। उसके जबड़े सख्त हो गए। विष डूबे स्वर में बोला क्या पुलिस वाले फौलाद के होते हैं? क्या उनके बाल'''बच्चे नहीं होते ?'''तन्ना साला पेशेवर गुण्डा है। बड़े आदमियों का चमचा है। बड़े-बड़े नेताओं का किरिपा पात्र है।'''मुझे अपनी बीबी का सुहाग प्यारा है।'''जा, भाग यहां से।'

रमण का मुंह लटक गया।

वह अदालत के बड़े-बड़े खम्भों के बीच में से होता हुआ भाग चला और तब तक भागता रहा जब तक वह एक सूने बगीचे में नहीं पहुंच गया।

+ + +

वह एक लावारिस बगीचा था। कुदरतन बना हुआ। उसे छोटा जंगल भी कहा जा सकता था, क्योंकि वहां कोई भी पेड़-पौधा तरतीब से नहीं लगा हुआ था। सब कुछ गडमड था।

वह एक पेड़ की छाया में बैठ गया। फिर लेट गया। उसका शरीर पसीने में लथपथ था। वह हांफ रहा था और बार-बार अपने शरीर पर हाथ फेर रहा था मानो वह अपने अंग-प्रत्यंग को जांच रहा हो कि वे सही सलामत तो हैं ?

लेटे-लेटे वह सोच रहा था, किस आफत में साला फंस गया। तन्ना उसकी अंतड़ियां निकाल देगा, फिर उसकी बीबी और दो बच्चों का क्या होगा वह सोचता रहा। उसका मन अपने बीबी और दो बच्चों के प्रति चला गया। सब कुछ होते हुए भी वे कितने असहाय हैं, न अच्छा खाना, न अच्छे कपड़े और न अच्छा घर ''''''रहम सबको न रही सरा जीवन।

रमण अपने बदनसीब को कोसता रहा। उसको दोनों बाबू ने उसे कई बार कहा था, इसे पकड़ा छोड़कर शहर मत जाओ। मगर रमण नहीं माना। उनको

गवाह

अदालत के घेरे में आते ही कासी ने उसे पकड़ लिया। वह भी कासी को पहचान गया। फिर भी वह नितान्त अजनबी बनते हुए बोला 'भाई साहब। मैं आपको नहीं जानता। आप कौन हैं? आप मेरा पीछा खामखा क्यों कर रहे हैं?'

वह खामोशी को पीते हुए आगे बढ़ने लगा तो एक हट्टे-कट्टे काले आदमी ने उसका हाथ झटके के साथ पकड़ा।

'आप मेरा हाथ छोड़िये।' वह गुस्से में भर गया।

मगर उस काले तगड़े आदमी ने उसका हाथ नहीं छोड़ा। वह उसे घसीटता हुआ अदालत के एक कोने में ले गया। जहां धूप का बड़ा टुकड़ा पसरा हुआ था। उसमें रमण का आतंकित चेहरा साफ दिखाई दे रहा था। उभरी हड्डियों वाला चेहरा। आंखों में दहशत। शरीर में अजीब-सा कम्पन।

'साले। तू मुझे नहीं जानता। मैं रामपुरी चाकू से तेरी अंतड़ियां बाहर निकाल दूंगा, तब तू मुझे तुरन्त पहचान लेगा?' तगड़े आदमी ने उसे दीवार में धकेलते हुए बहुत ही धीमे स्वर में धमकी देते हुए कहा, 'मेरा नाम तम्रा है। हमने तुझे एक हजार रुपये यहां से भाग जाने के लिए दिए थे? और तू अ भी यहां मौजूद है।' तम्रा का स्वर नफरत से भरा हुआ था।

रमण ने अपनी आंखें उस पर गड़ा दीं। वह आश्चर्य से कांपते हुए स्व में बोला, 'यह भी कोई बात है कि तुम मुझे जबरदस्ती गवाही दिलाओगे? झूठी गवाही नहीं देता। मैं आपको नहीं पहचानता। कौन से रुपए?

तम्रा की आंखों में हिंसा तैर आई। वह विषाक्त स्वर में बोला 'ओ चुगद। लग रहा है कि तू अपने घरवालों से लड़कर आया है। चोट्टे मैं तु जिन्दा नहीं छोड़ूंगा। कह तो यहीं तेरा काम तमाम कर सकता हूं।'

रमण ने थूक गटक कर अपने सूखे होठों पर जीभ फेरी। और घिघि याता हुआ सा बोला 'मैं झूठी गवाही नहीं दे सकता। मैं कोई पेशेवर गवाही दे वाला थोड़े ही हूं।'

सहसा रमण को निगाह के दायरे में एक सिपाही आ गया। उसे देखते ही उसमें साहस जागा। वह जरा तेज स्वर में बोला 'मैं झूठी गवाही नहीं दूंगा— मैं सही-सही बयान दूंगा कि तुम लोगों ने उस मजदूर नेता की हत्या की है।— कानून की मदद करना हर नागरिक का कर्तव्य है।'

तन्ना खिसक गया। रमण भागकर पुलिसवाले के पास पहुंचा, 'देखिए सिपाही जी यह आदमी मुझसे झूठी गवाही देने के लिए घूस देता है। अभी मारने तक की धमकी भी दी है।'

'कौन है वह ?' पुलिस वाला अनजान बनता हुआ बोला, जबकि वह तन्ना को पहचानता था।

'भाई साहब वह तन्ना है।'

'''''वो अभी आपको देखकर सांप की तरह सरक गया।'

सिपाही ने उसे बेरुखी से देखा और कहा—'फिर तुम यहां क्यों खड़े हो। जल्दी से तुम भी सरक जाओ। तन्ना फिर आ जाएगा।'

'तो''' तो '' क्या आप मेरी उससे हिफाजत नहीं करेंगे। रमण ने जरा उग्र स्वर में कहा आप तो पुलिस हैं।'

सिपाही ने उसे घूर कर खा जाने की नजर से देखा। उसके जबड़े सख्त हो गए। विष डूबे स्वर में बोला क्या पुलिस वाले फौलाद के होते हैं? क्या उनके बाल'''बच्चे नहीं होते ?''''तन्ना साला पेशेवर गुण्डा है। बड़े आदमियों का चमचा है। बड़े-बड़े नेताओं का किरिपा पात्र है। '''मुझे अपनी बीबी का सुहाग प्यारा है।''''जा, भाग यहां से।'

रमण का मुंह लटक गया।

वह अदालत के बड़े-बड़े खम्भों के बीच में से होता हुआ भाग चला और तब तक भागता रहा जब तक वह एक सूने बगीचे में नहीं पहुंच गया।

+ + +

वह एक लावारिस बगीचा था। कुदरतन बना हुआ। उसे छोटा जंगल भी कहा जा सकता था, क्योंकि वहां कोई भी पेड़-पौधा तरतीब से नहीं लगा हुआ था। सब कुछ गडमड था।

वह एक पेड़ की छाया में बैठ गया। फिर लेट गया। उसका शरीर पसीने में लथपथ था। वह हांफ रहा था और बार-बार अपने शरीर पर हाथ फेर रहा था मानो वह अपने अंग-प्रत्यंग को जांच रहा हो कि वे सही सलामत तो हैं?

लेटे-लेटे वह सोच रहा था, किस आफत में खामखा फंस गया। तन्ना उसको अंतड़ियां निकाल देगा, फिर उसकी बीबी और दो बच्चों का क्या होगा वह कांप गया। उसका मन अपने बीबी और दो [illegible] गया। सब कुछ होते हुए भी वे कितने असहाय हैं, न [illegible]ड़े और न अच्छा घर एकदम अभावों [illegible]

[illegible] रानू ने उसे कई बार [illegible]रण नहीं माना। उसको

महत्वाकांक्षायें उसे कोंचने लगी कि वह शहर नहीं जायेगा तो वह कभी भी अच्छा घर नहीं बना पायेगा, कभी भी समृद्ध नहीं बनेगा। मगर शहर तो अजनबियों का था। उसे नौकरी नहीं मिली। वह दफ्तरों के दरवाजे खटखटाता रहा। सड़कें नापते-नापते उसके जूते घिस गये। धीरे-धीरे वह टूट सा गया।

और एक दिन लावारिस-सा वह एक चौराहे को पार कर रहा था तो तीन आदमखोरों ने एक खद्दरधारी युवक को चाकुओं से ऐसा कौंच डाला जैसे वह इन्सान न होकर कोई ककड़ी हो।

वह मर्माहत स्वर में चीखा, 'क्यों मार रहे हो इसे'""इस तरह चलते आदमी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?""मगर वे हत्यारे उस युवक को मार कर भाग गए।

उसने झटपट एक हत्यारे को दबोच लिया और जोर से चिल्लाया—'खून"" खून""खून""बचाओ" बचाओ "बदमाश भाग रहे हैं""

चौराहे के चारों ओर चेहरे उभर आए। दो सिपाही भी आ गए। उसने गुण्डे को दबोचे रखा मजबूती से।

रमण ने भीड़ की ओर विजयी नायक की तरह गर्व से देखा मानो वह नजरों से कह रहा हो मैंने मुस्तैदी व चुस्ती से हत्यारे को पकड़ा है।

एक मूंछवाले सिपाही ने अपने साथी से कहा जमीर—जल्दी से थाने जाकर रिपोर्ट करो।

'भाई साहब।' रमण ने चन्द लोगों को एक बहादुर की तरह देखकर कहा यह बदमाश भाग रहा था पर मैंने इसे धर दबोचा।'

सिपाही ने उसे तेज निगाह से देखा। फिर कड़ककर कहा खामोश रहो। पहले हमें कानूनी कार्रवाही करने दो।

वह झेंप कर चुप हो गया था।

एक जीप आ गई। थानेदार निहालसिंह उतरा। वह ठिगने कद का काइयां आदमी लग रहा था। उसने लाश तथा परिवेश को गम्भीर दृष्टि से देखा। फिर अपनी टोपी उतार कर दुःख भरे स्वर में बोला 'यह तो विकास मिल मजदूर संगठन का नेता है। मामला गम्भीर है। मुझे तुरन्त एस. पी. साहब को फोन करना होगा।'

इसी बीच रमण ने बार-बार यही दोहराया, 'मैंने इस हत्यारे को पकड़ा है। मैंने उन तीनों को हत्या करते देखा है। सचमुच वे बड़े खुंखार थे।'

डी. एस. पी. ने उसकी पीठ थपथपायी। कहा—'तुम अकेले ही इस हत्या के चश्मदीद गवाह हो। अपना बयान दो। देखो बिलकुल सच बोलना। कानून की मदद हर नागरिक को करनी चाहिए।'

रमण ने सही सही बयान दे दिया ।

पुलिस कार्रवाई करके चली गई । लाश पोस्टमार्टम के लिए भेज दी गई । चौराहे पर की इकट्ठी भीड़ छट गयी । पुलिस का सख्त पहरा तैनात हो गया । धीरे धीरे सन्नाटा छा गया ।

+ + +

रमण ने करवट बदली । उसके चेहरे पर गहरी चिन्ताएं थी । फिर भी वह यह सोच रहा था कि उसने बेकारी के दरमियान भी एक बहुत ही अच्छा काम किया है । तभी उसके कंधे पर एक हाथ पड़ा जो उसे लोहे का सा लगा । उसने पलट कर देखा । एक बहुत ही खूबसूरत युवक उसके पीछे खड़ा था । रंग गोरा शरीर छरहरी । उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में आदमखोर की सी हिंसता थी ।

रमण ने कुछ कहना चाहा पर उसके होंठ चिपक गए । आतंक भय उसके दिमाग में समा गया ।

आगन्तुक जहरीले स्वर में बोला 'ओवे धर्मात्मा की औलाद । तू पुलिस का गवाह बनेगा । तुमने हत्यारे को पकड़ा है । तुमने हत्या करते हुए हमारे साथी ईश्वर को देखा है मगर तुम्हें ये सब कुछ भूल जाना पड़ेगा । तुम्हें इस घटना को एक सपना समझना पड़ेगा । समझे ।'

'देखिए भाई साहब ।' वह कांपते स्वर में बोला 'मैंने हत्यारों को बिल्कुल देखा है । मैं उन्हें पहचान सकता हूं । यह कितना बड़ा पाप है । अन्याय है । श्रीमान् । क्या हमें कानून की मदद नहीं करनी चाहिए ।'....

वह कुटिलता से हंसा ।

उसी पल उसका एक साथी तन्ना आ गया । उसके हाथ में एक बोतल थी । वह तीव्र स्वर में बोला 'कासी, यह सत्यवादी हरिश्चन्द्र क्या कह रहा है ?'

वह व्यंग्य से बोला, 'यह एक अच्छे नागरिक का कर्त्तव्य निभाना चाहता है ।'

तन्ना ने बोतल दिखा कर कहा—'इसमें तेजाब है । हम तुम्हारी आंखें फोड डालेंगे । फिर तुम अदालत तक भी नहीं पहुंच पाओगे ? दुनिया में ठोकरें खाते-खाते मर जाओगे ।'

कासी ने सुभाव के रूप में कहा 'देखो, हमारी बात मानो और यह एक हजार रुपए लेकर यहां से ऐसे दफा हो जाओ मानो तुम कभी इधर आए ही नहीं थे । इसी में तुम्हारी भलाई है । हम खामखा किसी को मारना नहीं चाहते ।'

कासी ने अपनी जेब से सौ-सौ के दस नोट निकाले ।

'नहीं""नहीं....' वह पीछे खिसक गया ।

'देखो, ज्यादा ईमानदार बनने की कोशिश न करो । इस जमाने में ईमानदारी बड़ी तकलीफदेह होती है । मेरी बात मानो और रुपए लेकर चम्पत हो जाओ । यह कोई पाप नहीं है ।' कासी ने अपने स्वर को मखमल की तरह

मुलायम करके गहरी आत्मीयता से कहा, 'आजकल बड़े-बड़े अपराधी इन नोटों के बल पर छूट जाते हैं। कौन नोट नहीं लेता ? पैसे लो और हमारे रास्ते से हट जाओ वर्ना हम तुम्हें अंधा कर देंगे।'

रमण मर्मान्तक पीड़ा से घिर गया। उसे लगा कि वह राक्षसों के घेरे में फंस गया है।

उसने मारे भय से यन्त्रवत हाथ फैला दिया। 'नहीं-नहीं, मुझे अंधा न करो, मैं बहुत ही दुखी हूं। मेरी बीबी और बच्चे भूखों मर जाएंगे।'

तन्ना ने उसकी पीठ को थपथपा कर कहा, 'आदमी समझदार हो। अब तुम इस शहर से भूत की तरह गायब हो जाओ।'

\+ \+ \+

रमण की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई। ग्रामीण वातावरण में परिपक्व हुए उसके संस्कार आदर्श और नैतिक आचरण उसे कचौटने लगे। नोट बड़ी देर से उसकी मुट्ठी में बन्द थे। उसने नोट फेंकने का इरादा रखते-रखते जेब में डाल ही लिए।

उसके चारों ओर भयावह वातावरण बन गया था। अपनी झुग्गी में व अंधेरे में पड़ा, अपनी मौत की कई तरह की विभत्स व रक्त-रंजित कल्पनाएं करता रहा। सत्रास के खूंखार पंजे उसे कौंच रहे थे, उसने ऐसा महसूस किया। उसका शरीर पसीना-पसीना हो गया। झुग्गी से बाहर निकल कर उसने लैम्प पोस्ट की बीमार रोशनी को देखकर यह अनुभव किया कि वह देख नो सकता है।

नीम अंधेरे ही वह उठकर एस. पी. साहब के दफ्तर चला गया। वहां उसने अपने आपको काफी सुरक्षित समझा। वह एक कोने में दुबक कर बैठ गया। एक चोर की तरह। सोच रहा था, वह सही-सही बात ही कहेगा और ये रुपये एस. पी. साहब को सौंप देगा।

एस. पी. आया। उसने लपक कर उन्हें हाथ जोड़े। कुछ कहना चाहा तो उसके अर्दली ने उसे डांटा। 'रास्ता छोड़ो.....।' वह सहम गया।

एस. पी. भीतर चला गया।

वह उस दिन एस. पी. साहब से नहीं मिल सका। अर्दली ने बार-बार यही कहा साब 'व्यस्त हैं। आज नहीं मिल सकते।' आखिर वह सब-इन्सपेक्टर से मिला। सारी स्थिति बतायी तो सब-इन्सपेक्टर ने कहा वे गुण्डे कोई मुदा नहीं होते हैं। ..'तुम अदालत में आ जाना, ये रुपए हमें दे जाओ। मैं सब ठीक-ठाक कर दूंगा।'

जब वह बयान देने अदालत गया तो किसी ने उसकी परवाह नहीं की।

उल्टा तन्ना ने बेईमान और कमीना कहा। हजार रुपये सब-इन्सपेक्टर के पास चले गए थे। उस बेचारे के पास चाय पीने को भी पैसे नहीं थे। उसे लगा कि इस व्यवस्था ने उसे ग्रस लिया है।

इस पर पुलिस वालों की दबे स्वर में चेतावनियां कि तन्ना पेशेवर हत्यारा है। उसके हाथ लम्बे हैं ··· उसे सेठों व राजनेताओं का प्रश्रय है ··· देखो, उससे मत उलझो। जान से हाथ धो बैठोगे।

\+ + +

वह काप गया। वह उस बेतरतीब बगीचे से निकल पड़ा। उसे हर पल तन्ना का हिंस्र व क्रूर चेहरा दिखाई पड रहा था। उसका चाकू वाला हाथ उसे कोंचते हुए लगता था—ठीक मजदूर नेता की तरह।

दो-चार आदमियों के जत्थे को देख कर वह दहशत से घिर जाता था। उसकी नसों में खून जम जाता था। हर सिपाही उसकी नादानी पर व्यंग से मुस्कराता हुआ लगता था।

आखिर वह अपनी झुग्गी में घुस गया और मुर्दे की तरह चिथड़ों पर पड़ गया।

तभी तन्ना और कासी ने उसकी झोंपड़ी में प्रवेश किया। वह उन्हें देखते ही स्तब्ध रह गया। वह ठंडा पड गया। घिग्घी बंध गई, 'तुम ··· तू ···'

तन्ना ने तटस्थता से उसे घूरा। फिर कठोर स्वर में कहा—'धोत तेरे! अब तुम्हें या तो यहाँ से नौ-दो ग्यारह हो जाना चाहिए। या फिर हम तुम्हें उस लोक में भेज देंगे? ··· ये एक हजार रुपए और लो। हमें सब-इन्सपेक्टर बता रहा था कि वह सत्यवादी मेरे पास आया था। सही बयान देने की बात कर रहा था। हजार रुपए मुझे भी दे गया गधे की औलाद।' तन्ना ने उसे पटकारा 'वो रुपए उस सब-इन्सपेक्टर की जेब में चले गए हैं। हम सुबह फिर आएंगे। यदि तुम यहां दिखाई पड़े तो तुम्हारे घर वाले तुम्हारी लाश भी नहीं देखेंगे।'

वे तीर की तरह निकल गए।

'हे भगवान यह सब क्या है?' वह लम्बी सांस लेकर निढाल हो गया। जद्दोजहद के बाद उसने सोच लिया कि यहां उसकी कोई सुरक्षा नहीं है। पुलिस तो उसकी परवाह ही नहीं करती। फिर वे भी तो तन्ना से डरते हैं—सुबह वे फिर आएंगे।'

यह वाक्य उसके बदन में सुइयों की तरह चुभने लगा। रात भर वह डर के कारण सो नहीं पाया। अंधेरे-अंधेरे वह घर से निकल पड़ा। चलते-चलते वह एक मन्दिर के सामने पहुंचा। वह थक गया था। मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठ गया।

तभी एक युवक भूत की तरह प्रकट हुआ। उसके हाथ में चाकू था। वह चेतावनी भरे स्वर में बोला, 'खबरदार जो भागने की कोशिश की तो जान से मार डालूंगा। जो कुछ जेब में है मेरे हाथ में दे दो।'

रमण ने उसे गौर से देखा। बहुत ही कमजोर व दुबला पतला युवक था। उसका हाथ कांप रहा था। पीठ पेट एक थे।

रमण ने जेब में हाथ डाला और उस व्यक्ति के हाथ में नोट रखते हुए एक जोर का झटका दिया। युवक कटे पेड़ की तरह लुढ़क गया। चाकू दूर गिर गया। रमण ने उसे दबोच कर कहा 'अब मैं तुम्हें जान से मारूंगा। साले यहां के लोग दस पैसे की खातिर एक दूसरे को मारने मे लगे रहते हैं।'

'नहीं· · · नही · · · मुझे मत मारो, मैं बहुत गरीब हूं। मेरी पत्नी अधनंगी व भूखी घर में बैठी है। मेरा बच्चा बीमार है। मुझे मत मारो। · · मैं हाथ जोड़ता हूं · · · दया करो। बड़े भाई। मैंने देखा और समझा कि इस चाकू से मेरी समस्या हल हो जाएगी। मगर बदनसीबों का तो हथियार भी साथ नहीं देता · · · मुझ पर रहम करो · · ·

रमण ने उसे छोड़ दिया। युवक रोए जा रहा था। अपराधी की तरह खड़ा था। उसके चेहरे पर पसरी निर्दोष मासूमियत ने रमण को पिघला दिया। उसने उसे सौ का एक नोट थमा दिया लो आज की सही कमाई का एक हिस्सा। जाओ . . .भाग जाओ।'

युवक सचमुच भाग गया। रमण ने एक बार अन्तः आकाश को देखा फिर धरती को। फिर मन्दिर के भगवान को। वह घृणा से बोला 'यदि तेरी यही दुनिया है तो, थू है।' और उसने आक थू · · · की और चल पड़ा—गांव की ओर।

□

यह तेरा देश

उसका मोह भंग हो गया। उसे लगा कि समन्दर में जो भी गिरा, वह नमक बन गया। वैसा ही खारा। कोई समन्दर में डुबकी लगाकर अपने असली अस्तित्व को बरकरार नहीं रख पाया।

उसके हाथ मे पांच रंग-बिरंगे थैले थे। पैंट की हिप-पाकेट में पुराना बदरंग बटुआ। उसमे नौ सौ रुपये थे। अपनी तनख्वाह के। किराया व बच्चों की फीस भरने के बाद बचे हुए रुपये। इन रुपयों से उसे पूरे महीने का खर्च चलाना था। महीने भर की सारी व्यवस्थायें व आवश्यकतायें उसे पूरी करनी थी। पहले ये काम उसकी धर्मपरायण सती-सावित्री पत्नी करती थी। तब उसे कोई चिन्ता फिक्र नहीं थी। उसका तो बस एक ही काम था कि पूरे महीने कोल्हू के बैल की तरह पिलकर तनख्वाह लाकर अपनी पत्नी के हाथ मे दे देना, बस।

अब वह अपने लिए सिर्फ पचास रुपये रखता था। बीड़ी के खर्च के लिए तीस। इसके अलावा बीस ऊपरी खर्च जैसे साइकिल का पंचर निकलवाने और कभी-कभी ककड़ी, मूली या केला खाने के लिए। चाय इधर उसने छोड़ दी थी। हालांकि वह सालों से चाय पीता आ रहा था पर जब घर में तीन सौ रुपया माहवार का खर्च केवल चाय का होने लगा तो एक दिन परिवार में अन्य जरूरी आवश्यकताओं को देखते हुए तथा सबकी सहमति से चाय बनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। उसने अपने पुराने मित्रों से भी प्रायः मिलना-जुलना छोड़ दिया था। कारण भी स्पष्ट था कि उनके घर जाने पर कभी उन्हें अपने घर बुलाना भी पड़ता था और मेहमानबाजी में इधर काफी खर्च हो जाता था जिसे वह बढ़ती हुई महगाई मे वहन नहीं कर सकता था। हालांकि उसके मित्रों ने उसकी इस उदासीनता को लेकर कई फब्तियां कसी पर वह निरीह प्राणी की तरह केवल मुस्कराता रहा और झूठ भी बोलता रहा कि इधर वह पार्ट-टाइम काम करने लगा है। वह महानगरीय औपचारिकताओं से पूर्णरूपेण बचना चाहता था। वस्तुतः उसकी औकात ही ऐसी नहीं थी कि वह इस दौड़ का धावक बन सके। उसके दो बच्चे थे। एक लड़का और एक लड़की। दोनों घर की स्थितियों को गम्भीरता से समझते थे, अतः वे अपने मां-बाप को सहयोग करते थे। वर्तमान युवा पीढ़ी से बिल्कुल भिन्न वे संयम, शील और औकात के अनुसार जी रहे थे। यही हरिश्चन्द्र के लिए एक सौभाग्य था।

नीम के गोल चबूतरे के तले वह बैठा हुआ अभी सुस्ता रहा था। वह अपने को काफी थका-थका और टूटा-टूटा सा महसूस कर रहा था। अनेक अभावों से घिरा वह अन्ततोगत्वा सोच बैठा, बिल्कुल दार्शनिक की तरह कि चिता मरे को जलाती है और चिंता जिंदे को।

किसी ने पुकारा—'हरिश्चन्द्र।'

वह चौंका। देखा—मनसुख था। उसके साथ ही काम करता था। बड़ा मस्त और खुशमिजाज। पता नहीं, वह किस मिट्टी का बना हुआ था कि इस अभावग्रस्त जिन्दगी के हजारों तनावों में भी वह फूल की तरह खिला-खिला सा रहता था। आज सहसा हरिश्चन्द्र की इच्छा हो गयी कि वह इसका कारण पूछे।

उसने समीप आकर खड़े हुए मनसुख से पूछा, 'मनसुख, एक बात का उत्तर दो कि तुम इन हालात में खुश कैसे रह लेते हो ?'

मनसुख जब व्यंग्यभरी बात करता था तब वह हरिश्चन्द्र को सत्यवादी कहता था। उसने तरस भरी हंसी के साथ कहा, 'सत्यवादी ! मैंने समय के यथार्थ को पहचान लिया है। इस व्यवस्था में जीने की कुन्जी को समझ लिया है। भाई मेरे, अंधेर नगरी की न्याय-व्यवस्था और कार्य-पद्धति का अपने देश में बोलबाला हो गया है। हर बात की भाषा बदल गयी है। मनुष्य अर्थ पिशाच बनता जा रहा है। सोने की जगह लोहे का साम्राज्य फैल रहा है। आदमी यंत्र व पूंजी की दोगली सन्तान बनता जा रहा है।……शब्द अर्थ, सत्य और नीति का तात्पर्य ही बदल गया है। अब आदमी ईमानदारी से नहीं जी सकता। उसे वही करना है, जो समय कराता है। किसी भी तरह पैसा कमाओ और मौज करो।……पर तुम सतयुग के प्राणी हो ? तुमसे रिश्वत नहीं ली जाती, तुमसे झूठ नहीं बोला जाता, तुमसे पाप नहीं होता। फिर बैठो इस नीम के नीचे और सत्य-कर्म से उत्पन्न संकटों को ईश्वरीय वरदान समझ कर सन्तोष करो।……गधे। यदि तुम्हारी कुर्सी पर मैं होता तो अभी तक सोने की भले ही नहीं, चांदी की कुर्सी अपने घर में जरूर बनवा लेता। सड़ो, सतयुगी महापुरुष, इस कलियुगी सच्चाई को बिना समझे सड़ो।'

वह धार्मिक उपदेशक की तरह बोल कर चला गया। हरिश्चन्द्र के चारों ओर गूंगा-बहरा सन्नाटा पसर गया। एक ऐसे खुरदरापन का उसे आभास हुआ मानो वह किसी अनगढ़े पत्थर पर बैठ गया हो।

वह अधिक अशक्त हो गया। एकाएक उसका ध्यान प्रधानमन्त्री के पोस्टर की ओर चला गया। बिजली के खम्भे पर लगा वह पोस्टर कितना आकर्षक, हंसमुख और सुन्दर था। युवा प्रधानमन्त्री की एक मोहक छवि।

उसने सोचा—काश ! उसके चेहरे पर भी यह हंसी, आकर्षण और लिनाव होता । ऐसी ताजगी कभी उसे मिलेगी ?

वह उदास हो गया ।

अप्रत्याशित उसके मस्तिष्क में जैसे लहर आकर चली गयी और पल भर के लिए उसे शून्य बना गयी ।

उसने नेत्र मूंद लिये । फिर खोले और एक बार भीतर आम आदमी का आक्रोश, उत्तेजना और घृणा भर आयी—भयंकर महंगाई की पीड़ा उसे सहस्र सांप दर्शन की पीड़ा से भी अधिक मर्माहत कर गयी । शूल भरी यंत्रणा ! एक टण्डापन ! ऊब और खालीपन ।

सड़कों पर जोरदार आवागमन था । इस गहमागहमी में केवल एक तेज रफ्तार थी ।

फिर उसकी दृष्टि प्रधानमन्त्री पर चली गयी । उसे यह लगा कि प्रधानमन्त्री के चेहरे पर मुखौटा लग गया है और वह अपनी पहचान खो चुका है । उसके चेहरे पर बार-बार परिवर्तन आ रहा है । देखते-देखते नये-पुराने तमाम मन्त्रियों के चेहरे उनके चेहरे पर चिपक-चिपक कर उतरने लगे हैं ।

उसने दीर्घ निश्वास लेकर बुदबुदाया—सब एक दूसरे के चट्टे-बट्टे । समन्दर में जो भी गिरा नमक हो गया ।

खारेपन का अहसास उसकी जीभ पर हुआ । सहसा वह इतना गहरा हो गया मानो सागर की एक लहर उसके मुंह में समा गयी हो""

वह कसमसा उठा । बार-बार थूकने लगा, हालांकि यह सिर्फ अहसास था, वास्तविकता नहीं ।""पर यह अहसास काफी तीखा था ।

वह उस अनुभूति से तभी कटा जब एक पक्षी ने उसके सिर पर बीट कर दी । बीट आधुनिक कला की तरह उसकी आकृति पर छितरा गयी । विरूप हो गया उसका चेहरा ।

उसने अरुचि से रूमाल से अपना चेहरा पोंछा । फिर वह सामान खरीदने के लिए उठने लगा पर उसके पांव इतने भारी हो गये कि उससे उठा नहीं गया । वस्तुतः यह उसकी चिंतित मानसिकता की प्रतिक्रिया थी कि वह इस महंगाई के चक्रव्यूह से कैसे बाहर निकलेगा । केवल नौ सौ रुपये...और पूरे माह का खर्च ! उसने एक बार फिर याचना भरी दृष्टि से प्रधानमन्त्री के पोस्टर की ओर देखा । देखते-देखते उसकी आखें नम हो गयीं । अन्तस की पीड़ा आंसू बन कर टपकी नहीं, केवल नयन-कोरों को छूकर डूब गयी ।"' वह जैसे दृष्टि-विनय कर रहा हो कि मेरे प्रधानमन्त्री, हमें आपसे बहुत आशायें थीं । आपके प्रारम्भिक ओजस्वी, तेजस्वी भाषणों, घोषणाओं, इरादों से लगा कि अब इस देश में वह होगा जो पहले नहीं हुआ है । आपने कहा था—भ्रष्टाचार, निठल्लापन, बेईमानी को सहा

नहीं जायेगा। मैं देश को एक स्वच्छ प्रशासन दूंगा।....जवान खून उबलता है, उफनता है, उसमें कर्मठता, क्षमता और सत्यता का सागर लहराता है। सबकी बात नहीं करता पर मैं अपनी बात करता हूं। मुझे लगा कि हमारे जीवन पर एक खुशहाली की परत छा जायेगी और कम से कम मेरे जैसे पिसे हुए आदमी को एक सुख, निश्चितता, सहज जीवन मिलेगा....। कम से कम मैं परिवार के दायित्व का निर्वाह तो आसानी से कर लूंगा।....पर मेरे माननीय प्रधानमन्त्री, आपके प्रशासन में वही हो रहा है जो स्वाधीनता के बाद होता आया है। आप भी उन्हीं बोदी और बनी-बनायी लकीरों के फकीर बन गये जो देश के जीवन को खोखला करती जा रही हैं....आश्वासनों, योजनाओं, भाषणों से पेट नहीं भरता। ये सरमायादार व मुनाफाखोर हर चीज को निगलते जा रहे हैं। यहां के हर आदमी का इतना चरित्रहनन हो गया है कि वह कुछ करने के पूर्व हड़प जाना चाहता है। धर्म-जाति और सम्प्रदाय की आग बढ़ती जा रही है।

सच मेरे प्रिय प्रधानमन्त्री, यदि आपने इन पर अंकुश नहीं लगाया तो सब नष्ट हो जायेगा। हम मर जायेंगे, सिर्फ अपने घर की जरूरतों को पूरा करते और अपने आपको भयहीन करने के लिए ही मर जायेंगे।...न जीवन में परम आनन्द है और न कोई निश्चितता।

एक अदृश्य और अनचीन्हें आतंक से घिरे हैं हम। एक पल भी निरापद नहीं है।....

'क्या सोच रहे हो हरिश्चन्द्र ?' रिक्शेवाले रामदीन ने अपनी रिक्शा रोक कर कहा, 'इतने गुमसुम क्यों हो ?'

रामदीन उसी के गांव का था। उसके बचपन का मित्र था। साथ-साथ पढ़े थे दसवीं तक। समय ने उसे क्लर्क और रामदीन को रिक्शेवाला बना दिया।

'भई ! घर-गृहस्थी का सामान लेने निकला था....महंगाई देखकर हिम्मत पस्त हो गयी। क्या लूं और क्या न लूं ?'

'हां हरिश्चन्द्र, इस देश में तो गरीबों की दाल रोटी भी इतनी महंगी हो गयी है कि आसानी से नहीं मिल सकती। समझ में नहीं आता-आगे क्या होगा। आदमी कैसे पेट भरेगा ? कैसे जियेगा।'

'राजीव जी के राज मे तो हद हो गयी।' हरिश्चन्द्र ने झल्लाकर कहा, ए तेल सत्ताइस और अट्ठाइस रुपये किलो...रिफाइण्ड तेल छियालीस रुपये...
दो रुपये की मिलती थी उसके चार रुपये...दाल दस, चावल चार से ...पचास-पचपन, दूध ...छह रुपये....मदर डेयरी के दूध की बात ही न स्वाद ही अलग....व्यापारी मनचाही लूट कर रहे हैं। हर सामान में ट करते है। जब चाहें बाजार से चीजें गायब कर देते हैं। फिर ब्लैक में

बेचते हैं।....पुलिस अधिकारी सबके सब अजगर हो गये हैं....कोई रखवाला नहीं रहा। राशन कार्ड बनाने के लिए रिश्वत देनी पड़ती है। हर अच्छे-बुरे काम के लिए कमीशन! आम आदमी का चौतरफा सर्वांग शोषण!'

रामदीन ने लम्बा सास लेकर कहा, 'भई! इस देश का कोई मालिक नहीं है। सबने राष्ट्र की जगह अपने घर को ही राष्ट्र बना लिया है। उसे कितना समृद्ध व सुदृढ़ करें इसी में ही वह लगा है।'

'हां रामदीन, जिधर देखो—एक आग सी सुलगती दिख रही है।'

'इससे तो अच्छा है प्रलय आ जाये और हम सब मर जायें। भाई! नौकरी की खोज करते-करते तो मैं मर जाता। रिक्शा चलाकर पेट तो भर लेता हूं।' उसने आक्रोश से कहा और आगे बढ़ गया।

हरिश्चन्द्र उठने लगा कि अखबार बेचने वाला हाँकर चिल्ला रहा था—गर्म खबर...एक महिला के साथ सात ने बलात्कार किया....

लोग गर्म खबर के कारण अखबार धड़ाधड़ खरीद रहे थे।

हरिश्चन्द्र ने इच्छा न रहते हुए किसी आंतरिक दबाव की वजह से अखबार खरीद लिया। उसने उसे पढ़ना शुरू किया—

—एक महिला के साथ सात मर्दों द्वारा बलात्कार।

—पंजाब में आतंकवादियों ने चार की हत्या की।

—दो आतंकवादी मारे गये। दो गिरफ्तार।

—दुकानदार मिलावट के आरोप में गिरफ्तार।

—प्रधानमन्त्री द्वारा हरारे में महाभोज।

—कुपोषण से भारतीय बच्चों का विकास रुका।

—बिहार में भूख से दो मरे।

—सऊदी अरब में पुल बनाने का ठेका।

—कृष्णा नदी पर बना पुल टूटा।

हरिश्चन्द्र नयी आंखों से प्रधानमन्त्री के पोस्टर की ओर देखता रहा।

वह अत्यन्त सन्त्रस्त हो उठा। उसे अपने मौजूदा अस्तित्व का ध्यान नहीं रहा। वह क्या कर रहा है उसका भी उसे पता नहीं चला। पर थोड़ी देर बाद उसने बढ़कर पर बैठे देखा तो चौंक गया। उसने वह अखबार प्रधानमन्त्री के पोस्टर पर चिपका दिया था।

□

सर्वोच्च शिखर

वह भारती गुप्ता""एक प्रोफेशनल डाक्टर""जानी-मानी डॉक्टर भयंकर गरीबी से ऊबकर बड़े संघर्ष और अपूर्व मेधा के बल पर उत्कर्ष के शिखर तक पहुंचने वाली एक सफल महिला। सारा बचपना, किशोरावस्था और प्रारंभिक यौवन अभावों के साये में बीते""पर डाक्टरी पास करते-करते सहसा उसका परिचय प्रोफेसर सुदर्शन मनीष गुप्ता से हो गया और यह परिचय घनिष्टता में बदलता हुआ अंत में परिणय में बदल गया !""परिचय, प्रणय और परिणय के दौरान वह मनीष पर सभी दृष्टियों से हावी हो गयी थी।

वह मनीष से संतुष्ट थी। मनीष शांत प्रकृति का था। उस पर भारती काफी हद तक हावी थी। भारती ने छोटा-सा क्लिनिक खोल लिया था। क्लिनिक चलने लगा। यहां दोनों ने एक दूसरे के विचारों की रक्षा की। यानी पेशे के मामले में दोनों में तटस्थता थी। यानी कोई किसी की कार्यपद्धति में हस्तक्षेप नहीं करता था। भारती में पेशे के मामले में एक क्रूर दृढ़ता थी। वह बिना पैसे किसी मरीज को दवा नहीं देती थी। पहले पैसा दो फिर दवा लो। उसकी इस प्रवृत्ति की मनीष कभी-कभार थोड़ी-सी आलोचना कर देता था तब उसे भारती से उपदेश सुनना पड़ता था। भारती अत्यंत ही विषाक्त स्वर में कहती थी—'जैसे घोड़ा घास से दोस्ती कर लेगा तो खायेगा क्या ? वैसे ही मरीज से डाक्टर दोस्ती कर लेगा तो अपना गुजर-बसर कैसे करेगा ?"" जानते हो शादी के पहले हम दोनों ने एक-दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया था।"

मनीष की आंखों में एक उलाहना बपदपाता था। वह किंचित झल्लाहट में बोलता। "भारती ! डाक्टरी का पेशा लोहे-चमड़े का व्यापार तो नहीं है। इसके साथ जीवन-मृत्यु जुड़ी हुई है। तुम्हारी कठोरता व रूखापन किसी की जान भी ले सकती है ...

पर भारती निरुत्तर रहती। उसे तो पैसे की बीमारी-सी हो गयी थी। उसके भीतर की सारी करुणा, संवेदना और सहृदयता जैसे पथरीली बन गयी थी। धीरे-धीरे उन दोनों के बीच विरोध जन्मता गया। जब मनीष बहस के जाल फैलाने लगता और उसे इस बात को मानने के लिए बाध्य करने लगता कि इस पेशे में मानवीय दृष्टि का बिल्कुल परित्याग एक राक्षसी प्रवृत्ति है, तो ... उसे झिड़कते हुए कहती, "आजकल तुम अकारण ही मुझे उपदेश देने

लगते हो ' 'तुमने उन अभावों की दरिदगी को न देखा है और न भोगा है। यदि कुछ अर्से ही भोग लेते तो मुझे हताश करने की बजाय उत्साहित ही करते।

'""मनीष ! इस क्लिनिक का संचालन मेरे जिम्मे है' ' "मैं इसकी व्यवस्था में तुम्हारा हस्तक्षेप नहीं चाहती। अरे ! यह हमारा देश है न, इसकी अपनी निजी मौलिक पहचान इतिहास की चीज हो गयी है, साथ ही यहां के व्यक्ति के गुणों के आधार वाली पहचान भी खो गयी' ' 'पैसा आदमी की सबसे बड़ी शक्ति और पहचान है' ' 'मनीष ! तुम पांच-सात साल बिल्कुल मत बोलो फिर यदि तुम कहोगे तो मैं एक धर्मशाला बनवा दूंगी। धर्म का धर्म और नाम का नाम !"

"वाह ! अपने आपमें यह कितना बड़ा मजाक है ?" वह व्यंग्य से मुस्कराकर बोला—"लोग कहेंगे कि नौ सौ चूहे खाय बिल्ली हज को चली।"

भारती ने भड़कते हुए कहा, "ठीक है, पर मैं तुम्हारी बात नहीं मानूंगी। तुम्हारी तनख्वाह से तो घर के नमक-मिर्च भी नहीं आते।"

मनीष ने इस आरोप को अनिच्छा से स्वीकार करते हुए कहा, "यह मेरी तनख्वाह का दोष नहीं है। यह हमारी जीवन पद्धति का दोष है। मेरे कई सहकर्मी अपनी तनख्वाह में सारी गृहस्थी का रथ चलाते हैं। देखो भारती, केवल पैसा ही जीवन का मूल नहीं है। सुनो, हम लोगों को एक साथ सोये हुए कितने दिन हो गये हैं। ऐसा नहीं लगता कि पति-पत्नी होते हुए भी हम अजनबी हो गये हैं ! हमारे बीच गृहस्थ धर्म की सारी मर्यादायें व परंपराएं खत्म हो गयी हैं। सुबह से लेकर दूसरी सुबह तक हम यदा-कदा एक-दूसरे की शक्ल देख लेते हैं। क्या स्वाभाविक जीवन जीने के लिए इतना ही काफी है ?"

"मैंने कब तुम्हें मना किया है।" वह झल्लायी।

"यांत्रिक सहवास मनुष्य नहीं कर सकते।" मनीष ने कहा। "मैं तो एक भावुक आदमी हूं। तुम्हारे और मेरे बीच के संबंधों का आधार भावुकता और सामान विचार है न कि पैसा !"

"तुम वस्तुतः अजीब ढंग से सोचने लगे हो। मनीष""सिर्फ पांच-सात साल की बात है। फिर सब ठीक हो जायेगा। मैं तुम्हारी सारी शिकायतें दूर कर दूंगी। बस पांच सात साल गम गिटलो। प्लीज !" उसकी आंखों में याचना थी।

"क्यों ?" मनीष ने तड़पकर कहा, "यौवन का एक-एक पल जाकर नहीं लौटता !"

"प्लीज""धीरज रखो।"

और मनीष ने मौन धारण कर लिया। वह जान गया कि भारती इस बीमारी से मुक्ति नहीं पा सकती।

फिर क्लिनिक एक छोटे साम्राज्य में बदलने लगी। एक लड़के को जन्म देने के सात साल में भारती क्रमशः दो बड़े नर्सिंग होम की मालकिन हो गयी।

अपने नये अभियान के दौरान उसने एक शानदार कोठी पॉश कालोनी में बना ली। तीन-तीन कारें नौकर-चाकर! एक समृद्ध संसार!

भारती गुप्ता के अस्पतालों में अब गरीब का प्रवेश निषिद्ध-सा हो गया था। वैसे ही उसका चौकीदार अपनी छोटी-छोटी आंखों में एक अजीब सी उपेक्षा और अवहेलना के भाव लाकर गरीब मरीज को इतनी तीखी निगाह से देखता था कि वह बेचारा सहम कर लौट जाता था। यदि कभी किसी ने भीतर जाने की हिम्मत भी कर ली तो वह बिगड़ैल कुत्ते की तरह गुर्राकर कहता, 'यह खैराती अस्पताल नहीं है भैया, यहां हजार दो हजार रुपयों के बिना घुसना नहीं।'""कभी कभी वह चौकीदार बाज की तरह निर्मम होकर किसी आगन्तुक मरीज पर झपटता और संयोग से भारती आ जाती तो उसके अधरों पर एक रक्तरंजित अर्थभरी मुस्कान नाच जाती जैसे वह अपने चौकीदार को शाबासी दे रही हो।

इस बीच मनीष भारती से बिल्कुल अजनबी हो गया था। वह भारती को लेकर इतना उदास व विरक्त हो गया था कि नौकरी के अलावा वह सिर्फ एक काम करता था, वह भी अत्यन्त ही गुप्त रूप से; नर्स सौदामिनी से प्यार, पत्नी की विपुल अर्थ-जिजीविषा, अन्यायपरक कार्यपद्धति, क्रूरता भरा व्यवहार और पेशे को केवल उपार्जन का साध्य मानकर एक गतिमान जड़ता से घिरे रहने की स्थिति ने उसमें एक अदृश्य अलगाव को जन्म दे दिया था। वह कई बार सोचता था कि भारती में निर्मम आदिम प्रवृत्तियां है जो समय की बर्बर संस्कृति का चोगा पहन चुकी हैं, वह पूंजी व यन्त्र की दोगली सन्तान बन गई है।

उस दिन भारती ने उससे अनुरोधपूर्ण स्वर में कहा, 'मैं तुमसे विनती करती हूं कि तुम अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दो।'

'क्यों?' वह चौंका।

'इसकी जरूरत ही क्या है? हमारा अपना काम है। आजकल बाहरी आदमियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता।' न जाने क्यों अनायास ही भारती के मुंह से हठात् निकल गया, 'तुम अपनी तनख्वाह के दुगने रुपये ले लेना।'

मनीष ने एहसास किया कि जैसे भारती ने उसके गाल पर चांटा मार दिया है। वह उत्तेजित होकर बोला, 'मैं तुम्हारी नौकरी करूं?'

भारती जैसे अपनी भूल का एहसास करती हुई बोली, 'नहीं नहीं, मेरे

वह तड़प उठा। उसने एक दर्दभरी निगाह, वह भी उचटती हुई उस पर डाली। एक अजीब से एहसास को पीते हुए उसने कहा, 'जो व्यवस्था जड़ता का रूप ले लेती है, उसका नष्ट होना ही जरूरी है। कभी कभी बाहरी गतियां भीतर की सारी गतियों को मार देती हैं। मुझे लग रहा है कि मेरे भीतर एक बिखराव-सा आने लगा है और कोई नई तलाश भी शुरू हो गयी है।'

वह उसकी दार्शनिकता भरी लम्बी बातों से ऊबने लगी। उसके पास इतना वक्त नहीं था। उसने सोचा कि उसके अस्पताल में मरीजों की भीड़ लग गयी होगी। कौन-सा डाक्टर इस समय आ गया होगा और किसको गैरहाजिर डाक्टर की ड्यूटी पर लगाना होगा, कौन से आप्रेशन होने हैं और कौन से मरीजों को छुट्टी देनी है, ये सारी व्यवस्थायें उसे ही करनी पड़ती हैं।

वह झटके के साथ उठी और चलते-चलते उसकी आकृति पर एक पथरीली परत जम गयी। फिर उस परत में कई तरेड़ें होने का आभास हुआ। वह अत्यन्त ही सख्त स्वर में बोली, 'मैं तो समझती थी कि तुम जीवन के हर मोड़ पर मेरा सहयोग करोगे पर तुम""ठीक है तुम जो मर्जी में आये करो पर कम से कम शिरीष की तो देखभाल कर लिया करो।'

उसने सिरहाने एक पेंटिंग टगी हुई थी। उसमें घने जंगल में एक शेरनी को अपने बच्चों के संग दिखाया गया था। उस पर दृष्टिपात करके मनीष अर्थ-भरी मुस्कान के साथ बोला, 'सैकड़ों की देखभाल करने वाली डाक्टर साहिबा क्या अपने एक बच्चे की देखभाल नहीं कर सकती ?'

'ओह ! तर्कों के सिवाय तुम्हारे पास कुछ रह नहीं गया है। लोग अपनी उन्नति से खुश होते हैं और एक तुम""' वह पीड़ाजनित आवेश में कराह उठी।

वह चलने लगी तब उसका चेहरा एकदम सपाट था।

अस्पताल में जबरदस्त गहमागहमी। तरह-तरह की आकृतियां और आवाजें।

यमदूत की तरह निर्मम चौकीदार।

एक बुढ़िया उसके पास अपना सिर झुकाए बैठी-बैठी खामोश सुबकियां ले रही थी। चौकीदार पर उसकी बेहाली का कोई असर नहीं था। वह एक सख्त तटस्थता से घिरा हुआ था। बुढ़िया के पास उसकी उदास बहू निस्पंद-सी बैठी थी""वहां उसका अचेत बेटा एक गन्दी दरी पर मुर्दा-सा पड़ा था।

चौकीदार ने उन्हें आते ही बता दिया था, 'यह धर्मार्थ अस्पताल नहीं है। ए बुढ़िया, अपने बेटे को लेकर किसी सरकारी अस्पताल में क्यों नहीं चली जाती ! वहां हर चीज मुफ्त में मिलती है।'

बुढ़िया ने आर्त्तस्वर में कहा था। 'सरकारी अस्पताल में हम गरीबों को

कुछ नहीं मिलता। मेरे एक ही बेटा है। पिछले साल ही उसकी शादी की है। मेरे बेटे का इलाज करवा दीजिए। मैं अपने गांव का घर खेत बेचकर आपकी पाई-पाई चुका दूंगी। बेटा नहीं तो घर-खेत कैसे ?'

समीप बैठे एक मरीज ने बुढ़िया की ओर करुणा भरी नजर से देखकर मन्द स्वर में कहा, 'माई ! इस अस्पताल में सांस लेने की भी फीस लगती है।'

तभी आरती पहुंच गयी। किसी ने बुढ़िया को संकेत किया कि यही माल-किन है।

बुढ़िया में अनायास शक्ति आ गई। वह लपककर उसके सामने आयी और पांवों में लोटकर फूट-फूटकर रो पड़ी, 'डागदरनी जी ! मेरे बेटे को बचा लीजिए""मेरे एक ही बेटा है""भगवान के लिये""'उसका एक-एक शब्द दर्द से पिघला हुआ था। वह प्रार्थनायें करती ही जा रही थी।

आरती ने अत्यन्त ही गम्भीरता से कहा, 'पैसे जमा कराके मरीज को भीतर ले आ।'

'मेरे पास पैसे नहीं है""मैं आपकी पाई-पाई चुका दूंगी""अपना घर, खेत बेचकर" भगवान के लिये मेरे बेटे को""' प्रार्थनाओं के साथ आंखें भर आयीं।

आरती का चेहरा एक कठोर पाशविकता से घिर गया। एक क्रूर तटस्थता उसकी आंखों में दहक उठी। तिरस्कार व उपेक्षा का मिला-जुला भाव लाकर वह बोली, 'सॉरी....यहां के नियम नहीं बदले जा सकते। यह खैराती अस्पताल नहीं है।''

वह अपना हाथ हवा में लहराते हुए भीतर चली गयी।

बुढ़िया के भीतर आहत व हताश मन का आक्रोश व क्रोध भड़क उठा। वह दोनों हाथ उठाकर चीखी, 'तेरा सत्यानाश हो....तुझ पर भी ऐसी ही बीते। तू औरत नहीं डायन है। भगवान से डर ...'

चौकीदार आक्रमण की मुद्रा में खड़ा हो गया।

तभी बुढ़िया अपने बीमार बेटे को फिर ठेले में डालकर घुमावदार रास्ते में विलीन हो गई।

अजीब-सा ठहराव आ गया था।

+ + +

आरती के दिल पर यह सुनकर गहरा आघात लगा कि मनोज घर छोड़कर चला गया है। उसके कानों में इस बात की भनक भी पड़ी कि वहां कभी-कभी सौदामिनी भी जाया करती है। उसके अस्पताल की एक साधारण नर्स।

उसका खून खौल उठा। वह क्रोध व तनावों से घिरती गयी। एक बार उसने अपनी समृद्धि के बारे में सोचा। वह अपने रंग-रूप की तुलना सौदामिनी से करने लगी। सौदामिनी उसके सामने क्या है ?....इतनी साधारण लड़की के पीछे

मनीष पागल है। उसे छोड़ रहा है वह ...क्या स्तर है उसका ? उसका मन मनीष के प्रति एक शिकायत भरी वितृष्णा से भर गया .. वह सोचने लगी कि वह मनीष जो शादी से पहले सदा उसकी हां में हां मिलाता था, जरा भी तर्क-वितर्क नहीं करता था, शादी के बाद उसमें विद्रोह-विरोध के बीज कैसे अंकुरित हो गये ? उसने उसके कारणों को ढूंढ लिया। वह सौदामिनी के चक्कर में आ गया। सौदामिनी ने उसे अपने देह मन्दिर का पुजारी बना लिया है। देह मर्द की जबरदस्त कमजोरी है ...पर मैं जब कभी उसके पास जाती हूं तो वह फिर इनकार क्यों करता है ?....और एक दिन तो वह उसके समर्पण आग्रह पर बोला था, 'बर्फ की तरह ठण्डी और यन्त्रवत औरत क्या मन की तुष्टि दे सकती है ? तुम औरत से कुछ और होती जा रही हो।'...इस और को वह परिभाषित नहीं कर सकी थी। उस दिन वह एक अपमानजनित अनजानी पीड़ा से आहत हो गई थी। वह रात भर दुश्चिन्ताओं से घिरी रही। अपने और मनीष के सम्बन्धों का विश्लेषण करती रही। फिर उसने सोये-सोये घृणा व दम्भ से कहा, 'माई फुट ! मैं उसकी परवाह क्यों करूं ? मैं कोई गुलामी कर रही हूं क्या ? · · · सब कुछ उन्हीं के लिये कर रही हूं ...जो भूख, गरीबी, अभाव, अभियोग और अनादर मैंने सहे हैं, कम से कम · · · ये तो वे न सहें ?'

भोर हो गई। चमकीली धूप पतझड़ के एक मेघ-खण्ड की चिन्ता किये बिना उससे छन-छनकर आ रही थी। मनीष बरामदे मे बैठा हुआ उस मनोरम दृश्य को देख रहा था।

जब सूर्य को मेघ-खण्ड ने ढंक लिया तो एक अत्यन्त ही आकर्षक चित्र उभर आया, ऐसा लगा कि जैसे कोई किरणों का झरना फूट पड़ा हो।

वह मनीष से बिना बोले ही चली गयी।

दूरियां उसके बीच दिन व दिन बढ़ती गयी।

भारती उसके प्रति और लापरवाह हो गई। एक उपेक्षा भरा दंभ जनम आया उसमें। कैसे त्रस्त करे, ऐसा भी वह यदा-कदा सोच लेती थी। उसे विश्वास था कि इतने वैभव व समृद्धिमय जीवन को मनीष नहीं त्याग सकता। पैसा आज का युग है, परमेश्वर है, सर्वनियता है....एक दिन मनीष का सारा अभिमान खण्ड-खण्ड हो जायेगा।

उसमें खालीपन भर गया लेकिन वह भी थोड़ी देर के लिए, उसने अपने अन्दर की कमजोरी पर काबू किया। फिर बहुत गहरे में पराजय का एहसास करती हुई वह दंभ से अपनी खास सहेली डा. विनीता से एक सवाल के जवाब में बोली, मैं उसकी खरीदी हुई बांदी नहीं हूं, वह जायें तो जायें....मेरे पास सब कुछ है। पैसा, बेटा और मान-सम्मान, वह उस दो कौड़ी की नर्स के साथ दफ्तर और आवारा जीवन जीना चाहता है तो जिये।'

फिर भी विनीता काफी सोच-समझकर मनीष के पास गयी। वह चाहती थी कि कोई समझौता हो जाये। पति-पत्नी का यूं अलग होना कोई अच्छी बात नहीं थी। दोनों की ही सामाजिक प्रतिष्ठा पर प्रश्न चिह्न लगेगा। रंग-बिरंगे धब्बे उभरेंगे।

विनीता ने बिना किसी भूमिका के मनीष से सीधा प्रश्न किया, 'आप इस तरह घर छोड़कर चले आये, क्या उसे आप ठीक समझते हैं ?'

'बिल्कुल ठीक समझता हूं। आत्मपीडा और आत्मवंचना मेरे लिये असाध्य हो गयी थी। मैं बुद्धिजीवी हूं, सोचता-समझता हूं....मुझे सभी तरह की भूख लगती है... हर भूख पैसे से नहीं बुझायी जा सकती। फिर पत्नी के होते हुए कुछ भी मर्यादा के बाहर करने पर मुझे अपराध-बोध का अनुभव होता है इसलिए मैं चाहता हूं कि जो सादा-सादा सा है, उसे उतार फेंकू। कुछ भी कहूं—वह स्वस्थ हो। मूल्यहीन न हो ? सोचो विनीता, भारती दम, तानाशाही और दंभ की प्रतिमूर्ति बनती जा रही है। कहूं कि वह असंवेदनशील होती जा रही है, उसे मेरी भावनाओं, विचारों व जरूरतों की परवाह ही नहीं है और आदमी का मन एक पूर्णता की तलाश करता रहता है, एक नर एक पूर्ण नारी की और एक नारी पूर्ण पुरुष की। सदियों से यह तलाश जारी है इसलिए हमारे आसपास और इतिहास में रानियों और सेठानियों की बेटियां दीन-निर्धन पात्रों के साथ भाग नहीं हुईं। कृष्ण राधा की पूर्णता थी और संयोगिता पृथ्वीराज की। वर्ना न तो परिणीता राधा कृष्ण के लिए भागती और न संयोगिता अपने राजा बाप का परित्याग करती। इसे हमें केवल भावुकता भरी सतही बात नहीं समझना चाहिए, बल्कि इसे एक तलाश समझना चाहिए—पूर्णता की तलाश।'

'आप एडजेस्टमेंट क्यों नहीं करते ?' उसने दबाव देते हुए स्वर में कहा, 'यह युग की मांग है। यह आपके परिवार के हित में भी रहेगा !'

'आकाश पाताल के बीच एडजस्टमेंट नहीं हो सकता। हम दोनों की सोच इधर सर्वथा भिन्न हो गयी है। उसे एक गुलाम चाहिए जो केवल उसके फैलते हुए साम्राज्य की रक्षा कर सके। पर मेरी बौद्धिकता इसे स्वीकार नहीं करती। विनीता जी ! लगता है कि मेरे भीतर अनेक तृष्णायें इकट्ठी हो रही हैं। ये तृष्णाएं मुझे कभी तनावों से घेर लेती हैं और कभी मुझमें खालीपन भर देती हैं। कभी निर्णयता का बोध भी कराती हैं तो कभी विद्रोह का। भीतर भीड़ है तृष्णाओं की।'

'पर एक साधारण नर्स · · ?' उसने वाक्य को कै की तरह उगला।

'जीवन के सभी आयामों में सामान्यता ही अधिक सही है।' मनीष ने जैसे भीतर से आहत होते हुए कहा, 'इतने पैसे का हम करेंगे क्या ? ले-देकर एक

बच्चा है हमारे, उसे हम काबिल बनाने की बजाये लाखों रुपये का बोझ ढोने वाला जानवर बना दें यह कहां की समझदारी है ? मनुष्य के लिये उसकी योग्यता ही काम आती है। ज्ञान ही आधारभूत संबल होता है और हमारा केवल एक बेटा हम दोनों के प्यार से वंचित रहकर तरह तरह के नौकरों से घिरा रहता है। वह जीवन में सिवाय हुक्म चलाने के अलावा क्या सीखेगा ? उसने मुझे तो तोड़ा है सो तोड़ा ही है, साथ ही वह हमारे बेटे शिरीष को भी तोड़ डालेगी।'

'फिर मैं क्या कहूँ उसे।' उसने निर्णय सुनने की मुद्रा में कहा।

'उसे कहना कि वह तलाक ले सकती है। वैसे मैं तलाक लेना चाहता भी हूं क्योंकि मैं सौदामिनी से शादी करूंगा।'

विनीता ने लौटकर सब कुछ बताया तो भारती बारूद की तरह फट पड़ी, 'वह मेरी उन्नति से जलने लगा है। यदि वह तलाक लेना चाहता है तो ले ले, एक दो कौड़ी की नर्स के लिए मुझे छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है। जाये भाड़ में वह !'

विनीता ने दीर्घ निश्वास लेते हुए कहा, 'तुम दोनों के विषाक्त सम्बन्धों को देखकर न जाने मुझे क्यों डर लगने लगा है।'

भारती ने भड़ककर नाक में बल डालकर कहा, 'मैं किसी की परवाह नहीं करती।'

विनीता ने उठते हुए कहा, 'एक बार फिर से सोचना, विगत का पुनरावलोकन करना''' मनीष ने कहा है कि यह बीमार मानसिकता है जो जीवन के अन्य अंगों को अपाहिज कर देती है।'

\+ \+ \+

भारती ने मनीष की हर बात को एक चुनौती व धमकी माना जैसे वह उसके बिना जी नहीं सकेगी ? वह सब कुछ इसलिए सहती है क्योंकि उस पर पत्नी का एक मुलम्मा चढ़ा हुआ है, वह उसे उतार फेंकेगी। वह स्वयं तलाक ले लेगी। सम्बन्धों के नाम पर असम्बन्धों को जीना एक आत्म-छल है। वह अपने बेटे को एक काबिल डाक्टर बनायेगी। ''' इस साम्राज्य को संभालने वाला सम्राट ! वह मनीष का दर्प चूर्ण कर देगी।

आज कई महीनों के बाद सहसा उसे अपने बेटे शिरीष से भी फुर्सत से बात करने की मन में आयी। उसने विनीता को सारा कार्य सौंपकर कहा कि वह घर से थोड़ी देर में लौट रही है।

वह अपने बंगले आयी। उसका बेटा बैठा-बैठा इतमीनान से जेम्स हैडली चेज का जासूसी उपन्यास पढ़ रहा था। उसने खंखारा और आधुनिक स्टाइल में 'हेलो' कहा पर शिरीष ने उसकी ओर देखा फिर नजरें झुका लीं। लग रहा था कि वह मां से असन्तुष्ट है।

'शिरीष डार्लिंग।' उसने स्नेह विगलित स्वर में कहा।

'ओह ममी आप · · ·' उसने अंग्रेजी में कहा, 'कैसी हैं ? फुर्सत मिली।' उसके स्वर में व्यंग्यभरी नाटकीयता थी।

'क्या करूं बेटे ? डाक्टरी पेशा ही ऐसा है।'

'इस शहर में एक तुम्हीं डाक्टर हो न ?'

'बताओ पढ़ाई कैसी चल रही है ?' उसने सन्निकट आकर प्रसंग बदलते हुए कहा। उसके चेहरे पर ममता की चमक थी। आंखों में स्नेह का तारल्य !

'पढ़ाई बहुत जोरदार चल रही थी। आजकल मैं दिन में दो उपन्यास पढ़ता हूं। एक जासूसी और एक सामाजिक। बड़ा मजा आता है ममी।'

'मैं स्कूली पढ़ाई के बारे में पूछ रही हूं।' उसने जरा सख्त होकर कहा।

'वह तो मैंने छोड़ दी।' उसने सरलता से जवाब दिया।

'क्या ?' वह कल्पनातीत आश्चर्य से चौंक गयी। फिर उसे चक्कर-सा आया और संभलते-संभलते उस पर एक अंधेरे की हल्की परत छा गई।

'क्या ?' जैसे उसे विश्वास नहीं हो रहा है।

'हां ममी। स्कूली पढ़ाई में मेरा मन नहीं लगता। विशेषत ज्योग्राफी और मैथ्स में तो बड़ी बोर होती है, फिर ममी, मेरे कई दोस्त कहते रहते हैं कि तुम्हें पढ़कर क्या करना है ? लाखों रुपयों के तुम ऐसे ही मालिक हो ? · · 'और एक दिन तो ममी मेरे कुछ दोस्तों ने मुझे शराब भी पिला दी।'

'शिरीष !' उसकी चीख में असमंजस और हताशपन था।

'ममी ! मैं झूठ नहीं बोलता। आप कहती रहती हैं कि सच ही बोलना चाहिए। मैंने सच स्कूल छोड़ दिया है।'

उसमें एक विचित्र असहायता आ गयी जो उसे गुस्से व झल्लाहट के बीच झूल रही थी। वह क्या करे और क्या न करे।

उसके बच्चे ने मां के चेहरे की प्रतिक्रियाओं से बेखबर हो पूछा, 'ममी पर मुझे अंग्रेजी का बड़ा ज्ञान हो गया है। खूब पढ़ लिख लेता हूं · · 'ममी मैंने एक नावल पढ़ा था—कपल, क्या ममी जिंदगी में ऐसा भी होता है। उसके बारे में मैंने पापा से भी पूछा था। पापा सौदामिनी आंटी के साथ · · ·? क्या सच है ममी · · · और · · और · · · तुम · · ·'

उसने अपने सारे परिवेश को नकारते हुए अपने भीतर की सारी ताकत को समेटा और गुर्राकर एक चांटा शिरीष के गाल पर मार दिया। क्रोध के कारण उसने जो शब्द कहे, वे होंठों के बीच बुदबुदाकर मर गये।

शिरीष कुछ नहीं बोला, तमतमाकर अपने कमरे में चला गया। उसने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया।

भारती काफी देर तक दरवाजा खड़खड़ाती रही। उसने सम्बोधन बदल-बदलकर उसे पुकारा पर उत्तर में उसे छोटी-बड़ी सुबकियां ही सुनाई पड़ीं।

आखिर वह निराश हो गयी। उसने नौकरों को आदेश दिया कि वे शिरीः पर निगाह रखें। कहीं गुस्से में वह अनहोनी न कर बैठे।

वह नर्सिंग होम लौट आई। विनीता ने उसकी ओर ताका फिर वह फाइलों में खो गई। थोड़ी देर वह बीच-बीच में गुमसुम बैठी आरती को देखती रही फिर विस्मित-सी बोल पड़ी। 'अरे! क्या बात है? उदास-उदास-सी क्यों?'

उसने झूठ ही कहा, 'मुझे सहसा जबरदस्त थकान महसूस होने लगी है। मैं अभी घर जाना चाहूंगी, तुम सब कुछ देख लेना मैं यदि न लौटूं तो भी चिंता न करना।'

वह उठकर चल पड़ी।

उसने किसी से कुछ नहीं कहा, यहां तक कि चौकीदार से भी। वह आत्म-लीन सी बाहर निकल आयी। उसने रिक्शा लिया और अनेक विचारों में डूबी मनीष के नये घर की ओर चल पड़ी।

बड़ी दूर रिक्शे को ठहराया। पैदल ही चली। पर बरामदे में ही मनीष सौदामिनी को बाहों के घेरे में लिये हुए चूमने की चेष्टा कर रहा था।

वह उबर नहीं पा रही थी—अपने भीतरी जद्दोजहद से बुत-सी खड़ी रही फिर उसने रिक्शा लिया और लौट पड़ी। उसने एक आम आदमी की हैसियत से उत्कर्ष के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचे व्यक्ति के सुख-दुख का जायजा लिया तो उसे लगा कि सब व्यर्थ है ···वह सहसा एक ऊब भरे खालीपन से भर आयी और पीड़ा का समन्दर उसके भीतर ठाठें मारने लगा। उसने अनन्त आकाश की ओर देखा। उसे लगा कि समृद्धि के सर्वोच्च शिखर पर खड़ा एक आदमी चारों ओर आतंकित सा देख रहा है। नीचे नुकीले पत्थर और भयावह खाइयां हैं, चीखते जंगल हैं और रेंगते सन्नाटे हैं। और उसकी नियति वहीं खड़े रहने की है। उन जकड़ावों से कोई त्राण नहीं, कोई मुक्ति नहीं।

उसने एहसास किया कि वह आदमी वह स्वयं है और वह मुद्रा-सी हो गयी।

हालीपा

[illegible] (पेबल) का मज़ा ले रहा था—सूरज ! ज्यों-ज्यों बादल खिसक [illegible] रही थी त्यों-त्यों मैं झोली से झांकते हुए [illegible] और उसके आसपास के पेड़, पहाड़ और बेर की झाड़ियों की छायाएं विभिन्न आकृतियों में जमीन पर उतर रही थीं जो हवा के झोंकों के साथ बदलती जा रही थीं। चंदिया [illegible] झोली पर बैठा-बैठा स्वयं ही इन सबको देख रहा था। उसने घुटनों तक का धोतिया और बंडी पहन रखी थी। तेज गर्मी के कारण बदन भीगी हुई थी और माथे पर पसीने के कतरे उभर आये थे। चंदिया के गले में नाग का एक मादलिया (ताबीज) था, जो काले धागे में गुंथा हुआ था। उसकी हाथ-पांव उंगलियों में लोहे, तांबे, पीतल व कथीर की अंगूठियां थीं जो विभिन्न देवों के नामों से पहनी हुई थीं। भैरू, रामदेव, गोगाजी, हनुमान, नाग महादेव, आदि हर देवता की अंगूठी [illegible] के नाम की थी, चंदिया के बाल लम्बे थे और उसकी मूछें कानों को छू रही थीं, शरीर [illegible] और रंग गेहुंआ। वह जाति का जोगी था। कभी वह शहर-शहर और गांव-ढाणी घूम कर घुटनों के दर्द वालों के सींगी लगाकर इलाज करता था।""उससे वह अपनी पेट-भराई करता था। तब वह एक कुर्ता धोती, अन्दर की जेबों वाली बंडी और एक भगवे रंग का साफा पहनता था। उसका सारा सामान एक झोली में रहता था जिसे लकड़ी के सिरे से बांधकर वह कंधे पर लटका लेता था, उसने दांये पांव में एक चांदी का कड़ा पहन रखा था। वह कशीदाकारी की जूती पहनता था जिसकी एड़ियों पर लोहे के खुरताल लगे हुए थे जो चलने पर खट-खट की आवाज करते थे। जोगी चंदिया अकेला था। मां-बाप ने उसे कब जन्म दिया और वे कब मरे उसको उसे याद नहीं, लूका काका बताते थे कि उसके मां-बाप सांपों को पकड़ने में बहुत माहिर थे। न केवल उसका बाप बल्कि उसकी मां भी इस फन में माहिर थी। वे जहरीले से जहरीले सांप को पकड़ लेते थे। लोग प्रामाणिक रूप से कहते थे चंदिया का बाप सांपों को जेब में डाल लेता था। सांप उसके लिए खिलौने थे। एक दिन वे दोनों कोई जहरीली शराब किसी शादी में पी आये और चंदिया को अनाथ करके चलते बने।

तीन साल के चंदिया को लूका काका ने पाला। जब वह पांच साल का

हुआ तब उसे दया के नाम पर बंधुआ मजदूर-सा बना लिया। लूका उससे दिन भर हाड़-तोड़ मेहनत कराता था और रात को बाजरी या ज्वार की दो मोटी-मोटी रोटियां कांदे की चटनी देकर कहता, 'झट से खा-पीकर के खेत चला जा''''''''लाठी अपने पास रखना ! सोओ तो कुत्ते की नींद। खटका होते ही उठ जाना वर्ना ढोर-डांगर खेत को उजाड़ देंगे।'

इसके अलावा काली-पीली भीत कोई सुख-सुविधा नहीं, कोई मौज-मस्ती नहीं। एकदम सूना-सूना उबाऊ, जीवन उस पर बात-बात पर गालियां और पिटाई भी। जब चंदिया जवान हुआ तब उसमें अजीब सी शक्ति आ गयी थी। धान की एक बोरी वह पीठ पर रखकर दो-तीन किलोमीटर चला जाता था। हर काम में फुर्ती रखता था। कई बार तो लूका उसे समझाता, 'अरे चंदिया ! ऊभे खेजड़े में बेजको कोनी निसरे। इत्ती जल्दीबाजी न कर। कहीं चोट लग गयी तो ?' चंदिया गर्व से मुस्करा देता था। एक दिन लूका ने पूछा। 'चंदिया ब्याह करेगा ?' उसने सिर हिला दिया शरमा भी गया।

जब लूका ने चंदिया को अपनी बेटी सीतकी से विवाह करने को कहा तो चंदिया चेता। उसको सीतकी जरा भी चोखी नहीं लगती थी। उसे सीवल (चेचक) थी, लोग सीतकी को सीवल का खेतखाना कहते थे। एकदम भूंडी और कोजी गवार और अधमैली !

उसने मन ही मन तय किया कि वह किसी भी कीमत पर सीतकी को अपनी घरवाली नहीं बनायेगा''''इसके हाथ के मुर्झे दो बेर भी नहीं भाते। शक्ल देखते ही भूख मिट जाती है।'''' ऐसी-कर्म फूटोड़ी से मैं ब्याह कभी नहीं करूंगा। इससे तो कुंवारा ही भला।

'तुम चुप क्यों हो गये ? मेरी बात का उत्तर नहीं दिया ?' लूका ने पूछा।

'मैं यह ब्याह नहीं करूंगा।' उसने साफ-साफ कहा।

लूका का सहसा रंग बदल गया। चेहरे पर हिंस्र रेखाएं उभर आयीं। कड़ककर बोला, 'तू यह ब्याह नहीं करेगा ?'

'नहीं !' उसने गर्दन को झटका देकर कहा।

लूका झट से उपदेशक बन गया। अपनी शानदार सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरकर बोला, 'जानता है कि तू ये सब किसे कह रहा है ?''''अरे मोह चोर ! मैंने तुझे कितना दोरा पाला है ?''''पराये को अपना जानकर घर में रखा।'

'तो मैंने भी तेरे घर में हाड़-तोड़ कर मेंनत-मजूरी की है, न रात दिखा-न दिन ! गालियां और थप्पड़-मुक्के'''' तूने मुझे चौंसठ घड़ी काम ही काम, ऊपर से तेरी पालकर किरपा नहीं, अपना उल्लू सीधा किया है ! ठंडी-बासी रोटियों के बदले गधे की तरह काम कराया है।'

'जानता हूँ', वह स्वर को ठंडा करके बोला, 'मैं अपनी जाई को एक सेत दूंगा।'

'एक क्यों, दस सेत दे दे,'''पर मैं इस ब्याह मे तो कूवा-खाड करना ज्यादा चोखा समझता हूं, छिः एकी मेरी, दूकी मैं लूंगा, तिकी को जूतियों की दूंगा''' हर तरह से अपना ही सुवारथ पूरा करेगा तू !'

'तू मुझसे इतनी जबान लड़ाने लगा,' लूका ने विस्मय मे कहा, 'मैं तो यह समझता था कि जिसने अभी तक केवल मेरे हुक्म को माना है'' वह आज भी मेरे हुक्म को मानेगा''' बेटा ! मेरी मान जा'' यह जीवन बड़ा कठिन है। जिसके बादशाह मर जाते हैं, उनके वजीर भटकते रहते हैं। तेरी सारी इज्जत तो मेरे साथे है।'

'काका ! इज्जत तो अपनी-अपनी होती है पर मैं ऐसी छोरी से कदापि ब्याह नहीं करूंगा जिसकी न जात भली और न बात।'

'फिर निकल जा लगोटी पहनकर मेरे घर से।' लूका चीखा।

'लगोटी पहनकर क्यों, नागा ही चला जाऊंगा,' उसने गुस्से से कहा।

'तू नीच है ! कमीना है, जिस हांडी में खाया, उसी को छेदा''' निकल जा मेरे घर से'''फिर अपना काला मुंह मुझे मत दिखाना।'

चंदिया ने इस बात को लेकर घर छोड़ दिया, कभी वह बिल्ली के सामने चूहे की तरह लूका से डरता था, आज वह अचानक इतना विरोध कैसे कर पाया ! वह नहीं समझ पाया।

घर के साथ उसने वह गाव भी छोड़ दिया, गांव की कांकड़ के बाहर कदम रखते ही उसे अनायास यह भान हुआ कि वह पिंजरे से बाहर निकल आया है ! तब उसने अपने भीतर एक स्वाधीन व्यक्ति का सुख अनुभव किया, खुले आकाश और खुली धरती पर चलते हुए उसे बड़ा अच्छा लग रहा था।

जंगल ही जंगल ! उजाड़ और धूल भरा रास्ता, कहीं कहीं धब्बों-सी झाड़ियां प्रेतात्मा सा खेजड़ा ! चंदिया ने उस सूने जंगल मे दूर-दूर तक देखा फिर वह भागने लगा'''तेज, और तेज'' जब पसीने से लथपथ वह भीणमाता के मन्दिर के आगे पहुंचा तो हांफता हुआ उसके आंगन मे पसर गया, वह थककर चूर हो गया। मंदिर की फेरी मे विश्राम करने लगा। नींद आ गयी। जब जागा तो फिर सोचने लगा। वह अब किसी की चाकरी नहीं करेगा ? दूजा काम करेगा पर करे तो क्या आखिर वह बाबा धूणीनाथ से मिला जो गांव बीदासर मे झाड़-फूंक का काम करता था, उन्हीं से चंदिया ने सीधी मसानी सीखी और उस काम मे लग गया।

इस काम से पूरे ढंग की उदर पूर्ति नहीं होती थी। दावों और झगड़ों के

फँसते दवाखानों के जाल ने उसके धंधे को मंदा कर दिया। कभी दस-बीस रुपये कमा लेता तो कभी फाका भी करना पड़ता""बड़ी कठिनाई से जिन्दगी की गाड़ी रिगचूं-रिगचूं करके चल रही थी। मन उचाट होने लगा। कई बार उसके मन में वापस लूका के पास लौट जाने की भ्रायी पर 'फूहड़ की मैल फागन में धुलती है' जैसी लड़की सीतकी को याद करते ही उसके लौट जाने की मनसा रेत के घुड़ले (घरोंदे) की तरह टूट जाती थी! " नहीं, वह वहां कभी नहीं जायेगा" हाड-तोड़ मेनत से भी दोरी लगेगी वह सुगली सीतकी!""क्या वह धूणीनाथ बाबा के पास चलकर रहे? दाल-रोटी की तो वहां कमी नहीं है। उन्होंने उसे चेला बनकर रहने को कहा भी था - नहीं" वह अब किसी के मातहत नहीं रहेगा। पूरे बीस बरस वह लूका का थूक चाटता रहा है, नहीं, अब नहीं""गुलामी कभी नहीं करूंगा। किसी के मातहत रहने में जो कष्ट, पीड़ा, जलालत है, उससे तो भूखों मरना अच्छा।

उसके भीतर तरह-तरह के अंधड़ उठने लगे। वह आहिस्ता-आहिस्ता सांसियों की बस्ती की ओर जा रहा था।

बीकानेर की चौखूंटी के पास थी-सांसियों की बस्ती, चंदिया रात को वहीं डेरा डालता था, रास्ता शान्त था। कभी-कभी कोई ट्रक भड़भड़ाता निकल जाता था। धूप ढल रही थी। कमेड़ियों का जोड़ा सड़क पर गुंऊं गुंऊं"" गुंऊं""गुंऊं कर रहा था। कीकर पर कोई लाल कपड़ा पड़ा था। नाले के पास वाली गूंदी की छाया में एक गिरगिट मुंह फाड़कर सुस्ता रहा था। पेड़ पर छिपकली खच-खच काले कीड़ों को खा रही थी।

न जाने क्यों चंदिया उन्हें अपलक देखने लगा।

सहसा किसी ने पुकारा, 'ओ सींगीवाले! जरा भैया इधर आव तो?'

चंदिया ने उस ओर देखा।

एक जवान छोरी उसे इशारे से बुला रही है। वह उसके पास गया, देखा तो बस देखता रह गया। उसने प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। घाघरा, कांचली और ओढ़ना पहने उस अपरिचित छोकरी ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों की पलकों को नचाकर लम्बे स्वर में कहा, 'क्या आंखें फाड़-फाड़कर देख रहा है—मैं लुगाई जैसी लुगाई हूं। जरा मेरी यह पोटली उठवा दे" बांका मोट्यार है!" उठा न?'""उसने बड़ी चपलता से अपने अंगों को नचाकर कहा। आंखों में एक ऐसा खिंचाव भरा संकेत था कि लुट गया बेचारा चंदिया। वह फिर ऊपर से नीचे तक ऐसे देखने लगा जैसे गूजर अपनी नयी खरीदी हुई गाय को देखता हो! सुघड़ देह! वह उस सुघड़ देह सरोवर में डूब गया।

'अरे बहरा है क्या? सुनता नहीं! इस देह को घूर रहा

चंदिया कहीं खोया हुआ था। उसने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

'क्या...?' उसकी आंखों में रोष उतर आया। जो अमोनिये-सी कोमलता उस छोकरी के चेहरे पर थी, वह कुम्हट के कांटों की तरह कटीली हो गयी।

चंदिया डर गया। झट से बोला, 'ले उठा न, अब खंभ की तरह क्यों खड़ी है ?'

उसने उसके सिर पर पोटली रखवा दी। तभी उन पर से एक कौवा कांव-कांव करता निकल गया!

जंगल की ओर से एक रेवेड़िया बकरियों का झुंड लेकर वापस आ रहा था। दो मजदूरिनें चूनों के भट्टों की ओर से आ रही थीं। वे जोर-जोर से सम्मिलित रूप से भद्दे ढंग से अपने मालिक को कोस रही थी।

'कठै जावैली ?' चंदिया ने पूछा।

'तू कुण है पूछनेवाला ?'

'गैलीबाई। हम दोनों बटाऊ हैं· साथ-साथ रस्ता सोरा कट जायेगा। वता सिरगार्णी तू कुण है ?'

'फेफली।' उसने तपाक से कहा।

'फे फ....ली।' उसने रुक-रुक कर नाम को दोहराया।

'फेफली जोगण।'

'मैं भी जोगी हूं–चंदिया जोगी।' उसने उत्साह से कहा।

एकदम फेफली के चेहरे पर बिजली-सी चमकी। अपनेपन से बोली 'अपन एक जात हैं! कुण सा गांव-ढाणी ?'

'सूरतगढ़ के आगे और देश की फाकड़ के नजीक... और तेरा....?'

'बेलासर....'

'अठै किया ?'

'बापू बीमार है....उसकी दवा लेने आयी हूं, साथ में चीनी गुड़ सस्ता देखा तो पांच-पांच किलो ले लिया....हमारे गांव का बाणिया है न, बहुत ही बेईमान है....एक ने ठीक ही कहा है कि बाणिया के हाथ में तासड़ी हुवै तो यह किसी को भी नहीं बख्शता।'

'तू ठीक कहती है। कैवत है कि बाणियो रे बाणियों पाणी पीवे छाणियों और लहू पीवे अणछाणियो।' उसने एक पल मून धारी। इधर-उधर देखा!

'तेरा ब्याह हुयग्या ?'

'नहीं और तेरा ?'

'नहीं, तेरा क्यूं नहीं हुआ ?'

'चोखो मोट्यार मिल्यो कोनी। तू मुझसे ब्याह करसी ?' हठात् कहा

फेफली से । फिर उसने सोचा कि बूंटा मोटयार है । हमारे जाल में फंस गया तो हमें बिना पैसे का मजूर मिल जावेगा ।

सीधे सवाल ने चंदिया को हलकान कर दिया । वह सोच में डूब गया ।

'मेरी बोलती बन्द क्यूं हो गयी ? सुन… तुझे ब्याह मुझसे करना है तो मेरे साथ गांव चल. बाकी सब ठीक हो जावेगा । अभी मुझे 'छोरी' कहकर साथ जाना है. सिर्फ कहनी है । साची बाबो नहीं मानूंगी तो छोरी छूट जावेगी तू भाई पकड़या दे न ? भगवान थारो भलो करसी ।'

चंदिया ने एक बार उस निर्भीक और मस्त फेफली को देखा । वह उसे और फूटरी (सुन्दर) लगी ।

चंदिया ने उसकी गठरी ले ली, बस-स्टैंड तक पहुंचाया । उसको टिकट खरीदकर स्वयं ने दिया । फिर बस में बिठा दिया ।

जब बस में फेफली अच्छी तरह बैठ गयी तब उसने कहा, 'सुन चंदिया, मेरा बाप मांदा (बीमार) है, कभी वह गुड़ मट्ठी निकालता था । अब तू आ जाना, बापू से बात कर लेना । तेरे लिए ठीक रहेगा ।'

बस रवाना हो गयी ।

चंदिया कुछ पलों तक उस बस को ओझल होते हुए देखता रहा, फिर वह अपने पर झुंझला उठा । उसे लगा कि उस मादरजात सिरगानैणी ने उसे दो दांत दिखाकर उल्लू बना दिया । ठगोरी कहीं की । टिकट की चपत भी मुझे ही लगा गयी ।'

पर उस रात चंदिया को नींद नहीं आयी । वह रात भर गहरी नींद नहीं सो पाया । उसके मन आकाश पर फेफली दानवी पंखों की तरह छायी रही । उसकी मांसल देह और उसका कटाव ! गजब की औरत है और है कितनी दबंग चार-पांच दिनों तक वह सोचता रहा । अन्त में उसके पास जो कुछ भी पैसे थे उन्हें लेकर रवाना हो गया-फेफली के गांव !

फेफली का बाप छोटू गंधाता था । गंदे चिथड़ों पर पड़ा हुआ रहता था । बीमार था….

अनजान बटोही को देखकर उसने पूछा । 'कुण है भाई तू ।'

'फेफली घर में है ?' चंदिया ने अपना सवाल किया ।

'फेफली घर में है या बारणैं, पर तू तो बता कि तू कुण है ? तू तो फेफली ने इण तरिया पूछे जैसे कि तू उसका सायबा हुवे ।'

"मैं चंदिया जोगी हूं ।"

"जोगी… चंदिया…" वह जान गया । "फेफली ने तेरे बारे में कहा था ।"

उसी पल फेफली पानी का मटका सिर पर लेकर आ गयी । चंदिया को ही वह फूल की तरह खिल उठी । बोली । "अरे ! तू बटोइड़ा !…कब

माया""?" फिर फस से हंस कर बोली। "कैसा संजोग है रे ? पैल्ली बार तू मिला तो तुझसे बोझ उठवाया और अब भीतर चलकर बोझ उतरवा दे।"

फेफली भीतर गयी। पीछे-पीछे चंदिया मटकी उतराते समय उसकी निगाह उसकी छातियों पर चली गयी।

फेफली झट से खनकते स्वर में बोली। "लाडी! दीठ (नजर) का दोष बुरा होता है।"

वह झेंप गया।

फेफली अपनी रंगीन ईंढाणी को रखकर बोली। "चल, तुझे बापू से मिलवा दूं।"

दोनों छोटू के पास आये!

फेफली बापू के घुटने के पास बैठकर बोली। 'बापू! यह चंदिया जोगी है। न घर और न घरवाले। एकदम अकेला। चोखो मोट्यार है!"" मुझसे ब्याह करेगा।"

छोटू ने फेफली की ओर देखकर कहा "आज मांस खिला दे। हिरण का मांस। 'बावलिये' के पास चली जा" वह आज हिरण मारकर लाया है। उसके पास दारू भी है।""

"पर पैसा!"

"पैसा""छोटू ने इस शब्द को ऐसे दोहराया जैसे यह शब्द खारा हो। फिर (कहे) उचक कर बोला। "इस मोट्यार से ले ले? यह तुझसे ब्याह करेगा न? फिर तो यह अपने घर का ही हुआ। लाडी! दस-बीस दे दे।"

चंदिया ने चुपचाप दस का नोट दे दिया।

छोटू ने फेफली से कहा, "दस अभी दे देना""बाकी वह मेरे हिसाब में जोड़ लेगा। चंदिया! जा हाथ-मुंह धोकर बिसराम कर ले। थक गया होगा! लोरी की जातरा से तो मुझे भी हो जाती है।"

फेफली चली गयी, थोड़ी देर में लौटकर वह मांस पकाने लगी। छोटू ने दारू की लौटड़ी ले ली। पुरानी एलमोनियम की गिलासों में दारू डाल कर छोटू ने कहा। 'यह मोरजड़ी की दारू है। बावलिया जड़ियों की दारू बनाने में माहिर है। इस गांव के ठाकुर भी उससे ही दारू बनवाते हैं। अपना चेला है।'

चंदिया कुछ नहीं बोला। बोलने की उसकी इच्छा भी नहीं हो रही थी। उसे लगा कि वह निरर्थक ही मोह में फंस गया। कहीं फेफली मिनखखोरी न हो?""अपनी गरीबी को नये-नये मिनखों को फांसकर मिटा रही हो?"" उसका यह संदेह धीरे-धीरे सच में बदलता गया क्योंकि जिस खुलेपन से फेफली ने ब्याह का पासा फेंका था, वह कोई नासमझ लड़की नहीं फेंक सकती।

ो !

गुन चोखी है। मैंने भी उत्तर दिया कि रुपये मिनल की एक बार ! चन्दिया चोखा मरद है। ठा मरद है।" जब भीचेगा तो भायली " बहुत

मैं तीन बरस तक तुझसे दूर नहीं रह सकता।

गाह की शर्तें है।

री करूंगा " पर मैं तेरे बिना नहीं रह सकता सी लगी रहती है।' उसने सिर को झटका दिया। प जबरदस्ती कर लूंगा ! चाहे मुझे फांसी ही लग

ला गया क्या ? पंचायत और जाति के नेम धरम को तुझे पंचायत कड़ा दण्ड देगी। मेरा बापू तेरी जान ल र चाहिये हैं। गुंडे और बदमाश।

नवी सच फेफली। मुझे रात को नींद नहीं आती। रहती है "मुझे मेनत मजूरी से डर नहीं, हालीपा भी तीन आज तेरे पास आऊंगा बारणा (दरवाजा) खुला की सौगन खाकर कहता हूं तू मेरी रहेगी मेरी " तू तो के लिए कहती है पर मैं सारी उमर तेरा हालीपा करूंगा गा खुला रखना।'

ो ने गुर्राकर कहा, 'मेरे साथ जबरदस्ती की तो मैं तेरा खून तू ऐसी-वैसी मत समझना।'

सुन !' चन्दिया उठा और उसने रोहिड़े के पेड़ की एक मजबूत र तोड़ डाला। फिर वह तेजी से चला गया।

गया। वह बढ़ते अंधेरे को देखता हुआ घर की ओर चल

शहर चला गया था-छोटू के लिए दवा लाने। उस दिन रात को ोटा नहीं तो फेफली के हिये में डर बैठ गया कि चन्दिया शायद बद वह उससे नाराज हो गया हो। क्योंकि उसने उस रात दरवाजा ा। वह उदास हो गयी। फिर भी उसने सिर धोकर बालों की मींढ़िया हुई बिंदिया पर बिंदिया लगायी। एक बिंदी ठोड़ी पर थी। चन्दिया उसे खलने लगा। सचमुच वह उसे चाहने लगी थी। फिर उसकी ा में छोटू ने बावलिया से कहा भी था, 'अरे ! तू फिकर मत कर।

'चंदिया, दारू पी फिर मौज ला। इसके बाद छोकरी के ब्याह की सारी बातें करेंगे।' छोटू ने अपने मन के मसविदे को दूसरा कहा।

पेंफली ने भीतर से पुकारा। 'चंदिया जरा भीतर आ न ?'

चंदिया भीतर गया। पेंफली ने लालटेन के उजाले में बुढ़ऊ को उठाकर अपने बाप के बारे में झूठी बातें कहकर उसको विश्वास दिलाया। कहा, 'देख, घबरा मत! बापू हिये का भोला है, दारूबाज जरूर है पर कपटी नहीं है! ब्याह की शर्त तो तुझे पूरी करनी ही है।'

'कौन सी शर्त ?'

'वह तुझे मेरा बापू बतावेगा। यदि शर्त पूरी कर दी तो मैं तेरी, मेरा जीव (तन) तेरा… मेरा रूं-रूं तेरा। सच्ची कहती हूं झूठ बोलूं तो जीभ कटे। जोगिया जमात के ब्याह की शर्त तो तुझे पूरी करनी ही पड़ेगी….नेम-धरम का तो पालन करना ही होगा।'

वह पेंफली को देखता रहा। सचमुच—अजीब छोरी है। कितने अपनापे से बोल रही है। कितनी जोरदार है, उसके भीतर अंगारे चटखने लगे। उसके बाजके-बाजके टूटने लगे….बड़ी कठिनाई से इतना ही कह पाया 'मुझे, तुझे पाना है। जल्दी-बहुत जल्दी। ओह! यह कैसा रोग है?'

उसी समय कच्चे मकान की दीवार पर कोचरी बोलने लगी।

पल भर के लिए दोनों का ध्यान उधर गया और जैसे ही पेंफली ने दीवार की ओर देखा तो भय से हल्की चीख निकल गयी। 'बिच्छु, चंदिया दीवार पर हथेली जित्ता बिच्छु… इधर इस घर में बिच्छु कीड़े-मकोड़े की तरह निकलने लगे हैं। कल से गोगापीर का दीया करना होगा।'

'चंदिया अरे ओ चंदिया… आ भाई… दो बिना दारू का मजा ही नहीं आता। गुटका भी लेंगे और वंतल (वार्ता) भी करेंगे।'

चंदिया ने अपने पांव की कारियां लगी दायीं जूती को खोला और जोरदार चोट से बिच्छू का कचूमर निकाल दिया! फिर उसे तर्जनी व अंगूठे से उसको कांटे से पकड़कर बाहर निकल गया। उसे फेंककर वह छोटू के पास आया।

'किस बिल में घुस गया थे रे! ले….पी और वंतल कर।' उसने अधीरता से कहा, 'दारू देखकर मुझे खटाव (धीरज) नहीं रहता।'

दोनों ने एक-एक घूंट लिया। वास्तव में दारू स्वादिष्ट थी। छोटू ने फिर लम्बे लम्बे दो चार घूंट लेकर कहा, 'चंदिया, पहले तो गोगापीर की सौगन खाकर शांति से बता कि तू सांचेली जोगी है कि नहीं।'

'जोगी हूं….पक्का जोगी।'

'मां-बाप'''''

'मर गये ।'

'और कोई नाती-बाती'''''

'निपट अकेला हूं ।'

'तो तू फेफली से ब्याह करेगा ।'

'करूंगा ।'

'जोगी जाति की शर्त ? ''' फेफली जैसी-छोकरी को पाने के लिए तीन साल तक हालीपा (गुलामी) करना होगा । उस काम में तुम्हें सच्चाई रखनी होगी ।'

चदिया ने एक बड़ा घूंट लिया । फिर उसने गहरा मौन धारण कर लिया । वह मौन और भी गहरा हो जाता यदि फड़फड़ाता हुआ एक चमगादड़ आकर उनके पास न गिरता तो, वह खून से लथपथ था ।

छोटू ने कोई ध्यान नहीं दिया पर चदिया उसे प्रश्नभरी दृष्टि से देखता रहा'''' सोचता रहा-पूरे तीन साल का हालीपा ?''''इस दारूबाज मिनख की जी हुजूरी ? हे गोगापीर''''यह कैसी बात है कि एक लम्बी गुलामी से छूटकर फिर दूसरी गुलामी''' वह भी पूरे तीन बरस''''एक छोरी के ब्याह ने मुझे हालीपे से छुटकारा दिलाया और एक छोरी का ब्याह फिर हालीपे की बाड़ में बन्द करा रहा है''' पूरे तीन बरस ? पूरे तीन बरस मैं इस आग की आंच में हाथ सेंक नहीं पाऊंगा''' ढील को पिघला नहीं पाऊंगा ? नहीं''''नहीं, इतना थावस (धैर्य) मुझमें नहीं है । इतना मैं मन को मसोस कर नहीं रह पाऊंगा ।

'अरे बोलता क्यों नहीं ? करेगा तीन बरस का हालीपा', छोटू ने उसे कड़वे स्वर में कहा ।

'करूंगा पर छोटू तुझे मेरा ब्याह बेगा करना होगा, मुझमें इतना थावस नहीं है ।'

'ऐसा कैसे हो सकता है ? हालीपे का बखत पूरा हुए बिना फेफली को तू छुएगा ही नहीं ? इसके पहले यदि तू ने कोई गड़बड़ी की तो पंचायत से तुझे जाति-बाहर करवा दूंगा ? तेरी मूंछें मुंडवा कर गधे पर घुमवा दूंगा''''मैं छोटू हूं समझे, हालीपा हर हालत में पूरा करना ही होगा ।'

चमगादड़ अब भी तड़प रहा था ।

फेफली मांस, रूखी रोटियां और लालटेन लेकर आ गयी थी, उसने एक बार चदिया को तिरछी नजर से देखा, उजास में वह उस नजर को जान पाया जिसमें एक अर्थ था । एक आह्‌वान था । आमन्त्रण था ।

एकएक फेफली की नजर ग्राहत चमगादड़ पर गयी। विहुक उठी, 'इस बेचारे चमगादड़ को किसने घायल किया।'

उसने झट से एक पल उसे और बाद में अपने को देखकर कहा, 'तेरे बापू ने।'

छोटू अपने में लीन था। चौंककर बोला, 'हां फेफली, यह हमारा हालीपा करेगा। पूरे तीन बरस। कल से इसे सारे काम बता देना।'

फेफली ने कन्धे उचकाकर कहा,'हालीपा और वह भी मेरे बाप के मातहत, चन्दिया सोरा नहीं है, हाड़-तोड़ मेंनत करनी पड़ेगी सो पड़ेगी साथ ही अपने मन को पग-पग पर मारना पड़ेगा। हालीपा तो सपने में भी खोटा (खराब) होता है।'

'जानता हूं.....पर तेरे कारन तो हालीपा करना ही होगा। वह मुस्कराया।'

'फिर मैं तेरी हो जाऊंगी।'

छोटू बड़े बुरे ढंग से खा रहा था। उसकी राफें भर गयी थी और कई लारें उसके पेट पर फैल गयी थीं। फेफली ग्राहत चमगादड़ को पकड़कर बाहर ले गयी।

चन्दिया खाना-पीना करने के बाद वहीं पर हालीपे के बारे में सोचता-सोचता सो गया।

हालीपे का दिन शुरू हो गया। दिन महीनों में बदल गये। पूरे चार महीने बीत गये।

चन्दिया भाभरके उठकर खेत जाता। निदाण काटता, आते समय कैर तोड़कर लाता, कुए से पानी के घड़े लाता। कभी-कभी लकड़ियां। इस बीच फेफली बकरी दुह लेती। उसे चाय बनाकर पिलाती। प्रायः चन्दिया को बाजरी की रोटी और प्याज का साग मिलता था। कभी कभी गेहू की रोटी और हिरण का मांस और तीतर भी।

धीरे धीरे फेफली चन्दिया को प्यार करने लगी। शायद नारी की यह प्रकृति रही हो या चन्दिया ही बहुत अच्छा और शक्तिशाली जवान हो। पर यह सही था कि फेफली उसे चाहने लगी।

उस दिन सहसा जंगल में चन्दिया को फेफली मिल गयी। चन्दिया ने उसे रोका। दोनों बैठ गये। कुछ देर तक दोनों चुपचाप रहे। फेफली कंकर उठा उठाकर फेंक रही थी और चन्दिया रेत को इकट्ठा करके डिगली बना रहा था।

फेफली ने पूछा 'चन्दिया ! तू ने मुझे रोका। फिर गूंगा सा क्यों बैठा है। ...ो सही ?'

...फली ! कल तुझे बनकी क्या कह रही थी ?'

तीन साल का हालीपा पूरा नहीं होगा । साला चन्दिया बीच में ही भाग जायेगा जैसे बदरी, मनकू, पेमा और भैरू भागे ! ··· फेकली बावलिया तेरी ही है । केवल तेरी, यदि तू मरद का बच्चा है तो दिखा मर्दानगी ··· रुपये पूरे लूंगा ।'

बावलिया ने शंका व्यक्त की । 'पर मुझे लग रहा है कि चन्दिया हालीपा पूरा कर लेगा ।'

'नहीं रे ··· मैं इतनी धोखेबाजी करूंगा कि वह साला बीच में ही भाग जायेगा । देखता जा ·· अरे ! कुछ दिन तक तो टिका रहने दे । आजकल मजूर मिलते कहां है ?'

फेकली ने ये बातें सुन लीं ! उसे बावलिया से घिन थी । वह भी उसके बाप की तरह चोरी से दारू बनाता था । गंधाता रहता था, उसके बालों में जुएं रेंगती रहती थीं । फेकली अपने बाप की बेईमानी और बदमाशी समझ गयी । उसका बाप सदा ऐसा ही करता है, वह खुद भी उसके षड़यन्त्रों में शामिल रहती थी पर चन्दिया को वह चाहने लगी थी । पहली बार उसे यह सब अच्छा नहीं लगा । वह उन दोनों के पास आकर बोली । 'यदि चन्दिया ने हालीपा पूरा कर लिया तो मैं उसकी ही जोरू बनूंगी । इस पादजिये और बासजिये पर मैं थूकूंगी भी नहीं, बापू कान खोलकर सुनले ··· तूने मुझे लेकर कइयों से बेईमानी कर ली है पर अब मैं सच्ची ब्याह करूंगी । चन्दिया से करूंगी । मैं जोबन गवांकर भर नहीं कमाऊंगी, समझे ।'

'तेरी जबान बहुत लम्बी हो गयी है रंडारू ।'

वह तपाक से बोली, 'फिर भी तेरी बेईमानी से छोटी है । ओह मैंने बड़ी भूल की कि मैंने तेरा खोटे कामों में साथ दिया ··· अरे अपनी जाति-का नेम-धरम देख ! हालीपे के बाद तो शादी करनी ही चाहिए, पैसे के पीछे तेरे मन में खोट जम गयी है । तू अधरमी है ।

बावलिया ने झट से कहा, 'फेकली मुझमें क्या कमी है ? जानती है । तेरा बाप मुझसे चौदह सौ पचास रुपये उधार ले चुका है !

छोटू ने अपनी दाढ़ी में से जूं को निकलकर दोनों अंगूठों के बीच देकर उसे मारा । फिर बोला, 'बावलिया यह तो ब्याज है ऐसी फूटरी छोकरी सारी जोगिया जाति में नहीं मिलेगी, मैं चाहूं जित्ता पैसा ले सकता हूं ।

फेकली बारूद की तरह फट पड़ी । 'फिर ऐसा कर···शहर के चौराहे पर मुझे खड़ी करके नीलाम कर दे । जो बचे वही पाये ! छिः

'तू चुप रह रांड, तू मेरी जायोड़ी है । जैसा मैं चाहूंगा-वही होगा । बक-बक बन्द कर ·· तू जानले-तेरा अन्त-पन्त ब्याह बावलिया से ही होगा । चन्दिया के आने के बाद कितनी सजने संवरने लगी है । इकातरे (एक दिन छोड़ एक दिन)

कपड़े और सिर धोया जाने लगा है। मेरी बेटी, रोज-रोज पातर सजती है, समझी ? " यह एक पल रुककर फिर बोला, और बावलिया मुझे छत्तीस सौ कलदार और देगा · · · यदि हालीया नहीं करेगा तो तीन हजार उसके सौदा पक्का है। क्यों बावलिया ? · · ·

फंफली का हृदय पीड़ा से भर आया। वह बोली। 'सच कहा है दुनिया में दो ही गरीब है एक बेटी और एक बैल ! पर मैं उतनी गरीब नहीं हू।'

गर्ज कर बोली 'बावलिया ! मैं तुझसे ब्याह कभी नहीं करूंगी। · · ·

'तेरा ब्याह इससे ही होगा। समझी। यह मेरा फैसला है। पर तू चन्दिया को इसके बारे में कुछ नहीं बतायेगी। यदि बताया तो तेरे हाड़तोड़ दूंगा। मादरजाद बर्ठ की। जा भीतर दो प्याला चा ला। · · ·

'चा बनाये मेरी जूती। मैं चली अपनी मायली के पास।' फेफली फुफकारती हुई चली गयी।

छोटू ने बावलिया को पक्का भरोसा दिया। 'तू चिंता मती कर, फंफली तेरी ही होगी। चल। आज फिर मास खिला दे। दारू तो साथ पीयेंगे ही। कहीं से तीतर-बटेर ला न, भून कर खायेंगे ?'

बावलिया उठता हुआ बोला। 'यदि मेरे साथ छल-कपट हुआ तो मैं पंचायत बुलाऊंगा और तेरी जमीन जायदाद बिकवा दूंगा।'

'कह दिया न, फंफली तेरी ही है आज हो जाय मौज-मस्ती इसी बात पर दारू व मास ! जा रे जा · · · सुन जल्दी आना !'

बावलिया चला गया।

चन्दिया शहर से देर से लौटा ! हालांकि छोटू ने फंफली को कह दिया था कि वह चन्दिया के लिए मास रोटी और दारू न रखे पर फंफली ने सब कुछ छुपाकर रख दिया। इससे उसे एक सुख का अनुभव हुआ।

थका-मांदा वह था ही। पसीने से लथपथ थी, बकरी सो रही थी, अमीर के मकान की दीवार पर दो कोचरिया लगातार बोल रही थी। कोचरों की आवाज चन्दिया को नहीं सुहाती थी।

छोटू गहरी नींद में सोया हुआ खर्राटे भर रहा था। उसका हुक्का ठण्डा पड़ा था। सदा की तरह उसके तकिये के पास दो प्याज पड़े हुए थे। प्याज की गंध से पीनेवाला सांप पैणियां नहीं आता है ! प्याज के पास बीड़ी का बंडल और माचिस पड़ी थी।

छोटू को गहरी नींद में सोया हुआ देखकर चन्दिया को एक गहरी राहत मिली।

उसने धीरे से दरवाजा खोला, चोर की तरह भीतर गया।

आंगन में फंफली सोयी हुई थी एक चिंता रहित अलमस्त नींद में। उसका

घाघरा घुटनों तक उठा हुआ था । खूंटी पर लालटेन लटक रही थी जिसकी लौ मंद थी । दीवार पर एक काला घाघरा झूल रहा था जिसमें सुराख ही सुराख थे । काले रंग में सफेद दीवार के सुराख स्पष्ट चमक रहे थे ।

उसने एक पल उन नंगे पांवों को देखा । फिर अपनी जेब में हाथ डालकर मोटी पायल जो वह पन्द्रह रुपये में शहर से लाया था उसे चुपचाप पहना दी । वह इतनी गहरी नींद में थी कि उसे मालूम ही नहीं हुआ ।

फिर चन्दिया ने उसे धीरे से जगाया !

'उठ फेफली उठ, बता पाडी' ज्यूं पसरी हुई है । जाग । 'उसने उसे झिंझोड़ा । उसकी आंखें खुल गयी । वह आंखें मलती हुई बोली । आ गया रे तू ···बड़ी देर करदी ।

''रास्ते में लोरी खराब हो गयी थी ।

'ले मैंने तेरे लिए मास बनाया है । दारू भी उस गिलास में है । झट से खा पी ले ।

अचानक उसकी निगाहें अपने पांव की पायल पर गयीं । चौंक पड़ी । 'इसे तू लाया है ।'

उसने सिर हिला दिया । हूं !

'ओह चन्दिया ।' लपककर उसने उसे अपनी बांहों में भर लिया । 'तू बहुत चोखा है ।'

चन्दिया को बड़ा सुख मिला, 'ओह ! यह लुगाई जात का शरीर कितनी मस्ती देता है ।'

वह जैसे सचेत होती हुई बोली । 'पहले पेट पूजा फिर काम दूजा ।'

चन्दिया ने दारू पी, मास खाया । सारी रोटियां खत्म करके डकार ली । थाली को धोकर पिया । फिर नशे से भारी पलकों को उठाकर कहा, 'फेफली ! मैं तीन साल तक नहीं ठहर सकता · · 'उतने दिनों में तो मैं तेरे बिना पागल हो जाऊंगा । हालीपा केवल तीन साल तक ही नहीं । मैं तेरा हालीपा सारी उमर कर लूंगा पर तू मुझ पर दया कर · · · मेरा मन कुरजा पछी की तरह कुरला रहा है ! ···

एक आपदा ! विराट याचना !

फेफली पिघल गयी । बोली, 'मैं तेरे सागे ही ब्याह करूंगी पर न तो तेरे पास इतने रुपये हैं, जो मेरे सटोरिये बाप के मुंह पर मारकर मुझे अभी हासिल कर सके और न तू ने तीन साल का हालीपा ही पूरा किया है · · · दोनों के

बीच में झुंझलाकर बोला ।

'हालीया···हालीया···हालीया···आग लगे इस हालीये को···
अरे ! मैं भीतर से सुलग रहा हूं···फेकली मुझ पर दया कर,···तू तो मेरी धणियाणी (स्वामिनी) बनेगी ही। मैं तेरे घाघरे का डेरा बनकर रहूंगा।

'बाहर चला जा। तू सांप बन रहा है।' वह रूखाव से बोली 'जा···जा मुझे जबरदस्ती चोखी नहीं लगती।'

वह बाहर जाने लगा तो फेकली ने अपने ललाट के पसीने को पोंछते हुए कहा 'ठाडू कहीं का। जबरदस्ती करने के लिए कलेजा चाहिए।'

चन्दिया ने यह सुना और एकदम पलटा। शिकारी कुत्ते की तरह फेकली पर झपटकर उसकी पसुरिया बिखेरने लगा।

भोर का सूर्य उग आया। कौवा कांव-कांव करता हुआ जा रहा था।

गिलहरी अपनी पूंछ ऊंची किये हुए सीढ़ियों पर बैठी थी! बकरी का बच्चा भीतर आकर बाल्टी में रखे पानी को पी रहा था।

चन्दिया भीतर आया। फेकली अनमनी सी किसी सोच में डूबी हुई थी। खाट की वाधी ईस टूट गयी थी, टूटी हुई खाट को देखकर वह शर्म से लाल हो उठा, हल्का पसीना आ गया, बोला, 'तू चाय नहीं बनायेगी आज! अजगर सी सुस्त पड़ी है?'

उसने चन्दिया से नजर मिलाकर कहा, 'खाट आज ही ठीक करनी है? गिद्ध कहीं के!' वह आलस मरोड़कर चाय बनाने उठ गयी।

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। बाहर आ गया। फेकली थोड़ी देर में चाय बनाकर ले आई, छोटू अब भी सोया हुआ था! खर्राटे ले रहा था।

मुंडेर पर कबूतर का जोड़ा आपस में चोंचे लड़ा रहा था। फेकली उसे देखती हुई फटती हुई सी बोली, 'सब साले बस लाय (आग) ही बुझाते रहते हैं। वह भीतर चली गई।

चन्दिया मुस्कराया। वह चाय पीता रहा, चुपचाप! उसके चारों ओर फिर फेकली की देह गंध फैल गई! उसमें उन्माद सा भरने लगा।

वह चाय पीता-पीता उठा और उसने झाड़ू बुहारती फेकली को दबोच लिया। फेकली ने झाड़ू मारते हुए कहा, 'शक्ल देखा कर गंडक···'

चन्दिया मुस्कराता हुआ बाहर चला आया।

'सुन चन्दिया, फेकली को तेरा भूत खूब जोरदार ढंग से लग गया है इसलिए तू अब यहां से भाग जा··· तुझे मैं बावनिया से पांच सौ कलदार दिलवा दूंगा। तुझे छोरियां बहुत मिल जायेंगी। तेरा दालिद्र दूर हो जायेगा। तू पैसे से मौज करेगा।'

'नहीं छोटू, ऐसा नहीं हो सकता?'

'क्यूं ?'

'मैं फेफली को प्रेम करता हूं । उसके बिना मैं नहीं रह सकता !' उसने [illegible] कहा ।

'[illegible] दे,' उसने अपनी आंखें नचाकर कहा, 'तुझे मुफ्त में [illegible] और फिर वह तब कर रहा है कि फेफली तुझे नहीं मिलेगी !' जोरू ने साफ-साफ कहा, 'बावनिया-हालीपा करेगा सो करेगा । साथ ही पन्द्रह हजार कलदार भी देगा ! तेरे पास तो फूटी कौड़ी ही नहीं है । वैसी कानूनबाजी करेगा न तो मैं पचायत बुलाकर तेरा हालीपा खत्म करवा दूंगा । कह दूंगा कि यह तो रोटियों का ठोर है । ठाला बैठा रहता है और कोई काम नहीं करता ।

पन्दिया ने अकड़कर कहा, 'पंच परमेश्वर होते हैं, झूठ न्याय वे नहीं कर सकते ! करेंगे तो मैं उसके सिर फोड़ दूंगा ।'

'तू अभी टाबर (बच्चा) है ! तू आज के बखत के लंदफंद नहीं जानता! सब पंच मेरी मुट्ठी में हैं । तू जानता है न । आज के जुग में पैसा मां, पैसा बाप पैसे के बिना घरों संताप ! समझ और पैसे मुट्ठी में बन्द कर नौ दो ग्यारह होजा । फेफली के पाने के तो तुझे सपने ही आयेंगे ।

उसी दिन दोपहर को उसने फेफली को सारी बातें बतायीं ।

फेफली अनमनी थी । उसका मुंह उतरा हुआ था । फेफली ने कहा, 'पन्दिया ! मेरा बापू कसाई है, गू में से पइसा निकालने वाला, ये मेरे सहारे अपना दारू-मांस चालू रखना चाहता है,' वह जैसे याद करके फिर बोली । 'मुझे लग रहा है कि कुछ गड़बड़ हो गयी है ! मुझे अन्न की बास आने लगी है । मेरे पांव भारी हैं, इमली खाने को जी चाहता है, मिट्टी खाने को मन तरसता है… अब तो…'

'अब तो हमारा रास्ता साफ हो गया । गाभण (गर्भवती) लुगाई को अपनी जोरू कौन बनायेगा ?'

'यह गंडमरा बावलिया दो टाबरों की मां होने के बाद भी मुझे अपनी जोरू बना सकता है । बहुत सड़ियल मिनख है, अब तो यहां से भागने में ही फायदा है । पन्दिया मैं तेरे सागे रहूंगी । वाचा (वचन) देती हूं कि मरने के बाद ही अलग होऊंगी, मुझे तेरे बिना कुछ भी चोखा नहीं लगता ।'

'सच…'

[illegible]-पक्का मरद है । एकदम घोड़े की तरह कद काठीवाला जोरदार [illegible] चिपटती हुई बोली । 'मेरे गरभ से तेरा जैसा जोरदार पूत

'फेकली ! हम यहां से भाग जायेंगे ! दूर'''बहुत दूर '''कहीं चलकर मेनत-मजूरी कर लेंगे ! नहर पर काम कर लेंगे !'

'हां चन्दिया, यही ठीक रहेगा !' उसने आंखें झुका कर कहा, पेट का पाप कभी भी नहीं छुपता ! यदि बापू को मालूम हो गया तो वह अपने आदमियों की मदद से मेरा जबरदस्ती बावलिया से ब्याह करवा देगा और यह बावलिया मुझे दफना लेगा । मैं उसे अपना बोझ नहीं बना सकती । मर जाऊंगी या मार डालूंगी उसे !'

'बस, दो पांच दिनों में भाग चलेंगे ।'

'मुझे अब डर लगने लगा है ।'

'तू घबरा मती ! मैं तेरे लिए खूनखराबा तक कर दूंगा''' मुझे हालीवा अब जरा भी पसन्द नहीं, लूका की गुनाभो'''फिर तेरे बाप की'''? सच कहता हूं कि मुझे तेरा घर पिंजरा लगने लगा है और मैं पखेरू ! अपनी मरजी से जीने का स्वाद कुछ और ही होता है ।

फिर दोनों भागने का अवसर ढूंढने लगे ।

सुरसुती दाई ने एक दिन फेंफली को उबकाई लेते हुए देख लिया ! उसने छोटू को दस रुपये की रिश्वत लेकर बता दिया । छोटू गुस्से में पागल हो गया । उसने अनाप सनाप अश्लील गालियां निकालीं और पचायत बुलाकर चन्दिया को दण्ड दिलाने की धमकी भी दे दी । उसने दांत पीसकर फेंफली से कहा 'कुतिया कहीं की, मैं तुझे कभी भी चन्दिया से नहीं ब्याहने दूंगा । तेरी गर्दन धड़ से अलग कर दूंगा ।

'अरे जा रे जा तेरे जैसे मैंने बहुत देखे हैं ! मैं उसके टाबर की मां बनूंगी । समझे !' उसने दहाड़कर कहा, 'गर्दन काटेगा । तेरी पचायत की सरकार नहीं है !'''

'क्या!' छोटू ने झपटकर उसे पीटना शुरू कर दिया । तभी चन्दिया आ गया । उसने छोटू को अपने हाथों में ऐसे दबोचा जैसे कोई कबूतर को दबोचता है । धमकी भरे स्वर में बोला, 'जो करना है, कर लेना । बुला लेना अपने पंचों को । करा लेना उनकी पचायत''' अबकी बार फेंफली पर हाथ उठाया तो मैं तुझे सूखी लकड़ी की तरह तोड़ दूंगा ।'

छोटू धुंआ धुंआ होता हुआ बाहर निकल गया ।

चन्दिया और फेंफला दोनों ने सोचा और अपनी-अपनी गठरियां लेकर बस-स्टैंड की ओर चल पड़े । चन्दिया के हाथ में लकड़ियां काटने वाला 'किरचा' था ! तेज धारवाला धूप में चमकता किरचा ।

सड़क सामने आते हुए चन्दिया किराड़े को हवा दे लहराते हुए कहकर,

...देगा मैं हिम्मत-जो हमारा रास्ता रोके। जो रोकेगा उसे मैं धूल चटा दूंगा...ऐसी गड़बड़ी की मैं सारे गांव की शिकायत पुलिस को कर दूंगा...हथकड़ियां लगवा दूंगा ! आओ फेफली।

छोटू पागलों की तरह बोलता रहा। वह बावलिया की भद्दी-भद्दी गालियां निकालता रहा था पर बावलिया नपुंसक बना बुत की तरह खड़ा रहा।

धीरे-धीरे वे ओझल हो गये।

छोटू फिर चिल्लाया, 'मैं पंचों को बुलाऊंगा-पंचायत कराऊंगा... देख लूंगा उस हरामजादे को... चोर का...बदमाश को...'

धीरे धीरे वह बकता-बकता थक गया।

बस ने जब कई गांवों की सीमाओं को पार कर लिया तब चन्दिया ने फेफली का हाथ पकड़कर कहा, 'बहुत दूर आ गये हैं ! अब हम अपनी मरजी का जीवन जीयेंगे... हालीपा और गोलीपा से मुक्त जीवन...'

'नहीं ऐसा नहीं हो सकता।' फेफली ने गम्भीर होकर कहा।

'क्यों ?' वह फिर चौंक पड़ा।

'तू बड़े खोटे भाग लेकर जन्मा है। हालीपा तुझे अब भी करना पड़ेगा।' फेफली ने शब्दों पर जोर देकर कहा।

'किसका !'

'मेरा...मेरे भरतार मेरा !'

उसने फेफली की ओर देखा। फिर बस के यात्रियों की ओर ! एक बूढ़े के खांसने के अलावा सभी ऊंघ रहे थे। फेफली ने अपनी गठरी को खोला और उसमें से रोहिड़े के गंधहीन फूलों की दो मालायें निकालकर दिखायी कहा, 'कल सुबह रामदेव मन्दिर में जाकर बाबा के सामने ब्याह कर लेंगे ताकि कोई लफड़ा न हो।'

चन्दिया की खामोशी गहरी हो गयी।

फेफली ने धीरे-धीरे कहा, 'पहले मैं भी बापू के साथ उसकी साजिश में मिल जाती थी। मेरे बापू ने कितने ही जवान जोगियों से हालीपा कराया। हर एक को इतना सताता था कि वह बीच में ही भाग जाता था। फिर मैं भी उसे गालियां सुनाती थी। तरह-तरह के कठिन काम कराती थी। यहां तक कि एक को तो बैल की जगह जोत भी लिया। तुझसे मूझे सच्चा परेम हो गया। फिर भीतर का सारा मैल तेरे संग से घुल गया। बांका मरद है न तू ! सच तो यह है के अब से मैं तेरा हालीपा करूंगी... तू मुझे कितना ही सताना, दुख देना। भागने की कोशिश करना पर मैं तुझे नहीं छोड़ूंगी। मेरा हालीपा सारी उमर के लिए होगा तेरे लिए, मेरे मोट्यार तेरे लिए।

वे फिर ऊंघने लगे। नींद भी आ गई। जब वे जागे तब सूर्य उग आया

☐ 'चन्द्र' की कहानियां सही मानसिकता व अनुभूति की कहानियां है। —डा. मनोहर प्रभाकर जयपुर

☐ राजस्थान की राजनीतिक सामाजिक, ग्रामीण, सामन्ती या ऐतिहासिक कहानियां इनके लेखक को शक्ति व पैनापन देती है। —मन्नू भंडारी नई दिल्ली

☐ आपकी कहानियां सही लेखन, मानवीय जिजीविषा के अन्वेषण कहानियां है। —डा. कृष्णचन्द्र पंड्या मथुरा

☐ 'चन्द्र' की कहानियां सही भारतीय परिवेश, मानसिकता व कोमलता की कहानियां है। —डा. आदर्श सक्सेना

☐ कहानियों का उद्देश्य मानवतावादी है।
— डा. देवी प्रसाद गुप्ता

☐ यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' एक या दो कहानियों के बल पर प्रतिष्ठित नहीं है बल्कि उनकी दर्जनो कहानियां उन्हे प्रतिष्ठित करती हैं। —मस्तराम कपूर नई दिल्ली

☐ इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'हालीया' (यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र) लगी : हंस नई दिल्ली।

☐ सर्वोच्च शिखर प्रभावशाली व सामयिक रही।
—सारिका नई दिल्ली